निशिकान्त

निशिकान्त

(सामाजिक एव राजनीतिक उपन्यास)

लेखक

विष्णु प्रभाकर

१९५५

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली—६

मूल्य पाँच रुपये

* लेखक की अन्य रचनाएँ *

तट के बन्धन	२)
नव-प्रभात	१।।)
समाधि	३)
चन्द्रहार	१।।)
क्या वह दोषी था ?	२।।)
हमारा स्वाधीनता-सग्राम	१।।)
माँ का बेटा	।।।)
आदि और अन्त	१।)
रहमान का बेटा	२।।)
जिन्दगी के थपेड़े	३)
सघर्ष के बाद	३)
जीवन-पराग	१)
स्वप्नमयी	(प्रेस मे)
होरी	(प्रेस मे)
अशोक	(प्रेस मे)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मुद्रक
हकूमतलाल
विश्वभारती प्रेस
पहाड़गज, नई दिल्ली

बन्धुवर

जैनेन्द्रकुमार

को

दो शब्द

'निशिकान्त' अपने दूसरे संस्करण में नये नाम और नये रूप मे आया है। नाम पहले 'ढलती रात' था। वह क्यो पलटा गया इसका कोई विशेष कारण नही है। 'ढलती रात' मे ५४३ पृष्ठ थे। 'निशिकान्त' मे ३२४ है। २१९ पृष्ठ कम हो गये। क्यो ? वास्तव में 'ढलती रात' की रफ-पाण्डुलिपि एक मित्र पढने को ले गये थे। प्रेस में जाने से पहले उसे फिर से लिखना था, पर उस मित्र ने उसे वैसे ही प्रेस में दे दिया। मुझे तब पता लगा जब लगभग ३०० पृष्ठ छप चुके थे। मित्र का उद्देश्य शुभ था, पर कभी-कभी प्रेम भी पीडा का कारण हो जाता है। आगे की कहानी और भी दुःखभरी है। उसे नही कहा जाय तो अच्छा है। 'ढलती रात' आलोचको और मित्रो के हाथ मे जाकर रह गई। पाठको तक नही पहुँची। कम-से-कम मेरी सूचना ऐसी ही है।

आलोचको की आलोचनाओ पर विश्वास किया जाय तो यह एक साथ सर्वश्रेष्ठ और सबसे निकम्मा सामाजिक उपन्यास है। मुझे विश्वास है कि कुछ ने तो बिना पढे ही आलोचना की है, क्योकि एक ने इसे युद्धकालीन उपन्यास तथा दूसरे ने १९४२ की घटनाओ पर आधारित कहा था। जबकि इसका किसी से कोई सम्बन्ध नही है। इसकी कथावस्तु का क्षेत्र सन् १९२० से लेकर सितम्बर १९३९ तक फैला हुआ है। यह उस युग के एक ऐसे युवक की कहानी है जो परस्थितियो के बन्धन मे बँधकर मनचाही नही कर पाता। वह चाहता है देश की सेवा करना, पर करनी पडती है उसे विदेशी [illegible] की नौकरी। और भी बाते है। उसी सघर्ष का इस उपन्यास में चित्रण है। साथ-ही-साथ तत्कालीन समाज का चित्रण है। कुछ आलोचकों ने निशिकान्त को कायर कहा है। वह कायर न होता तो यह उपन्यास लिखा ही क्यो जाता ? पर प्रश्न कायर होने का उतना नही है जितना उन परिस्थितियों से सघर्ष करने और उन्हे जीतने का है, जो उसे कायर बना रही हैं।

अन्त मे तो निशिकान्त ऊपर ही उठा है। आलोचकों से अधिक पाठको ने इस बात को परखा और पसन्द किया है।

लेकिन मैं इस बहस मे नही पडना चाहता। यह उचित भी नही है। मैने इस संस्करण मे 'ढलती रात' की कथा में कोई परिवर्तन नही किया, भाषा भी नही पलटी। बस जो प्रसंग कम हो सकते थे वे किये है। पहले भी करता, इधर-उधर से कुछ लाइनें कम की है, प्रूफ की अनेक गलतियाँ ठीक की है। बस उसी में २१६ पृष्ठ कम हो गये। यह बहुत बडी बात है।

जिन लोगो के कारण इसका दूसरा संस्करण सम्भव हुआ है उनका आभार मानता हूँ। वैसे देखा जाय तो यही पहला संस्करण है, मेरे पहले उपन्यास का पहला सस्करण ! इसी दृष्टि से मैं इसे प्रस्तुत कर रहा हूँ।

९ सितम्बर, १९५५

८१८, कुण्डेवालान चौक,
अजमेरी गेट, दिल्ली-६

विष्णु प्रभाकर

पहला खण्ड

: १ :

वे बड़ी तेजी से चल रहे थे और उन्हें पता नहीं था कि वे रामनाथ के घर के पास आ गये हैं। एकाएक एक करुण-ध्वनि उनके कानों में पड़ी। वे ठिठक गये। फिर शान्त-स्थिर-गति से बैठक में चले गये। निशिकान्त ने देखा, उस वर्गाकार कमरे में घेरा बनाकर पाँच-छः मनुष्य भूत की तरह शान्त बैठे हैं। लालटेन के प्रकाश में उनके विषादपूर्ण मुख और भी भयानक लग रहे हैं। उनके बीच में बैठा हुआ रामनाथ सहसा तेजी से हूक मारकर रो उठता है, "मेरे बच्चे! मेरे बेटे! मैं क्या करूँ?" और तब उन पुरुषों में से कोई बोल उठता है, "सब्र करो रामनाथ, भगवान् की यही इच्छा थी।"

भगवान् का नाम सुनकर रामनाथ का दर्द और भी टीस उठा, उसने हूक मारकर कहा, "भगवान् का मैंने क्या बिगाड़ा था? उसने मेरे बेटे को मुझसे क्यों छीना?"

ठीक उसी समय उसने निशिकान्त और पण्डितजी को देखा। वे दोनों चुपचाप एक कोने में जा बैठे थे। उन्हें देखकर रामनाथ और भी जोर से रो उठा, "पण्डितजी, पण्डितजी! मैं क्या करूँ?"

पण्डितजी ने दृढ़ स्वर में कहा, "तुम्हारा बेटा बहादुर था। वह शहीद की मौत मरा है, उसके लिए रोते हो?"

निशिकान्त सान्त्वना के स्वर में बोला, "रामनाथ जी ! तुम्हारा दुःख बहुत बड़ा है, पर अब क्या हो सकता है ? तुम रोओगे तो तुम्हारे बच्चों को कौन सँभालेगा ? उनकी माँ भी तो नहीं है।"

"ठीक है कान्त भइया। पर···पर उसने किसी का क्या बिगाड़ा था ?"

इस पर पण्डितजी तड़पकर बोले, "भगवान् मेरा जाने, तुम्हें यही पता नहीं कि जो बिगाड़ने वाले होते हैं वे कभी सामने नहीं आते। वे कायर होते हैं।"

वहाँ बैठे हुए आदमियों में से एक ने इस बात का समर्थन किया, बोला, "जीहाँ ! आप ठीक कहते है, उन्होंने घर के अन्दर से गोली चलाई।"

दूसरे ने कहा, "यही तो। वे अन्दर थे और हिन्दू बाहर।"

"हिन्दू भी कायर है, नहीं तो ···"

"नहीं तो क्या ?" निशिकान्त एकाएक पूछ बैठा।

जिनसे पूछा गया था वह एकबार तो सकपका गये, पर फिर उन्होंने जवाब दिया, "बाबूजी ! आपको क्या पता ? मैं जानता हूँ कि हिन्दुओं ने रायबहादुर से कहा था, 'एक बार अपनी बन्दूक दे दो, फिर हम देख लेंगे', लेकिन रायबहादुर ! वह हिन्दू थे और हिन्दू होते हैं दयालु, अहिंसा के पुजारी ! सो उसका फल उन्होंने भोगा। आप मरे और साथ में चार को और भी ले गये।"

"हाँ, बेचारे चारों ही निर्दोष मारे गये। रामनाथ का लड़का स्कूल से लौट रहा था···"

"चिम्मा कुम्हार के बेटे ने समझा था कि कोई तमाशा हो रहा है।"

"और लाला देवीदीन तो खाना खाने घर जा रहे थे।"

"और बाबू मोहनकृष्ण ! वह बेचारा तो अपने घर में बैठा था।"

"बाबू मोहनकृष्ण," निशिकान्त ने धीरे से कहा, "जो उन्हें जानते हैं वे किसी भी शर्त पर यह नहीं मान सकेंगे कि मोहनकृष्ण मुसलमानों ··· सकता है।"

"और उसी आदमी को मुसलमानों ने मार डाला।" रामनाथ ने आह भरकर कहा, "न जाने भगवान् क्या चाहते है ! मुझे ही देखो, मैंने जन्म-भर

काँग्रेस की सेवा की है और मेरा बच्चा मुसलमानों के हाथों मारा गया। दुनिया क्या कहेगी?"

"कहेगी क्या?" पण्डितजी ने कहा, "और कहेगी भी तो तुम फिक्र क्यों करते हो। जो होना था, हो चुका। तुम मर नहीं सकते और मरो भी क्यो? जीओ और शान से जीओ।"

और फिर उठते-उठते कहा, "रामनाथ, मैं कहता हूँ कि रोज सवेरे रामायण का पाठ किया करो। भगवान् मेरा जाने, रामायण से बढ़कर कोई पुस्तक इस संसार में नहीं है। राजनीति, धर्म, और आचरण, सभी कुछ उसमें है। पढ़कर मन को शान्ति मिलती है और तुम्हारा जी न लगे तो मेरे पास आ जाया करो।"

और वे विदा माँगकर बाहर आ गये। सड़क की बिजली जल चुकी थी और उसका गदराया हुआ प्रकाश अंधकार के साथ गलबाहीं डाले इधर-उधर बिखरा पड़ा था। सन्नाटा ऐसा था कि कभी-कभी उन लोगो के अपने ही पद-चाप उनके भय का कारण बन जाते थे। वे कुछ दूर तक चुपचाप बिना बोले चलते रहे।

फिर सहसा पण्डितजी बोल उठे, "देखा निशिकान्त! यह हमारी सहानुभूति है। कितने आदमी थे इसके पास!"

निशिकान्त ने कहा, "आदमी देखना चाहते हो तो रायबहादुर के घर चलो।"

रायबहादुर का नाम सुनते ही पण्डितजी को क्रोध आ गया। बोले, "मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।"

"सोचता मैं भी यही हूँ।"

पण्डितजी ने कहा, "हम कितने बेईमान हैं। रामनाथ काँग्रेस का कितना काम करता है! नेता सजे-सजाये रंगमंच पर लैक्चर देकर चले जाते हैं, परन्तु सभा का प्रबन्ध करना और उसका संदेश घर-घर पहुँचाना इसी का काम है। यह इस भवन की नीव है; परन्तु इसीलिए आज इसके पास कोई

नहीं है।"

निशिकान्त उनकी ओर देखकर बोला, "पण्डितजी! नींव आँखों से ओझल रहती हैं। उसके पास कोई नहीं जा सकता लेकिन यही उसकी शक्ति है। सहानुभूति के अभाव में ही आदमी अपने पैरों पर खड़ा होना सीखता है।"

पण्डितजी ने तलखी से जवाब दिया, "निशिकान्त! यह सब बेईमानी है। मैं पूछता हूँ, आखिर क्यों सब लोग रायबहादुर के घर गये और रामनाथ के पास नहीं आये?"

निशिकान्त के मुँह से दीर्घ निश्वास निकल गया। ऊपर देखता हुआ वह धीरे से बोला, "पण्डितजी! इस प्रश्न का उत्तर है। उत्तर सभी प्रश्नों का होता है, परन्तु केवल उत्तर से प्रश्न हल नहीं होता। हल उत्तर के विश्लेषण और फिर विश्लेषण के निष्कर्षों पर अमल करने से होता है।"

"तो ठीक है, मैं रायबहादुर के घर नहीं जाऊँगा। चिम्मा कुम्हार के घर चलो।"

"चलिये! लेकिन देर हो चली है। आठ बजे तक हमें घर पहुँच जाना चाहिए।"

यह कहकर उसने फिर ऊपर देखा। सप्तर्षि-मण्डल मकानों के पीछे से उठकर ऊपर आ गया था और व्याध हिरणियों पर तीर साधे मंत्र की भाँति आगे बढ़ रहा था। उसके मन में उठा, कितने शान्त और कितने सुन्दर हैं ये तारागण। क्या इन्होंने कल होने वाले रक्त-पात को नहीं देखा? क्या ये नहीं जानते कि रायबहादुर ने बन्दूक नहीं चलाई थी?

पण्डितजी बोल उठे, "भाई, अब सबके घर नहीं जा सकते।"

"मैं भी यही सोचता हूँ।"

"अब एक स्थान पर और हो आते हैं। बाकी कल चलेंगे।"

निशिकान्त ने क्षण-भर सोचकर कहा, "पण्डितजी, आज और कल में बड़ा अन्तर है।"

"तो?"

"ऐसा करिये। आप चिम्मा के घर चले जाइये। मै मोहनकृष्ण के घर जा रहा हूँ। वहाँ तो मुझे कल ही जाना चाहिए था।"

"मैं जानता हूँ, तुमने उसकी स्त्री को पढ़ाया है। तुम्हें वहाँ जाना ही चाहिए।"

और फिर वे दोनों दो रास्तों पर मुड़ गये। तब तक चाँद निकल आया था और उसका धीमा पर शान्त प्रकाश धरती के विषाद को दूर करने के लिए धीरे-धीरे नीचे उतर रहा था। निशिकान्त का मन फिर अवसाद से भरने लगा। उससे बचने के लिए उसने तेजी से चलना शुरू किया; परन्तु दूसरे क्षण ही वह भयंकर वेग से काँप उठा। किसी ने पीछे से उसके कंधे पर हाथ रख दिया। देखा कुमार है वह मुस्करा उठा, "तुम हो?"

कुमार भी मुस्कराया, "तुम क्या समझे थे?"

"पुलिस।"

दोनों हँस पड़े। कुमार बोला, "इस समय कहाँ जा रहे हो?"

"मोहनकृष्ण के घर, तुम भी चलो। बेचारे परदेसी हैं। दो जनों को देखकर ढाढस बँधेगा।"

कुमार ने तुरन्त कहा, "चलो कान्त! उन लोगों के साथ निस्सन्देह बहुत बुरा हुआ है। घर पर बेचारा अकेला था। माँ और पत्नी बाहर गई हुई थीं। लौटकर उन्होंने उसकी लाश ही देखी।

कान्त का कण्ठ रुँध गया, बोला, "ओफ़! क्या हुआ होगा तब?"

"वही, जो कुछ होता। उन्होंने मरना चाहा, पर मर नहीं सकीं। घण्टों तक वे लाश के पास बैठी रहीं। बहुत देर बाद हमने जाकर देखा कि उसकी पत्नी सज्ञाहीन पडी है और मां पागल-सी शून्य में ताक रही है। हमें देखकर माँ ने जो करुण गुहार मचाई उसे सुनकर मुझे ऐसा लगा कि अभी जाकर संसार के समस्त मुसलमानों का उसी प्रकार नाश कर डालूँ जिस प्रकार चाणक्य ने नन्द-वंश का किया था। माँ के सामने पुत्र और पत्नी के सामने पतियों की पत्थर मार-मार कर हत्या करूँ और फिर पूछूँ, अब बताओ कैसा लगता है?"

कान्त ने एक बार कुमार की ओर देखा और फिर उच्छ्वसित स्वर में बोला, "ऐसे समय बड़े-बड़ों का धीरज छूट जाता है कुमार!"

"जानता हूँ कान्त," कुमार ने कहा, "पर सोचा तो जब मेरा यह हाल हुआ तो साधारण जनता क्या-क्या न सोचती होगी?"

कान्त हँस पड़ा—"वह जो-कुछ सोच सकती है उसी का परिणाम तो हम भुगत रहे हैं। परन्तु···" वह अपना वाक्य पूरा कर भी न पाया था कि उसने पाया वे हेडमास्टर साहब के घर के सामने खड़े हैं।

अन्दर जाकर उन्होंने देखा कि सामने के ओसारे में कई छाया-मूर्त्तियाँ चित्रलिपि की तरह निस्तब्ध-मौन और संज्ञाहीन पड़ी हैं। लेकिन उन्हें पहचानते ही वहां से एक गहरा चीत्कार उठा, "मास्टरजी! मेरा बच्चा, मेरा लाल कहाँ गया?"

कान्त यहीं कच्चा है। वह स्वयं रो पड़ा; पर ठीक समय पर कुमार ने उसकी सहायता की। संवेदना के स्वर में वह बोला, "माताजी! आपका पुत्र शहीद हुआ है। शहीदों के लिए रोया नहीं करते।"

परन्तु रुदन नहीं रुका। यद्यपि गला बैठ गया था, तो भी पीड़ा का ज्वार जैसे उसमें से उमड़ा पड़ता था। वह दीवार से सिर टिकाये रो रही थीं, दो स्त्रियों ने उन्हें थामा हुआ था। और कमला···एक कोने में वह बैठी थी। कान्त ने देखा—उसने दोनों हाथों से मुँह ढक रखा है। उसकी साँस बड़ी तेजी से उठती है पर बाहर निकलने का रास्ता नहीं है; इसीलिए वह तड़प रही है। उसने सोचा—क्या कहूँ इससे? इसे सांत्वना देनी चाहिए, परन्तु ढूँढ़ने पर भी शब्द नहीं मिल रह हैं। उसे अपने ऊपर ग्लानि हो आई परन्तु तभी कुमार फिर स्नेह-सिंचित स्वर में बोला, "माँजी! आपको सब्र करना ही होगा। आप न करेंगी तो बहू किसका मुँह देखेगी···"

बहू का नाम सुनकर चीत्कार और भी गहरा हो उठा, "हाय! वह मर क्यों न गई? क्यों नहीं उन पापियों ने उसे भी मार डाला? हाय, मैं क्यों चली गई थी? हाय···"

एकाएक अब कान्त का स्वर फूटा। वह बोला, "आप होतीं भी तो क्या कर लेतीं ?"

"करती क्या मास्टरजी ! मैं उनसे कहती—मुझे मार डालो, पर मेरे बेटे को छोड दो। हाय, मै अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? यह क्या हुआ ? एक क्षण मे मेरा स्वर्ग नरक कैसे बन गया मास्टरजी ? मैने भगवान् का क्या बिगाडा था ?"

"फिर वही भगवान् की बात," इस अति दु:ख में भी कान्त का मन विद्रोह से भर उठा, "मनुष्य इतना कायर क्यों है ? वह रोता क्यो है ? मोहन एक व्यक्ति था। उसका दर्द व्यक्ति का दर्द था। उसे संसार पर लादने की यह व्यर्थ चेष्टा क्यो ? वह चला गया। उसके बिना रुका क्या है ? संसार उसी गति से चल रहा है। धरती घूम रही है। तारे मुस्करा रहे हैं। चन्द्रमा हँस रहा है। रात गहरा रही है, फिर शैशव का प्रतीक प्रभात उदय होगा...।"

इसी तर्क-जाल में उसीके भीतर उत्तर फूटा, "सब-कुछ होता है और होता रहेगा, परन्तु माँ को पुत्र कहाँ मिलेगा ? पत्नी को पति...।"

"मिल सकता है।"

निशिकान्त ने सहसा गरदन को झटका दिया। क्षण-भर मे कैसे-कैसे विचार उसके मस्तिष्क मे प्रवेश कर गये थे। और तब अपने को अचरज मे डालता हुआ वह करुण स्वर में बोला, "मोहन को लोग कितना प्यार करते थे !"

कुमार ने कहा, "वह प्यार के लिए बना था। मुसलमान भी उसे प्यार करते थे। लेकिन उन्होंने ही उसे मार डाला।"

कान्त बोला, "हाँ, उन्होंने ही उसे मार डाला। वह हिन्दू था। हर कहीं हिन्दू है, मुसलमान है; पर मनुष्य आज कहीं नहीं है।"

उसी समय पास के जीने में खटखट हुई। एक अधेड़ सज्जन नीचे उतर आये। सिर उनका खल्वाट था; इसीलिए पेशानी बहुत चौड़ी मालूम हो रही थी। वे अतिशय गम्भीर थे। उन्होंने निशिकान्त के पास बैठते हुए कहा, "मनुष्य आज कहीं नहीं है, ऐसी बात नहीं है। जिस दिन मनुष्य

नहीं रहेगा, उस दिन धरती डूब जायेगी। मेरे बच्चो! इसी दुर्घटना को लो। मैं मोहन की हत्या को बहुत ही बुरा काम मानता हूँ; परन्तु भगवान् की माया, इसी अन्धकार मे प्रकाश की एक पवित्र रेखा चमक उठी। यह वही रेखा थी जिसके आधार पर धरती खड़ी है।"

कान्त उत्सुक-सा बोला, "जी क्या हुआ ?"

"हुआ यह, मेरे बच्चो! जिस समय पचास पापी एक निहत्थे मनुष्य को केवल इसीलिए मार डालने को आतुर थे कि वह उनके धर्म को नहीं मानता था उस समय उन्हीं में से एक मनुष्य ऐसा निकल आया जिसने उसकी जान बचाने के लिए अपने प्राणों का मोह नहीं किया।"

कान्त और कुमार दोनों एक साथ बोले, "सच ?"

"जीहाँ! जब उन धर्मांधों ने उसे घेर लिया था तब उसका पड़ौसी कुँजड़ा भागा हुआ आया।"

"मुसलामन कुँजड़ा।"

"जीहाँ, वह मुसलमान कहा जाता है, परन्तु वास्तव में है मनुष्य। वह भागता हुआ आया और मोहन के ऊपर गिर पड़ा, उसी प्रकार जिस प्रकार चिड़िया अपने डैने फैलाकर अपने बच्चो को बाज के आक्रमण से बचाना चाहती है।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? बाज बाज है और चिड़िया चिड़िया! उन लोगों ने उसको पकड़कर एक कोठरी मे बन्द कर दिया। वह बराबर पुकारता रहा, परन्तु उसकी पुकार जंगल की पुकार थी।"

कान्त का मन अनायास एक गहरी श्रद्धा से भरता चला गया, और धीरे से वह बोला, "कैसी अद्भुत बात है!"

"जीहाँ। उसकी माया है। पत्थर के पेट में से उसने जल का मार्ग बनाया है, लेकिन बात यह है कि न जाने कब का किया हुआ सामने आ गया। ऐसा प्यारा, ऐसा गुणी, ऐसा सुशील लड़का! यह अन्त! प्रभु, तेरी माया तू ही

जानता है; तू ही जानता ।"

वह सज्जन मानो शून्य में आविर्भूत होने लगे, लेकिन दूसरे ही क्षण सहसा जागकर उन्होंने कहा, "बच्चो! जब उसकी याद आती है तो हृदय में टीस उठने लगती है; लेकिन···लेकिन मेरे बच्चो! क्या किया जाय··? मैं इन लोगों को अपने पास ले आया हूँ। बेचारे परदेशी हैं। घर तार दिया है। किसी के आने तक यहीं ठहरेंगे।"

वे बातें कर रहे थे। परन्तु माँजी का आर्तनाद इसी तरह उठ रहा था। वह कभी चीत्कार कर उठतीं, कभी सिसकने लगतीं। कभी-कभी उनका स्वर इतना गिरता कि पिल्ले की चीं-चीं से अधिक तेज आवाज पैदा नहीं कर पाता था। उस समय लगता था कि यह शब्द अब बन्द हुआ, अब बन्द हुआ। लेकिन दूसरा क्षण आता, "हाय मेरे बेटे, मेरे लाल, मेरे मोहन" की करुण पुकार हृदय मे पेंच की तरह टीसने लगती, जो सीधी नही, अपितु चारों तरफ एक गहरी कुरेदना के साथ ऐंठ-पर-ऐंठ देती हुई प्रवेश करती है।

दूसरी ओर रात अविराम गति से आगे बढ़ रही थी। समदर्शी चन्द्रमा की मधुर चाँदनी आँगन में उतर आई थी और उस आलोक मे तारों की छवि मन्द पड़ गई थी, पर नील गगन मुखरित हो उठा था। वह सज्जन बोल उठे, "दस बजने वाले हैं और बच्चो! तुम्हें दूर जाना है। तुम लोग बड़े अच्छे हो। इतना कष्ट किया।"

उठते-उठते कुमार ने कहा, "जी कष्ट क्या है?"

"बेशक बच्चो, कष्ट कुछ नहीं है। प्यार के दो शब्द मुर्दा शरीर में जीवन फूँक देते हैं। परन्तु आज यही दो शब्द महँगे हो गये हैं।"

"जीहाँ, आप ठीक कहते हैं।" कान्त बोला और वे लौट चले। देहरी पर आकर कान्त सहसा ठिठका और मुड़कर उसने दृढ़ स्वर में कहा, "माँजी! मैं कल फिर आऊँगा।"

और फिर वे अन्धकार में अदृश्य हो गए। क्षण-भर बाद वे सड़क पर थे और उनके पीछे किवाड़ बन्द हो चुके थे। वही सन्नाटा, वही मरघट की

शान्ति। कुमार ने कहा, "कान्त! यह संसार कैसा है?"

कान्त ने उत्तर दिया, "इसी कैसे-वैसे का नाम संसार है।"

"शायद।"

: २ :

कान्त दफ्तर मे अपनी मेज पर बैठा ड्राफ्ट लिखने में तन्मय था कि किसी ने आकर कहा, "कान्त बाबू! शहर में दंगा हो गया।"

"दंगा!" वह हठात् चौंक पडा।

"हाँ, हिन्दू और मुसलमान लड़ पड़े। मुसलमानो ने गोली चलाकर पाँच हिन्दुओं को मार डाला। उनमे रायबहादुर ज्ञानचन्द्र···"

"क्या कह रहे हो?"

उसने कागजो का पैड सरका दिया, और कमरे से बाहर आ गया। सारे दफ्तर में खलबली मच गई। उस्मान, नरेन्द्र, बदनसिंह, रफीक और गुप्ता सभी व्यग्र और उत्कण्ठित-से उसके चारों ओर इकट्ठे हो गए।

बदनसिंह ने पूछा, "क्या हुआ, कान्त!"

कान्त बोला, "सुना है, गोली चल गई है।"

"किसने गोली चलाई। ऐं···" रफीक ने कहा।

"सुना है, मुसलमानो ने रायबहादुर ज्ञानचन्द्र को गोली से मार डाला।"

जो मुसलमान थे; वे सहसा सकपका गये, पर तभी शहर से आने वाले एक मुसलमान ने बताया, "रायबहादुर के पास भी बन्दूक थी।"

"सच?"

"मैंने देखा था।"

उस्मान ने तब गम्भीरता मे कहा, "तो गोली दोनो ओर से चली है।"

उसके बाद वे अलग-अलग हो गए। बड़े बाबू ने जोर से कहा, "अपना-अपना काम करो।"

लेकिन काम करने वाला मन मर चुका था। वे अब क्लर्क नही रहे थे। उनके अन्तर का, हिन्दू-मुसलमान, जाग उठा था और धर्म-प्रेम की प्रतिस्पर्धा मे वह एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने को आतुर था।

रफीक ने उस्मान से कहा, "अच्छा हुआ, रायबहादुर मारे गये। बन्दूक लेकर चले थे।"

उस्मान हँसा, "लालाजी बन्दूक चलाना क्या जानें?"

"हा," रफीक भी हँसा, "कौन जानता है कि अपनी ही बन्दूक की गोली छाती मे जा लगी हो।"

'शायद।"

"शायद नहीं, बहुत मुमकिन है।"

उधर गुप्ता ने बदनसिंह से पूछा, "क्यों बदनसिंह! मुसलमान एक भी नही मरा?"

"नहीं।"

गुप्ता का दिल बैठ गया। उसने धीरे से कहा, "हिन्दू कायर हैं, सदा पिटते हैं।"

उसकी वाणी में पराजय की खीज थी। उस दिन वास्तव में शहर में वह हुआ जो आज तक नहीं हुआ था। सबसे पहले उन लोगो ने लाला प्रेमनाथ की दुकान में आग लगा दी। वह कपडे के सबसे बडे व्यापारी थे। उनकी दुकान नये माल से भरी थी। तेजी से जलने लगी। आकाश धुएँ से भर गया और उसी अंधकार की छाया में अग्नि एक के बाद एक करके दूसरी दुकानों में फैलती गई। लुटेरे सजग हो उठे और शहर के अनेक भागो में दंगा आरम्भ हो गया। मुसलमानों ने पुकार की, "काफिर बढ़े आ रहे हैं। उनको रोको, नहीं तो हम बर्बाद हो जायँगे।"

और वे लाठियाँ लेकर निकल पड़े। वे तीव्रता से आगे बढ़ रहे थे और पुकार रहे थे, 'अल्लाहो अकबर'। जलते हुए बाजार को देखकर बहुत-से हिन्दू भी अपने घरों की ओर दौड़े। उनमें से जो गुण्डे और बदमाश थे उनकी बन आई। वे सबकी आँखों के प्यारे बन गए। उन्होंने गम्भीर स्वर में घोषणा की, 'हम म्लेच्छों का बीज मिटाकर लौटेंगे। बोलो बजरंग बली की जय।'

दोनों भीड़ें एक-दूसरे से टकराईं, लाठियाँ उठीं और गिरीं। जय-घोष से अखाड़ा गूँज उठा। उस रौरव-घोष में घायलों का शब्द नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह उठकर मौन हो गया। सहसा मुस्लिम दल के नेता ने देखा, उसका दल पीछे हट रहा है। वह चीख उठा, 'बुज़दिलो! क़यामत के दिन अल्लाह को क्या मुँह दिखाओगे?' लेकिन वे हटते गये, सो हटते ही गये। वह घबराकर घर की ओर दौड़ा। 'बजरंग बली की जय' के कारण उसके कान फट रहे थे। मार्ग में खून से लथपथ लाशें सिसक रही थीं। वह और भी तेजी से दौड़ा। सामने उसका मकान था। उसके बाईं ओर एक नया कोलाहल उठ रहा था। वह शीघ्रता से ऊपर चढ़ गया। उसने सुना, कोई बोला, "हमीद! निशाना साध! वह देख, वह···हाँ, वही···उसने सफ़ेद दुपट्टा बाँधा है। उसके हाथ मे बन्दूक है···।"

"हाँ, देख रहा हूँ। तनिक पीछे तो हट···।"

'और धायँ-धायँ।"

"क्या?"

"धायँ-धायँ।"

"शाबाश, करीम!"

"और धायँ-धायँ ···।"

करीम चिल्ला उठा, "लो, वे भाग गए। साले, हरामजादे।"

अहमद, जो तन्मय होकर अभी तक झरोखों में दृष्टि गड़ाये हुए था, बोला, "पाँच लाशें हैं।"

"पाँच, बस!"

करीम ने तड़पकर कहा, "अबे ! पाँच क्या थोड़ी हैं ?"

और फिर एक गहरी साँस लेकर बोला, "आज बाजी जीती है। काफ़िर जन्मभर याद रखेंगे।" उसने सब सुना और देखा। छाती उभर आई। विजय-गर्व से भरकर उसने कहा—

"शाबाश ! अल्लाह के बन्दो ! तुम्हें बहिश्त मिलेगा।"

तभी अहमद ने कहा, "लेकिन जल्दी करो। हमें अभी बन्दूकों को छिपा देना होगा।"

और दूसरी ओर—

उन्होंने मुसलमानो को पीछे धकेल दिया था। उनकी एक टुकड़ी चौक मे उनके घरो के पास तक पहुँच गई थी। वे हर्ष से उन्मत्त हो गए थे। उन्हे विश्वास था कि वे आज सदा का कलंक धो देंगे। तभी सहसा सामने के नये मकान से बन्दूक की आवाज उठी। वे अचकचाये, "बन्दूक !" वे काँपे और पीछे हटे। उनके नेता ने देखा, वे पीछे हट रहे हैं। वह क्रोध से पागल होकर चिल्ला उठा, "क्या करते हो, आगे बढ़ो। बन्दूक छीन लो।"

पुकार में कुछ शक्ति थी। कुछ लोग आगे बढ़े। पीछे वाले दौड़कर राय-बहादुर ज्ञानचन्द्र के पास पहुँचे। कहा, "अपनी बन्दूक हमें दे दो।" जवाब मिला, "नहीं।"

"वे लोग गोली चला रहे हैं और हम लोगो के मर जाने की सम्भावना है।"

"सच ?"

"आप चलकर देख लीजिये।"

रायबहादुर वृद्ध थे; पर हिन्दू भी थे। उठे और बन्दूक लेकर उनके आगे-आगे चल पड़े। कहते हैं, बन्दूक खाली थी और वह केवल मुसलमानों को डराना चाहते थे। परन्तु जैसे ही वे चौक के समीप आये उन्होंने एक आदमी को गिरते देखा। वे चिल्लाये, "फायर बन्द करो।"

तभी एक गोली उनके कान के पास से निकल गई। उन्हें कुछ सूझ न पड़ा। बन्दूक को सीधी करते-करते उन्होंने फिर पुकारा, "फायर बन्द करो।"

"धायँ-धायँ ··।"

गोली उनकी छाती में लगी। वह लड़खड़ाये और गिर पड़े। बन्दूक अभी उनके हाथ में थी पर उनकी भाग्य-रेखा अपना काम कर चुकी थी। उनके पक्ष के पैर उखड़ गये। वे भाग गये और लाशें तड़पती रहीं।

× × ×

वह रात जागरण की रात थी। यद्यपि पुलिस आ गई थी, परन्तु कब क्या हो सकता है, इसके सम्बन्ध मे कोई कुछ नहीं कह सकता था। डरा हुआ आदमी बुद्धि का शत्रु होता है, परन्तु कान्त के लिए वह रात एक समस्या बन गई। मोहनकृष्ण के घर से लौटकर वह सोने के लिए लेटा और आश्चर्य, सो भी गया; परन्तु सोते-सोते वह चौंककर उठा। उसने स्वप्न देखा था। उसके नगर में साम्प्रदायिक युद्ध हो रहा है। वह भी भीड़ में है और सधे हुए खिलाड़ी की तरह बंदूक चला रहा है। ठाँय-ठाँय करके 'ठँ' शब्द उठता है और मनुष्य गिर जाता है।

उसने गिरनेवालों को देखा। वे एक बे-तरतीब ढेर की तरह पड़े थे, एक-दूसरे के ऊपर और रक्त से सने हुए। उन्हें देखकर वह अट्टहास कर उठा।···तभी उसकी आँखें खुल गईं। वह काँपकर उठा। उसने आँखें मलीं। देखा, रात का सन्नाटा है और वह स्वप्न देख रहा है।

उसे शांति मिली। वह मुस्करा उठा और फिर सोने की चेष्टा करने लगा; परन्तु तभी पड़ौस से पण्डितजी का स्वर उसने सुना। वह अपने ऊँचे चिर-परिचित स्वर में रामायण पढ़ रहे थे। उसे क्रोध हो आया। वह शीघ्रता से उठा कि उन्हें पुकारकर नागरिकता के लक्षण सुना सके। पर तभी उसे याद आया—आज तो मेरा नगर युद्ध-क्षेत्र बना है। यहाँ सोना नियम नहीं है।"

वह सब-कुछ समझ गया और समझकर उसे फिर प्रश्नों ने घेर लिया,

लेकिन तब वह किसी भी प्रश्न पर विचार करना नहीं चाहता था। सोचते समय बार-बार एक मूर्ति उसकी आँखो के सामने उठती और उसे बुरी तरह झकझोर डालती। वह फुसफुसा उठता—यह क्या हुआ? आखिर यह क्या हुआ?

रात्रि के बाद दिन और भी भयंकर था। कल जो शहीद हुए थे उन्हींको श्मशान-भूमि मे ले जाने के लिए एक विराट् जुलूस का आयोजन हो रहा था। प्रत्येक शव उसके सम्बन्धियो को सौंप दिया गया था और सब लोग अपने-अपने घर पर तैयारी कर रहे थे। कान्त ने सोचा—मैं पहले रायबहादुर के घर चलूँगा, क्योंकि वहाँ बहुत लोगो के होने की आशा थी और वह अधिक-से-अधिक लोगों को देख लेने को उत्सुक था। वह उनके चेहरो की भाषा पढ़ना चाहता था। साथ ही वह रायबहादुर के लड़के के सामने भी अपनी उपस्थिति प्रकट करना चाहता था। उसका लड़का ही क्यों, पुलिस का बड़ा कप्तान, ज़िले का प्रधान अफसर और दूसरे अंग्रेज हाकिम सभी वहाँ आने वाले थे। इसलिए वह वहाँ गया। मार्ग मे उसने देखा—बाजार सूने पड़े हैं, कभी कोई कुत्ता भोंक उठता है अथवा कभी-कभी कुछ आदमी एक ओर तेजी से आते हैं और दूसरी ओर निकल जाते है। वे सभी हिन्दू हैं। उस मार्ग में, जो प्रायः एक मील का था, उसने एक भी मुसलमान नहीं देखा, यद्यपि वह जानता था कि और दिन वे इस बाजार मे ठठ-के-ठठ जमा रहते थे।

रायबहादुर के विशाल भवन के सामने मनुष्यों की अपार भीड थी, परन्तु बोलता कोई किसी से नहीं था। केवल कुछ लोग भवन के भीतरी भाग मे जाते और शीघ्रता से बाहर की ओर झपटते। कुछ लोग बाहरी ओसारे में कुर्सियों और मूढ़ों पर प्रस्तर-प्रतिमाओं की तरह बैठे थे। कुछ लान में बिखर गये थे। तब धूप निकल आई थी और चारों ओर मक्खियाँ भिनभिनाने लगी थीं। उसकी नजर दीवानखाने पर जा पड़ी। उसके आगे कुर्सी डाले फार्म का बड़ा अंग्रेज अफसर बैठा था। उसने सुन्दर पोशाक पहनी थी, पर उसकी

बाँह पर काली पट्टी बँधी हुई थी। वह बैठा शून्य में ताक रहा था और कभी-कभी हाथ उठाकर मक्खियाँ उड़ाने लगता था। बार-बार लोग उसके सामने से तेजी से निकल जाते थे पर उसे कोई पूछता तक नहीं था। उसके पीछे एक दूसरा अंग्रेज था। वह माल-विभाग का छोटा अफसर था। उसकी टाई काली थी; वह कभी-कभी उठकर बेचैनी से इधर-उधर टहलने लगता था।

कान्त अन्दर जाते समय दोनो के पास से गुजर गया। अचरज, उसने किसी को भी सलाम नहीं किया। वह सीधा ऊपर जाकर ओसारे में रेलिंग के सहारे खड़ा हो गया। वहीं से उसने सबको देखा। पुलिस का नाटा कप्तान पूरी ड्रेस में जितनी बार आया उतनी ही बार बैठे हुए लोग खड़े हो गये। वह मुसलमान था और उसके चेहरे से रौब टपकता था। उसके पास जो व्यक्ति खड़े थे उनमें से एक फुसफुसाया, "यही सब झगड़े की जड़ है।"

वह सीधा रायबहादुर के लड़के के पास पहुँचा और निहायत संजीदगी और नम्रता से बोला, "कितनी देर है?"

लड़के का चेहरा पीला पड़ गया था। उसने धीरे से कहा, "बस आधा घंटा और है।"

"कोई डर नहीं," कप्तान बोला और फिर उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहने लगा, "मैं तुम्हें यकीन दिलाता हूँ कि उनसे बदला लिया जायगा। रायबहादुर का खून यों ही नहीं जा सकता।"

और यह कहकर वह शीघ्रता से चला गया। लड़का कई क्षण तक उसे वहीं खड़ा-खड़ा देखता रहा। फिर वह भी शीघ्रता से अन्दर चला गया। उसी समय जिले का हाकिम एक बड़े अफसर को लेकर पहुँचा। उन्होंने दोनों अंग्रेज अफसरों से हाथ मिलाया और उन्हें कुछ हिदायतें दीं। फिर अन्दर जाकर रायबहादुर के सम्बन्धियों से बातें करते रहे। कर चुके तो लौट गये। जाते समय सभी लोगों ने अलग हटकर उन्हें मार्ग दिया और अदब से सलाम झुकाई। कुछ लोग धरती पर दोहरे हो गये। कुछ लोगों के हाथ स्प्रिंग की तरह तेजी से उठे और गिरे, परन्तु दोनों हाकिम सब ओर से आँखें बन्द

किये आपस में धीरे-धीरे बातें करते हुए उधर ही चले गये, जिधर से आये थे।

तभी सहसा कान्त को याद आया कि उसे मोहनकृष्ण के घर जाना चाहिए। बस वह तेजी से रेलिंग छोड़कर नीचे उतरा और बाहर चला आया। उसे किसी ने नहीं टोका ; यद्यपि उस भीड़ मे बहुत-से चेहरे उसके जाने-पहचाने थे।

जब वह वहाँ पहुँचा तो लाश अर्थी पर ली जा चुकी थी। लगभग बीस-पच्चीस आदमी थे। सबके नेत्र सजल थे। कान्त को भी आँसू रोकना कठिन हो गया। उसने चाहा कि वह वहाँ से भाग चले अथवा भगवान् ऐसा करे कि वह जो-कुछ देख रहा है स्वप्न बन जाय और मोहन सदा की भाँति उसे पुकारकर कहे, 'आइये भाई साहब ! आप तो कभी आते ही नहीं। सुनाइये आपकी राजनीति क्या कह रही है…?'

लेकिन तभी उसने देखा—माँ पुत्र के शव से चिपटकर करुण-क्रन्दन कर रही है, 'मेरे बच्चे, मेरे लाल, हाय मेरे बच्चे, हाय मेरे लाल, हाय अब मैं किसका मुँह देखूँगी ? कौन मुझे माँ कहेगा ? हाय…मै…'

"बस करो माँ ! बस करो।" कुछ युवक आगे बढ़े। उन्होंने माँ को धीरे-धीरे किंतु दृढ़ता से पुत्र के शव से अलग कर दिया। तभी उसने मोहन की पत्नी को देखा। क्षण-क्षण में बेहोशी से जागकर वह कह रही थी, "मैं मरना चाहती हूँ। मैं मरना चाहती हूँ…"

कान्त को लगा कि अब कमला जीवित नहीं रह सकती और वही क्यो, मुँह फाड़े विकराल मौत का साया वहाँ सब पर पड़ रहा है। कुछ क्षण की देर है; कोई नहीं बचेगा। लेकिन तभी किसी ने बाहर से आकर कहा, "जल्दी कीजिये" और उसने यंत्र की भाँति अर्थी के अगले बाँस को उठा लिया। मौन स्वर फूट पड़े—'राम नाम सत्य है' और माँ का चीत्कार तीव्र से तीव्रतर और फिर तीव्रतम हो चला। नारी-वर्ग ने उसे दृढ़ता से पकड़ लिया था; परन्तु उन्हें परे धकेलकर वह आगे बढ़ आती थी, "मुझे छोड़ दो, मैं उसके बिना नहीं जी सकती। वह मेरा बेटा है।"

अर्थी आगे बढ़ी। चीत्कार का शब्द अब गहराने लगा। अर्थ अस्पष्ट हो चले। पत्नी की मूर्च्छा ही अब उसका सम्बल बन रही थी और शव-यात्रा का जलूस धीरे-धीरे गली को पार कर रहा था, 'एक ही नाम सत्य है।' और धीरे-धीरे दूर हटता हुआ चीत्कार मूर्द्धन्य में समा रहा था, 'मेरे लाल···मेरे बच्चे···!"

कान्त का मस्तिष्क चक्रवत् घूम रहा था; पर उसे बढ़ना था, इसीलिए बढ़ रहा था। वह तब था भी, और नहीं भी था। भावनाओं का दास, होकर भी नहीं होता। तभी बढ़ती हुई भीड़ में से किसी ने उसके आगे आकर अपना कन्धा लगा दिया। वह पीछे हटा। उसकी दृष्टि शव पर जा अटकी। कल जो जीता था आज वह मर गया। सबको एक दिन मरना है; परन्तु ऐसी मौत·। कान्त की मृदुल कल्पना पर आघात हुआ। मृत्यु अटल है, परन्तु जीवन···

भीड़ ने जोर से पुकारा, "राम ही नाम सत्य है।" हाँ, जीवन सत्य है। जीवन ही एक-मात्र सत्य है और मोहन सदा जीता रहा है और रायबहादुर···

उसने देखा कि रायबहादुर की अर्थी एक विशाल जन-समूह के बीच बहु-मूल्य शाल-दुशालों और सुगंधित पुष्पों से आच्छादित धीरे-धीरे नववधू की तरह आगे बढ रही है। जनता उनको कन्धा देने के लिए इतनी व्यग्र है कि शव के चारो ओर एक अजीब उछल-कूद होने लगी है। यहीं आकर दोनो अर्थियाँ एक साथ आगे-पीछे मिल गईं। जैसे दो नदियाँ मिल जाती हैं। उस विशाल भीड़ में नगर के सभी अफसर, पुलिस के सशस्त्र सिपाही और सभी जन-सेवक थे। इसके अतिरिक्त वे सभी सज्जन भी थे जिन्हें संसार कोई महत्त्व नही देता; परन्तु उनकी अपनी दृष्टि उन्हें सबसे महत्त्वपूर्ण समझती है। वे सब अपने पद और अपनी महत्ता के भार से दबे मन्थर गति से आगे बढ़ रहे थे परन्तु धीरे-धीरे जनता सारे संचालन-सूत्र पर अधिकार करती जा रही थी।

क्षण बीते। कोई भीड़ में से पुकार उठा, "रायबहादुर ज्ञानचन्द जिन्दाबाद!"

दूसरे ने गद्‌गद् होकर कहा, "मोहनकृष्ण की जय!"

तभी तीसरी अर्थी उनमें आ मिली। वह चिम्मा कुम्हार के लड़के की थी, जो केवल ग्यारह वर्ष की आयु में हिन्दू-धर्म के लिए शहीद हो गया था। यहीं किसी धर्म-प्राण व्यक्ति ने उछलकर पुकारा, "हिन्दू-धर्म जिन्दाबाद", "रायबहादुर ज्ञानचन्द जिन्दाबाद", "बाबू मोहनकृष्ण जिन्दाबाद", "कामरेड प्रेमा जिन्दाबाद।"

फिर चौथी अर्थी दिखाई दी। उसने भी अपना स्थान बनाया। जनता ने पुकारा, "लाला देवीदीन की जय।" उन्होंने पचपन वर्ष की आयु में शहादत का प्याला पिया था। जीवन-भर सूद खाते रहे। परन्तु मृत्यु ने अचानक उन्हे अमर कर दिया। उनकी अर्थी पर केवल श्वेत वस्त्र डाला गया था, जिस पर रोलो के लाल निशान लगे थे। उन्हें गर्व था कि वे चार युवा पुत्रो के पिता थे। यद्यपि उनकी सूरत पर सदा मनहूसियत बिखरी रहती थी, परन्तु आज वे अपने चारों पुत्रों के कन्धो पर चढ़कर अंतिम यात्रा कर रहे थे और वे चारो पुत्र सारी शक्ति के साथ पुकार रहे थे, "लाला देवीदीन की जय।" पाँचवीं अर्थी रामनाथ के एक-मात्र पुत्र की थी, जो स्कूल से लौटते हुए तमाशा देखने लगा था और तब काल भगवान् ने चुपके से एक गोली का मार्ग उसके मस्तिष्क में से बना दिया था। वह कॉंग्रेसी का बेटा था, इसलिए उसका शव तिरंगे में लिपटा हुआ था। उसका बाप उस समय आश्चर्यजनक रूप से शान्त था। उसे देखते ही लहरें मारती हुई जनता ने स्वर-घोष किया, "कामरेड कमलनाथ जिन्दाबाद।" तब जन-समूह उमड़ा पड़ता था और हिन्दू लोग पागलों की तरह उन पाँचों शवों को अपने कंधों पर धारण किये पुकार रहे थे, "रायबहादुर ज्ञानचन्द जिन्दाबाद", "कामरेड मोहनकृष्ण जिन्दाबाद", "कामरेड प्रेमा जिन्दाबाद", "कामरेड कमलनाथ जिन्दाबाद," "हिन्दू-ध र्म जिन्दाबाद।"

जलूस के आगे-पीछे पुलिस थी। इधर-उधर जिले के सभी अफसर बिखरे हुए थे। उन सबके हाथों मे रिवाल्वरें और पिस्तौले थीं, और उन सबके बीच मे चल रही थी असंख्य हिन्दू जनता, समुद्र की लहरों की तरह हिलोर मारती और क्षण-क्षण मे ज्वार की तरह उफनती। रह-रहकर गगन-भेदी स्वर गूँज उठता, "हिन्दू-धर्म जिन्दाबाद।"

सुनकर कान्त ने सोचा कि कौन कहता है, हिन्दू कायर हैं? कौन कहता है, हिन्दू अपने धर्म से प्रेम नहीं करते? समस्त हिन्दू आज एक स्वर से अपने धर्म की जय-घोषणा कर रहे हैं। शायद कल मुसलमानो ने समझ लिया था कि हिन्दू-धर्म मर चुका है। उसी भ्रम का निवारण करता हुआ उनका स्वर-घोष उठता है, "हिन्दू धर्म जिन्दाबाद।"

कान्त धीरे-धीरे जलूस के मध्य भाग में आ गया था और अब वहाँ से पीछे हट रहा था। परन्तु तभी उसने देखा कि जलूस वहाँ आ पहुँचा है जहाँ कल गोली चली थी। मानो बाँध टूट गया। शब्द की सीमा लाँघकर असंख्य कंठ पुकार उठे, "हिन्दू धर्म जिन्दाबाद", "रायबहादुर ज्ञानचन्द जिन्दाबाद", "बा० मोहनकृष्ण जिन्दाबाद", "का० प्रेमा जिन्दाबाद", "ला० देवीदीन जिन्दाबाद", "का० कमलनाथ जिन्दाबाद", "हिन्दू धर्म की जय।"

एक बार नहीं, अनेक बार यह जय-घोष उठने लगा। पुकारने वालों के नेत्र रक्तवर्ण हो आये। स्वर भर्रा गया और बसन्त की सुहावनी ऋतु में भी वे पसीने से तर हो उठे। अधिकारी-वर्ग के लोग, तब घबराकर, प्रतिष्ठित हिन्दुओं के पास पहुँचे और कान में फुसफुसाने लगे। उन प्रतिष्ठित हिन्दुओं ने युवक-समुदाय से प्रार्थना की, "आगे बढ़िये।"

कई युवक एक साथ बोले, "अभी नहीं।"

"नहीं भैया! देखो तो··"

"आप कायर हैं।" एक युवक ने जिसका गला बैठ गया था; चीखकर कहा, "हम नहीं जायँगे।" और जय-घोष फिर उठा। लगा जैसे कुछ होने वाला है। पुलिस संकेत पाकर सजग हो उठी। कान्त सब-कुछ देख रहा था। वह

शीघ्रता से आगे बढ़ा। उसने कुमार को ढूँढ़ निकाला और बदनसिंह को भी। उसके और दूसरे मित्र भी उसके पीछे हो लिये। उन्होंने धर्म-प्राण वीरों की टोली में घुसकर एक बार समस्त शक्ति लगाकर जय-घोष किया। कर चुके तो आगे बढ़ गये। वे आगे बढ़े, जनता आगे बढ़ी। जो व्यूह क्षण-भर पहिले अभेद्य था वह अब खण्ड-खण्ड हो गया। आगे का मार्ग प्रशस्त था। वे नगर के अन्तिम द्वार पर जाकर ही रुके। यहाँ पर पिण्ड-दान की क्रिया सम्पन्न होती थी।

फिर धीरे-धीरे वह दूर तक सीधी चली गई सड़क, जिसके एक तरफ़ ईदगाह का मैदान फैला हुआ था और दूसरी ओर बहुत-से बाग थे, समाप्त होने लगी। सूरज काफी ऊँचा चढ़ आया था। हवा एकदम बंद थी और जय-घोष का उत्साह फीका पड़ गया था। श्मशान की पवित्र गंभीरता सब पर अपना प्रभाव डाल रही थी। जिस समय वे वहाँ पहुँचे तो पूरे मैदान पर धूप छा रही थी और श्मशान-भूमि के कुत्ते पूँछ उठाकर उस विशाल जन-समूह को देखने लगे थे, जो इस छोटे-से कम्पाउण्ड में समाने में असमर्थ आस-पास की समाधियों और चबूतरों पर फैलता जा रहा था।

अर्थियाँ फोटो लेने के लिए एक साथ रख दी गईं और नातेदारों को साथ लेकर पंच लोग चिता सजाने में व्यस्त हो गये। कान्त ने देखा कि वे धीरे-धीरे बच-बचकर कदम उठाते हैं। प्रत्येक पग रखते समय जैसे उनके दिल पर ठेस लगती है, क्योंकि वह सारा चौक राख से भरा हुआ है, और वह राख मानव की राख है न जाने कितने मानव एक-दूसरे से सटे हुए, एक-दूसरे के ऊपर, एक दूसरे के बाद एक अन्तहीन सीमा तक इस सीमित चौक में सोये पड़े हैं। बीच-बीच में प्रहरी की भाँति खड़े हैं समाधि-भवन, जिनकी काली दीवारों पर मरने वालों के नामों की एक लम्बी तालिका अंकित है। उन्हीं समाधियों के आस-पास, ऊँची नीची भूमि में, असंख्य शिशु भारत की शक्ति के साक्षी-स्वरूप अनन्त निद्रा में सोये पड़े हैं। धरती के दुःख से दुखी सियार और कुत्ते उनके पार्थिव-शरीर को निरन्तर अपने उदर में स्थान देने की कृपा करते रहते हैं।

और उसीके पास झाडियाँ हैं। झाडियों से परे खेत हैं, और खेतों को सींचने वाली नहर है, जिसके किनारे पर बैठा हुआ माली अक्सर प्यारे गले से गाया करता है। बैल अब भी खड़े-खड़े जुगाली कर रहे हैं। कभी-कभी मक्खियाँ उड़ाने को गर्दन हिलाते हैं तो घंटियाँ बज उठती हैं।

दृष्टि फिर लौटी। फोटो लेने का काम समाप्त हो चुका था। और विशेषज्ञ लोग चिता बनाने वालों को अन्तिम हिदायत दे रहे थे, "रामसिंह देखो, क्या कर रहे हो? लकड़ी ऊपर रखो। हाँ, हाँ, सिर के पास। "देखो भई, छाती के लिए चौड़ी जगह बनाओ।" "ब्रजनाथ, पैरों के पास अधिक लकड़ी चाहिए।" "हाँ हाँ, ठीक है, बस। अच्छा लो, रामनाथ, कृष्णगोपाल, ब्रजनाथ, अब तुम बाकी लकड़ियाँ पास लाकर रखो।" फिर उन्होंने अर्थियाँ खोल डालीं। "हरे-हरे!" "शिव-शिव!" "राम-राम!" की ध्वनि हुई। श्मशान-भूमि का चिर-परिचित चाण्डाल आगे बढ़ा। उसने सभी दुशाले बटोर लिये। तभी कुमार ने आकर कहा, "आओ कान्त, उधर बैठेंगे।"

बिना बोले वह उसके साथ चला गया। चिताएँ प्रज्वलित हो उठीं। लोग अलग-अलग मंडली बनाकर अपने-अपने वर्ग की समस्याएँ सुलझाने लगे। वे रह-रह कर बीड़ी का धुआँ उड़ाते और तेजी से बातें करने में व्यस्त हो जाते। वह कुछ देर मौन अपने मे खोया-खोया बैठा रहा। फिर धीरे-धीरे वह भी बातों में मग्न हो गया। तब तक चिता की लपटें ऊँची उठने लगी थीं और मांस—मज्जा जलने की दुर्गन्ध और 'चड-चड' की ध्वनि चारों ओर फैल गई थी। बातें वर्तमान राजनीति, हिन्दू-मुसलिम-समस्या को पार करती हुई दंगों पर आकर ठहर गईं। कुमार का मत था कि दोनों पक्ष चाहें तो हर एक बात का हल मिल सकता है। इसके समर्थन में उसने कहा, "मैं तुम्हें एक सच्ची घटना बताता हूँ, जिन चबूतरों को लेकर यह रक्तपात हुआ है उन्हीं को लेकर कई साल पहले भी, एक बार इसी तरह तनातनी हो गई थी। हिन्दू लोग मानते थे कि चबूतरे उनकी संपत्ति हैं, वे इन पर कथा कहते हैं। मुसलमान कहते थे—क्योंकि हम इन पर नमाज पढ़ते हैं, ये हमारे हैं। इस बात

को लेकर कई बार अनेक निर्दोष प्राणियों का रक्त बहाया गया। अनेक नवयुवकों का यौवन-काल जेलों में व्यतीत हुआ, लेकिन जैसा कि होता है कोई निर्णय नहीं हो सका। हिन्दू जाति के नेता लाला रामचन्द्र थे और ···।"

बीच में यकायक कोई बोल उठा, "लाला रामचन्द्र रायबहादुर ज्ञानचंद के चाचा थे।"

"जीहाँ, वही थे और मुसलमानों का लीडर था अल्लादिया कसाई। उस समय शहर में जीवन उमड़ पड़ा था। सब लोग धर्म के नाम पर प्राण उत्सर्ग करने को आतुर थे। वे बातें करते थे, आग पैदा होती थी परन्तु अधिकारी वर्ग अपने स्वभाव के अनुरूप देखकर भी नहीं देखना चाहता था। तभी अचानक एक दिन अल्लादिया का इकलौता बेटा सलीम बेहोश हो गया। वह कई दिन से बीमार था। उस रात उसके जीवन की आशा जाती रही। क्षण-भर मे मुँह नीला पड़ गया और हाथ-पैर बर्फ-जैसे ठण्डे हो गये। फिर तो घर में एक तूफान आ गया। उसकी माँ ने रोते-रोते दीवार में सिर दे मारा। बाप के मुख पर मौत की भयानक छाया छा गई। जो पास-पड़ोस मे थे, वे भी शोकाकुल हो उठे। वह उनके नेता का इकलौता बेटा था। लेकिन इसी समय अल्लादिया के एक चचा ने गम्भीर स्वर में कहा, "मैं इस रोग को पहिचानता हूँ। इसकी दवा एक ही आदमी के पास है।"

एक साथ अनेक व्यक्तियो ने व्यग्र कण्ठ से पूछा, "किसके पास है, जल्दी बताओ।"

चचा उसी तरह बोले, "बताने से क्या होगा? तुम लोग वहाँ नहीं जा सकते।"

अल्लादिया सहसा क्रोध से भर आया। उसका इकलौता बेटा मरणासन्न है और चचा मजाक कर रहे हैं। उसने जलती हुई आँखों से उसे देखा और पूछा, "आखिर वह कौनसे जिन्न के पास है?"

चचा उसी तरह शांत थे। उन्होंने कहा, "बेटे! वह जिन्न से भी बढ़कर है।"

"आखिर···"

"लाला रामचन्द्र।"

"लाला रामचन्द्र," वे फुसफुसाये और फिर एक गहरा सन्नाटा छा गया। अल्लादिया ने दोनों हाथों से मुँह ढक लिया। कई युगो-जितने लम्बे क्षणों तक कोई नहीं बोला। आखिर सलीम की अम्मा ने रोते-रोते कहा, "कोई नहीं जाता तो मै जाऊँगी।"

फिर भी कोई नही बोला सब मूर्ति की तरह बैठे रहे। अल्लादिया के दिल के अन्दर कैसा भयानक तूफान उठ रहा था यह वही जान सकता है, जिसके खानदान की लौ बुझने से पहले टिमटिमा रही हो। अन्दर से फिर आवाज उठी, "मै जा रही हूँ।"

"उस समय सलीम के अब्बा से बैठा नहीं रहा गया। वह तेजी से उठा और चचा से कहा, "चलो चचा! मैं लाला रामचन्द्र से भीख माँगूँगा।"

और वह रो पडा। चचा चुपचाप उठे। और कई व्यक्ति उठे। वे बिना कुछ बोले आगे बढ़ गये। उन्होंने उसी शान्ति से काली सड़कों को पार किया और लाला रामचन्द्र के विशाल भवन के सामने पहुँच गये। उस समय उनकी खिड़कियों से होकर बिजली का तेज प्रकाश सड़क पर बिखरा पड़ा था। और बीच-बीच मे उनके पेचदार हुक्के की गुड़गुड़ाहट उस भयानक सन्नाटे को भंग करती हुई काफी दूर तक फैल जाती थी। चचा ने द्वार पर बैठे हुए दरबान से कहा, "हम अभी लालाजी से मिलना चाहते हैं।"

दरबान ने उन लोगो को अचरज से देखा और पूछा, "आप कौन हैं।"

उसने कहा, "शेख अल्लादिया।"

दरबान अन्दर गया और लौट आया। बोला, "जाइये।"

वे लोग अन्दर चले गये। तब वहाँ बहुत-से लोग बैठे थे और कोई गम्भीर मंत्रणा चल रही थी। परन्तु अल्लादिया ने किसी ओर नहीं देखा। वह सीधा लाला रामचन्द्र के पास पहुंचा और बोला, "लाला साहब, मैं आज मुसलमानों के लीडर की हैसियत से नहीं आया। मै आपसे एक भीख मांगने आया हूँ।"

कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं। उससे बोला नहीं गया। लाला रामचन्द्र ने उसे देखा। फिर चचा की ओर मुड़कर पूछा, "क्या बात है?"

"बात क्या है?" चचा बोले, "अल्लादिया का एक ही लड़का है। वही आज बेहोश पड़ा है। उसे जो बीमारी है, उसकी दवा सिर्फ तुम्हारे पास है।"

सन्नाटा और भी गहरा हो उठा। सभी ने भेदभरी दृष्टि से एक-दूसरे को देखा। लाला रामचन्द्र ने फिर एक बार जोर का कश खींचा। धुएँ का अम्बार मुँह से उठकर चारों ओर फैल गया। एक क्षण बाद वह बोले, "आप लोग चलें, मैं आता हूँ।"

दृष्टियाँ फिर मिलीं। वे लोग उठे। निहायत अदब से झुककर सलाम किया और चले गये। कमरे का सन्नाटा तेजी से भंग हो गया। सभी एक साथ बोलने लगे, "यह सब धोखा है।"

"आप वहाँ नहीं जा सकते।"

"वे आपको फँसाना चाहते हैं।"

"वे आपको मार डालना चाहते हैं।"

लालाजी हँसे। बोले, "हो सकता है, परन्तु मैं जाऊँगा।"

और फिर पुकारकर कहा, "नियाज़! लालटेन उठा लाना। जरा मेरे साथ चलना है···।"

कुमार यहाँ आकर क्षण-भर रुका। उसने अपने श्रोताओं को देखा। वे सब तन्मय थे। आत्म-विभोर उसकी ओर देख रहे थे। दूर चिता का स्वर रह-रहकर चटक उठता था। उसके मौन होते ही उनकी चेतना जागी। कान्त बोल उठा, "फिर क्या हुआ?" "हुआ यह," कुमार ने कहा, "उस रात जो बादल खून बरसाने आये थे, अमृत बरसाकर चले गये। लड़का बच गया और दो दिन बाद लाला रामचन्द्र के मकान पर दोनों जातियों के प्रतिनिधि उस झगड़े का फैसला करने का प्रण लेकर बैठे। जब उठे, तो निर्णय

हो चुका था। वह यह था चबूतरों पर न हिन्दुओं का अधिकार रहेगा, न मुसलमानों का। वे शहर की सम्मिलित सम्पत्ति माने जायँगे और उन पर कुँजड़े तथा माली फल और सब्जी बेचा करेंगे।"

इसी समय किसी ने ऊँचे स्वर से कहा, "कपाल-क्रिया का समय हो गया।"

अपने निर्दोष पुत्रों के भस्मीभूत मस्तिष्क मे छेद करते समय रामनाथ और प्रेमा कुम्हार फिर सुबक उठे और यदि लोग उनको सँभाल न लेते तो सम्भवतः कोई दुर्घटना हो जाती। जहाँ तक रायबहादुर और लाला देवीदीन का सम्बन्ध था, उनके समझदार पुत्रों ने बड़ी शान्ति से अपना काम पूरा किया। लेकिन बाबू मोहनकृष्ण ··।

एक वृद्ध सज्जन ने अर्थपूर्ण दृष्टि से चारों ओर देखा। सब लोग हाथों में लकडी के टुकड़े लिये शान्त खड़े थे कि क्रिया समाप्त हो और वे अंतिम बार लकड़ी डालने का कार्य पूरा करके लौट चलें। कोई नहीं बोला। वृद्ध सज्जन ने कहा, "बाबू मोहनकृष्ण की कपाल-क्रिया कौन करेगा?"

सहसा असंख्य कठ फुसफुसा उठे। परन्तु जो व्यक्ति आगे बढ़े, वे केवल दो थे—कांत और कुमार। कुमार आगे था इसलिए उसने बाँस उठा लिया। वह अपने जीवन मे पहली बार यह काम कर रहा था। उसे कँपकँपी आने लगी और बाँस हिलने लगा। तब उसने साहस करके अपने उस थोड़े से दिनों के मित्र के मस्तक को देखा। वह डर रहा था कि कहीं चोट न लग जाय। लेकिन वह तो छूते ही विदीर्ण हो गया; मानो विद्युत् चमकी; मानो भूकम्प आ गया। उसके हाथ से बाँस छूटकर गिर गया। लोगों ने पूर्ण-सतोष से कहा, "अब चलो।"

लेकिन वह तो रो रहा था और प्रकृति उदासीन थी। दूर माझी की आवाज भी मौन थी। जलूस लौट पड़ा। फिर वही लम्बी धूल भरी सड़क, गर्द का तूफान और ये असंख्य नर-नारी—शांत, मौन और थके हुए!!

: ३ :

कान्त, बदनसिंह और कुमार के साथ समाज-मन्दिर से लौट रहा था कि एक आदमी दौड़ता हुआ उनके पास आ खड़ा हुआ। वह हाँफ रहा था। वह कान्त के दफ्तर का चपरासी था। उसने कान्त को सलाम किया और कहा, "बाबूजी! जल्दी चलिये। साहब बहादुर आपको अभी बुला रहे हैं।"

कान्त सहसा क्रोध से काँप उठा। बोला, "आज रविवार है।"

"जी।"

"फिर…"

"जी, साहब बहादुर ने फरमाया है कि उन्हें कुछ फाइलों की जरूरत है। लाहौर से तार आया है।"

"अभी?"

"जी।"

"दफ्तर में और कौन-कौन हैं?"

"जी, बड़े बाबू आये हैं अभी तो…"

"चलो, मैं आता हूँ।"

चपरासी ने फिर सलाम किया और लौट गया। बदनसिंह बोला, "कैसी मुसीबत है। छुट्टी के दिन भी चैन नहीं।"

कुमार ने कहा, "निशिकान्त! तुम्हें इसका विरोध करना चाहिए।"

कान्त ने कोई जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप दफ्तर की ओर चल पड़ा। तब उसका निर्बल मन अपनी इस बेबसी पर क्रोध से भरता आ रहा था। वह सारे रास्ते सोचता रहा; परन्तु किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सका। क्रोध निर्णय का दुश्मन है; इसलिए जब वह दफ्तर पहुँचा तो उद्विग्न हो उठा था। उसने देखा, "बड़े बाबू शान्त चित्त से मेज पर झुके हुए ड्राफ्ट लिखने में तल्लीन हैं। बीच-बीच में अपने लिखे वाक्यों को जोर से पढ़ने लगते हैं और

तब उनकी गरदन हिल उठती है। वह सीधा अपने कमरे में पहुँचा और ताला खोलकर किवाड़ों को धीरे से हटाया। आहट पाकर बड़े बाबू ने उधर देखा, "कौन ? निशिकान्त !"

"जी।"

"इधर आओ।"

"जी, आता हूँ।"

कहकर वह अपनी कुर्सी पर बैठ गया। बैठा रहा, उठकर बड़े बाबू के पास नही गया। उन्होंने फिर पुकारा, "बाबू निशिकान्त !"

कान्त नहीं बोला। उसका मन अवसाद और विषाद के कारण कड़ुवा हो रहा था। वह रविवार के दिन दफ्तर बुलाने का बदला लेना चाहता था। बड़े बाबू को यह सब अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इस बार तेज होकर पुकारा, "बाबू निशिकान्त, सुनते क्यों नहीं ? साहब आने वाले हैं; फाइल चाहिए।"

कान्त क्रुद्ध स्वर में बोला, "कौन-सा फाइल।"

"धारा-सभा के प्रश्नोत्तर का फाइल।"

"लाता हूँ।"

"जल्दी लाओ। साहब आने वाले हैं।"

"साहब आने वाले हैं तो क्या करूँ ? छुट्टी का दिन है।"

बड़े बाबू क्रोध से उत्तेजित हो उठे। बोले, "जनाब, सरकारी नौकर के लिए कोई छुट्टी नहीं होती। वह चौबीस घण्टे का नौकर है।"

कान्त ने उसी तरह उत्तर दिया, "लेकिन मैं नहीं हूँ।"

"तो इस्तीफा दे दो।"

"क्यों दूँ इस्तीफा ? आप निकलवा दीजिये। नहीं देता फाइल···। और आगे के शब्द उलझकर रह गये। क्रोध से उसका शरीर काँपने लगा। हाथ में जो फाइल था उसे जोर से मेज पर दे मारा। बड़े बाबू ने अचरज से उसे देखा। क्रुद्ध वह भी थे पर न जाने क्या हुआ, वह एकाएक हँस

पड़े। बोले, "बाबू निशिकान्त, इतना आत्म-सम्मान है तो फिर तुमने नौकरी क्यों की?"

कान्त केवल तिलमिलाकर रह गया। कोई उत्तर उसे नहीं सूझा। तब बड़े बाबू उसके पास आये और बोले, "धारा-सभा के प्रश्न है। आज ही उत्तर जाना है, इसीलिए तुम्हे बुलाया है। तुम समझदार हो। और किसी को बताना नहीं चाहता। तुम स्वयं जानते हो, समय कैसा आ गया है। प्रश्न भी साम्प्रदायिक है ··।"

फिर क्षण-भर रुके और मुस्कराये। कान्त धीरे-धीरे निःशस्त्र हो रहा था, पर वह बोला नहीं। बड़े बाबू ने ही कहा—"हाँ देखो! वह फाइल ले आओ और क्लर्कों की नियुक्ति का फाइल, साम्प्रदायिक अनुपात का गुप्त फाइल, ये सब भी निकाल लो। साहब के साथ बैठकर अभी उत्तर देने होंगे। सब-कुछ तैयार मिलना चाहिए, समझे। इसी प्रकार अफसर की नजर में चढ़ा जाता है। इसी प्रकार उन्नति का मार्ग खुलता है।"

वह फिर मुस्कराये और शीघ्रता से चले गये। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि कान्त उस दिन चार बजे तक घर नहीं जा सका। जब गया तो देखा—दूध बिल्ली पी गई है।

उसका भूखा शरीर तमतमाकर रह गया!!

दूसरा खंड

: १ :

विमल प्रभात की सुनहरी किरणों ने वृक्ष और लताओं पर सुनहरी आभा बखेर दी। उनका यौवन निखर आया और कुएँ पर रहट खींचते हुए माली ने प्रकृति की इस मधुरिमा को देखा तो उसका कण्ठ आप-ही-आप मधुर स्वरों में फूट पड़ा। सैर के शौकीन बाबुओं को लगा कि जैसे वे आनन्द-सागर में डूब गये हैं! ठीक इसी समय अन्तरिक्ष-विद्या-विभाग का नवयुवक बाबू बड़ी शीघ्रता से कृषि-विभाग के आलीशान भवन की सबसे ऊपरी मंजिल पर जा पहुँचा। वहाँ वायु की सीमा और शक्ति का पता लगाने के यंत्र लगे हुए थे। वह नगर की सबसे ऊँची इमारत थी और वहाँ से दूर-दूर तक देखा जा सकता था। वह एक छोटा-सा नगर था और उसके छोटे-बड़े तथा एक-दूसरे में उलझे हुए मकान उसके सामने ऊँट के कूबड़ की तरह फैले पड़े थे। उसके पीछे कैर और जाल का विशाल जंगल था। उसी जंगल की छाती चीर कर ग्रांड ट्रङ्क रोड चली गई थी। उसने देखा दूर सड़क पर दो-तीन गाड़ियाँ धीरे-धीरे चली जा रही हैं और उनसे परे के गाँव की सीमा दिखाई पड़ती है, जिसके कच्चे मकान सूर्य के प्रकाश में चमक उठे हैं। वृक्ष और खेतों के बीच में कई कुए और तालाब हैं। उसके मन पर मोहिनी-सी छाने लगी; परन्तु तभी कहीं मोर बोल उठा, "मीँओ-मीँओ।" बस उसका ध्यान भंग हो गया। और एक सर्द

आह भर कर वह सामने के यंत्र को पढ़ने लगा। उसे अभी तार देना था और फिर दफ्तर का काम करना था। काम की बात याद आते ही उसका मन फिर तर्क में उलझने लगा और तर्क है अन्तहीन। उसका अभी छोर ही सामने आया था कि सहसा वह टूट भी गया। नीचे से बूढ़े चपरासी ने चिल्लाकर कहा, "बाबू जी ! देर हो गई, क्या कर रहे हो ?"

निशिकान्त चौंक पड़ा। उसने कहा, "अभी आता हूँ।"

तब उसने जल्दी-जल्दी अंक लिखे और नीचे आकर बैरोमोटर पढ़ने लगा। बूढ़ा चपरासी, जिसका नाम गनेशी था और जो मेजों को झाड़ने के साथ-साथ बातें भी कर रहा था, बोला, "क्यों बाबूजी, कुछ बारिश का डौल है ?"

यंत्र पर आँखें गड़ाये कान्त ने कहा, "आज तो आँधी आयगी।"

गनेशी हँस पड़ा। बोला, "भगवान् भी बड़े हँसोड़ हैं। पानी की चाहना है और आँधी भेज रहे है।"

फिर क्षण-भर रुककर बोला, "बाबूजी ! हमारे करम ही ऐसे करे हैं। सच कहूँ हूँ, भलाई की बात तो कोई करे ही नहीं। चोरी-जारी और बाबूजी आपने कुछ सुना।"

"क्या ?"

"मंगला है न ? अपने दफ्तर मे काम कर चुका है। पाँच सौ रुपये में अपनी छोकरी बेच आया। मैंने आज सुना है। ऐसे जुल्म होने लगे हैं। तब भगवान् कैसे न्याय ना करें। पानी तो उन्हीं को मिले, जिन्होंने राम का नाम लिया हो।"

कान्त ने तार लिखते-लिखते कहा, "लेकिन गनेशी। सभी पापी थोड़े हैं ?"

गनेशी ने उसी तरह जवाब दिया, "पर बाबूजी, गेहूँ के साथ घुन पिसे ही हैं।"

तार पूरा हो चुका था। कान्त ने कहा, "अच्छा लो, तार जल्दी से ले

जाओ। पाँच मिनट की देर हो गई है।"

"कोई डर नहीं बाबूजी! अभी फरवट जाता हूँ; लेकिन बाबूजी..."

"हाँ।"

"बड़े बाबू से कहकर दो दिन की छुट्टी दिला दो।"

"क्यों?"

"जी, लड़की गोद ली है न? उसके हाथ पीले करने हैं।"

"अच्छा, अच्छा! जल्दी जाओ।"

"अभी जाता हूँ।"

और गनेशी दौड़ने लगा। निशिकान्त ने क्षण-भर उसे देखा, फिर मुस्कराकर मेज पर झुक गया। वह छः बजे घर से चला था और अब नौ बज चुके हैं। उसके सामने ढेर-के-ढेर लाल-पीले रजिस्टर पड़े हैं, जिनमें बरसाती कीड़ियों की तरह अनगिनत अंक लिखे हुए हैं। एक-एक अंक के लिए उसे अनेक रजिस्टर टटोलने पड़ते हैं और ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह बहुधा खीझ उठता है—कैसा थका देने वाला काम है। प्रतिदिन यही क्रम पाँच गये, दस आये, तीन गये, शेष रहे दो। कभी-कभी वह मुस्करा भी उठता है—परमात्मा का दफ्तर भी इस तरह लगता होगा। वहाँ भी उनका मुन्शी लिखता होगा—आज छः करोड़ मनुष्य गये और सात करोड़ आये। और मनुष्य ही क्यों? पशु, पक्षी, वृक्ष, पहाड़ी, नदी इत्यादि सभी तो हैं। कैसी मजेदार बात है! वे भी कहते होंगे—कैसा थका देने वाला जीवन है। सोचते-सोचते वह स्वयं कह उठा कैसा थका देने वाला जीवन है...?

लेकिन कुछ भी हो उसे काम करना है; क्योंकि उसी करने पर उसका जीवन निर्भर है और उसका परिवार पलता है। सो वह काम पर लगा और धीरे-धीरे दफ्तर बाबुओं से भरने लगा। भूरे बालों वाला टाइपिस्ट सबसे पहले आया, फिर चेचक के दागों से भरा हुआ नाटा एकाउण्टैण्ट, फिर गोरा और सुदृढ़ शरीर वाला एसिस्टेण्ट और सबसे बाद में चीखते-चिल्लाते बड़े बाबू, जिनका नारा पैरों तक लटक रहा था और लम्बे कोट के पूरे बटन खुले

हुए थे। फिर दूसरे लोग आये—ठेकेदार, दूध के खरीददार और भुगतान लेने वाले लाला लोग या गाँव के वे लोग जिन्हें बहुत सी बातों पर साहब की सलाहें लेनी थीं। बड़े बाबू ने सब को देखा। कुछ ऐसे थे जिन्हें देखकर वह मुस्कराये, बोले, "आइये आइये। तशरीफ रखिये।" कुछ दूसरे आदमियों को देखते ही चिल्ला उठे, "मेरे पास क्यों आये हो?"

"जी, ठेके के लिए पूछना था।"

"तो मै क्या करूँ? उनके पास जाओ जिनका काम है। कहाँ गया वह कम्बख्त गनेशी? क्यो वह सबको मेरे पास आने देता है?"

कान्त ने धीरे से कहा, "जी, वह अभी नहीं आया।"

"नहीं आया, क्यों नहीं आया? दस बज गये। मैं उसकी रिपोर्ट करूँगा।"

"जी, वह तार देने गया है।"

आग पर पानी पड़ गया। बड़े बाबू जानते हैं कि गनेशी तार देने जाता है और वहाँ से उनकी रोटी लेकर बारह बजे से पहले नहीं आ सकता, लेकिन फिर भी उनका क्रोध भड़क उठता है। काम इतना है कि स्मृतिपट धुँधला पड़ गया है। जब याद आता है तो लजाकर रह जाते हैं लेकिन कभी-कभी यह लज्जा खीज में पलट जाती है। आज भी ऐसा ही हुआ। क्षण भर रुक कर बोले, "मैं कहता हूँ वह तार देने क्यों गया? उसे दस बजे यहाँ आना चाहिये।"

"लेकिन फिर तार कौन देगा?"

"मैं नहीं जानता। यह मेरा काम नहीं है।"

कान्त उनसे बहस नहीं करना चाहता था, क्योंकि वह जानता है कि बड़े बाबू झेंप उतारते हैं। इसीलिए वह अपने काम में लग गया, तभी एकाउन्टैन्ट ने पुकारा, "गनेशी!"

"अभी नहीं आया।"

"कैसी मुसीबत है? काम बढ़ गया है तो दूसरा चपरासी क्यो नहीं रखा

आता।"

और वह बड़े बाबू के पास पहुँचे, बोले, "देखिये बाबूजी, इस तरह काम नहीं चल सकता।"

बड़े बाबू मुस्कराये, "क्या बात है?"

"चपरासी नहीं है।"

"मैं जानता हूँ, कम्बख्त हमेशा गायब रहता है।"

"बाबू जी, बात यह है कि एक आदमी से काम नहीं चल सकता।"

बड़े बाबू ने जवाब दिया, "सरकार दूसरा आदमी आसानी से नहीं देगी, आपको एक आदमी से काम चलाना होगा।"

क्रुद्ध एकाउन्टेन्ट और भी क्रुद्ध हुए, बोले, "कैसे चलाना होगा? मैं इस तरह काम नहीं कर सकता।"

"आपको करना होगा।"

"मैं चपरासी नहीं हूँ।"

"आप सरकारी नौकर हैं। वाह-वाह! क्या कहते हैं आप? सरकारी नौकरी क्या हँसी खेल है?" और देखते-देखते वातावरण में चिनगारियाँ उड़ने लगीं। निशिकान्त खीझ उठा। उसने टाइपिस्ट से कहा, "कैसे वाहियात आदमी हैं? जान-बूझकर लड़ते हैं।"

टाइपिस्ट मुस्कराया। उसने धीरे से जवाब दिया, "जंगे-आजादी शुरू हो गई! हुर्रा SSS!"

कान्त बरबस हँस पड़ा और ठीक उसी समय अन्दर से साहब ने पुकारा, "बाबू SSS!"

सुनते ही बड़े बाबू भूचाल की तरह उठे। कुरसी गिरते-गिरते रह गई मुँह में पान भरा था उसे रद्दी की टोकरी में थूका और रूमाल ढूँढ़ने लगे वह नहीं मिला। पुकारा, "गनेशो, ओ गनेशो SS, कम्बख्त न जाने कह जाकर मर जाता है?"

जैसे याद आ गया। सिर से हाथ पोंछते हुए अन्दर दौड़े। देहरी प

आकर तीव्रता से एकाउन्टैन्ट को सम्बोधित करते हुए कहा, "अगर तुम काम नहीं कर सकते तो मैं साहब से कहे देता हूँ।"

इन शब्दों को साहब ने सुना। वह मुस्कराया; वह लम्बे डीलडौल का प्रभावशाली व्यक्ति था। उसके बाल श्वेत और स्वर्णिम थे। नेत्र भूरे और हाथ की उँगलियाँ बहुत लम्बी थीं। उसका चेहरा लाल और लम्बोतरा था और उसे देखकर दिल में ढाढस बँधता था। उसने बड़े बाबू की ओर देखा, "वेल बाबू, क्या बात है?" बड़े बाबू नम्र स्वर में बोले, "बात क्या सर! काम बहुत बढ़ गया है। एक चपरासी से नहीं हो सकता। बार-बार बाबू लोगों को भागना पड़ता है और इस प्रकार समय नष्ट होता है।"

साहब ने चिनचिनाकर कहा, "तो फिर केस क्यो नहीं बनाते? तुम डरते क्यों हो? मैं दस्तख़त करूँगा।"

"जी सर, थैंक्यू सर और एक क्लर्क की आवश्यकता भी है क्योंकि..."

"लिखो, क्लर्क के लिए भी लिखो। तथ्य और अंक देकर प्रभाव-पूर्ण केस तैयार करो।"

"बहुत अच्छा सर! थैंक्यू सर, आज ही लिखूँगा।"

"हाँ! और देखो, यह चिट्ठी अभी टाइप होकर जायगी।"

"बहुत अच्छा सर।"

बड़े बाबू प्रसन्नचित्त मुड़े। साहब ने कहा, "और सुनो! मेरे वेतन के लिए लिखा।"

"जीहाँ! लिख रहा हूँ।"

"वह केस आज ही जाना चाहिए।"

"यस सर...!"

बड़े बाबू शीघ्रता से बाहर आये। वह विजय-गर्व से मुस्करा रहे थे। निशिकान्त के पास आकर जोर से बोले, "देखो, मैंने साहब से कह दिया है कि हम जानवर नहीं हैं, साफ बात है, एक चपरासी और एक क्लर्क के बिना काम नहीं चल सकता।"

जैसे बिजली चमकी, "एक क्लर्क।"

"जीहाँ! जब लिखना है तो पूरा केस बनाना चाहिए।"

और फिर धीरे से बोले—"साहब मान गया है। बात यह है कि कहने का ढंग होता है। जो बडे हैं उनसे लडा नहीं जाता, समझे! मुझे नौकरी करते पच्चीस वर्ष हो चुके हैं। तुम लोग तो आज आये हो।"

इतना कहकर उन्होंने चारों ओर देखा। वह पूर्वतः विजय-गर्व से मुस्करा रहे थे। उनकी दशा उस खिलाड़ी-की-सी थी जो कोई अनहोना जादू का खेल दिखा कर वाह-वाह की आशा में दर्शकों की ओर देखता है परन्तु बड़े बाबू का दुर्भाग्य एकाउन्टैन्ट मुँह फुलाये बैठा रहा। केवल टाइपिस्ट ने कहा, "जी! यह तो बहुत अच्छा हुआ। अब कुछ राहत मिलेगी।"

"हाँ देखो! मंजूर हो जावे तब है।" कहकर वह चुपचाप निशिकान्त के पास जा बैठे। कुछ क्षण सोचते रहे। फिर अचानक बोले, "हाँजी, साहब पूछते थे कि कितना काम किया तुमने?"

"लगभग आधा।"

"केवल आधा। इस प्रकार काम नहीं चलेगा। समझे! तीन महीने में तुमने आधा काम भी नहीं किया।"

"जी, सवेरे ६ बजे आता हूँ और संध्या को सात बजे जाता हूँ।"

"मैं कुछ नहीं जानता। एक महीने में काम पूरा हो जाना चाहिए।"

"जी, एक महीने मे तो नहीं हो सकेगा।"

"एक महीने में करके देना होगा, जनाब! नौकरी है, हँसी-ठट्ठा नहीं। यहाँ पूरा नहीं कर सकते तो घर ले जाया करो।"

कान्त का मन अब एक गहरी खिन्नता से भर उठा—कैसी दासता है? क्यों नहीं मुझ में साहस भरता? क्यों नहीं मैं इसे छोड़ देता? लेकिन किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। सहानुभूति का एक अक्षर भी कोई नहीं बोला। हाँ, जाते समय भूरे बालों वाले टाइपिस्ट ने कहा, "अब एक आदमी और बढ़ने वाला है। तुम्हारा काम हल्का होगा।" उसके जाने के बाद नाटा

एकाउन्टैण्ट उठा और उसके पास आकर बोला, "तुमने देखा कान्त ! बड़ा बाबू कितना शैतान है? सीधी तरह बात नहीं करता। मैं यदि उसे न सुझाता तो क्या वह साहब से जाकर कहता। कभी नहीं, लेकिन अब वह सारा यश स्वयं लेना चाहता है।" कान्त मुस्कराकर रह गया, बोला नहीं। उसी ने फिर कहा, "हाँ तो तुम चलते नहीं?"

"जी नहीं।"

"भई ! मैं तो जा रहा हूँ, आज कुछ काम है। चित्रा की अम्मा को डाक्टर के पास ले जाऊँगा।"

कान्त ने पूछा—"बीमार हैं?"

"हाँ, नर्वस सिस्टम बिगड़ गया है।"

"नर्वस सिस्टम ! यह क्या होता है?"

एकाउन्टैण्ट ने लम्बी साँस लेकर कहा, "क्या बताऊँ कि क्या होता है। डाक्टर उसका सम्बन्ध मानसिक वेदना से बताते हैं।" फिर क्षण भर रुककर बोला, "मानसिक बीमारी क्यों न हो? दिन भर दफ्तर में बैठे रहते हैं और रात को भी काम बाँधकर ले जाते हैं। न किसी से बोलना, न सैर, न तफ-रीह, कैसी जिन्दगी है?"

कान्त की सहानुभूति जैसे पिघल पड़ी, "जीहाँ! ऐसे जीवन से मौत भली।"

"सच कहता हूँ बाबू निशिकान्त ! तुम मुझ से छोटे हो, पर हो तो हम-पेशा। उसे रोज रात को बुखार चढ़ आता है, बड़बड़ाती रहती है और मैं लैम्प की रोशनी में लैजर लिखा करता हूँ।"

इतना कहकर वह चुप हो गया, लगा जैसे वह धीरे-धीरे अपने में डूबता जा रहा है। वह बीस वर्ष से इसी दफ्तर में नौकर था। उसका यौवन अपने चिन्ह छोड़कर कभी का उसे धोखा दे गया था और उसका दिल इस लम्बी दासता के संस्कारों के कारण मानवी भावना खो बैठा था। वह मुस्कराया, "दस वर्ष और, फिर मैं पैन्शन लेकर यहाँ से चला जाऊँगा···"

घड़ी ने टन-टन कर छः बजा दिये। वह चौंककर उठा, "ओह, मुझे जाना चाहिए। गनेशी···गनेशी!"

कान्त ने धीरे से कहा, "वह डाक बाँटकर नहीं आया।"

"तो बाबू निशिकान्त! तुम उससे कह देना कि मेरा बस्ता घर दे आये।"

"जी, कह दूँगा।"

वह चला गया। कान्त को दफ्तर में आये बारह घंटे हो चुके थे और बाहर अन्धकार बढ़ा आ रहा था।

× × ×

दफ्तर से लौटकर कान्त ने देखा—"माँ सदा की तरह चबूतरे पर बैठी हुई उसकी राह देख रही है। वह सीधा ऊपर अपने कमरे में चला गया और कपड़े उतारने लगा। उसने खद्दर का साधारण कोट-पाजामा पहन रखा था। उन्हें उतारते समय मन में एक प्रश्न उभर आया—वह सरकारी नौकर होकर भी खद्दर पहिनता है, आखिर क्यों?"

इस क्यों के उत्तर में उसे सदा एक कहानी याद आ जाती है। आज भी आ गई।

सन् १६२०-२२ के तूफानी दिन थे। उसने कई बार गाँव के लोगों को तिलक और गांधी की चर्चा करते सुना था। कई बार उसने इन लोगों को काँग्रेस और खिलाफत के झण्डा उठाये हुए, 'अल्ला-हो-अकबर' के नारे लगाते हुए गाँव की धूलभरी सड़कों पर घूमते देखा था। उसे डायर के नाम के साथ सम्बन्धित एक गीत की कड़ी अच्छी तरह याद थी और उसे याद था कि गाँव की पंचायती धर्मशाला में जलसे हुआ करते थे। इसी धर्मशाला में साधू लोग कीर्तन करते थे, कथा-वाचक रामायण की कथा सुनाते थे। जिले और तहसील के अफसरों का दरबार भी इसी में लगता था और कभी-कभी मनचले नौजवान नाटक, स्वांग अथवा पातुर-नाच का संयोजन भी इसी में कर लेते थे। सुना था कि भागे हुए डाकू और दूसरे मुलजिम भी अक्सर इसी में शरण लेते थे। गांजे की खुशबू और गंजफे के पत्तों की फटकार तो किसी भी समय सूँघी

और सुनी जा सकती थी। राममूर्ति का सर्कस भी उसने इसी में देखा था। इसी में उसने एक दिन एक विचित्र जलसा देखा। उसे ठीक-ठीक याद है कि उस दिन सारे चौक मे सफेद चादरें बिछी थी। उत्तर की ओर एक बड़े तख्त पर सुन्दर-सुन्दर कालीन थे और उसी के ऊपर एक छोटी मेज रखी थी। मेज पर खद्दर का मोटा पर सफेद मेजपोश पड़ा था। वह मंच के पास सबसे आगे अपने चचा के पास बैठा हुआ था। उसने देखा—बार-बार कोई पुरुष मेज के पास जाता है। तेजी से कुछ देर बोलता है। लोग जोर से ताली पीटते हैं और धर्मशाला गूँज उठती है। यह गूँज उस समय बहुत तीव्र हो उठी जिस समय गाँव के सुप्रसिद्ध हकीम साहब ने जो वहाँ के नेता भी थे अपने पाँच वर्ष के पुत्र को मेज के ऊपर बिठा दिया। बालक सुन्दर था। गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, भरे हुए गाल। उसने धीरे-धीरे अटक-अटककर कहा, "मैं आपका बालक हूँ। मेरी उम्र पाँच साल है। मैं खद्दर पहनता हूँ। आप भी खद्दर पहनें। बन्दे मातरम्।"

और उसके पिता ने उसे नीचे उतार लिया।

और धर्मशाला तालियों से गड़गड़ा उठी।

और कान्त ने देखा—उस बालक ने शुद्ध खद्दर का कुरता, टोपी और धोती पहिनी है।

और तभी उसके चाचा ने कहा, "देख बे! कैसा लायक लौंडा है और एक तू है।"

वह खिसिया गया। उसने सोचा···क्या सोचा वह उसे याद नहीं, लेकिन उसके चार दिन बाद ही जब गाँव में पैंठ लगी तो वह अपने पिता के पास गया। धीरे से प्रार्थना के स्वर में बोला, "लाला!"

लाला व्यस्त थे। मुड़कर बोले, "क्या है?"

"वो लेंगे।"

"क्या?"

"वो धोती···"

संकेत जिस ओर था वहाँ एक जुलाहे की दुकान थी। पिता उठे, वहाँ जाकर बोले, "कौनसी धोती ?" कान्त ने आगे बढ़कर अपनी धोती उठा ली। वह खद्दर की मोटी धोती थी। शायद सारी पैंठ में अपनी तरह की एक ही थी। पिता ने उसे उलटपुलट कर देखा और कहा, "किस चीज पर नियत पड़ी है, साले की ! चल हट।"

लेकिन कान्त मचल गया और रोने लगा। पिता ने क्रोध में आकर उसे पीटा लेकिन सौभाग्य से चाचा उधर आ निकले। उसे रोते देखकर उन्होंने पूछा, "क्यों रोता है बे ?"

पिता बोले, "नालायक है। कहे है कि यह धोती लूँगा। इतना खुद भी नहीं है जितनी धोती है।"

चाचा पहले तो मुस्कराये परन्तु दूसरे ही क्षण अचरज से भरकर बोले, "क्या···क्या यो कहे है ?"

"हाँ।"

"तो ले दे।"

सुनकर पिता चकचका उठे लेकिन चाचा ने उसे गोदी में उठा लिया और धीरे से कहा, "मैं जानता हूँ, एक दिन यह बड़ा आदमी बनेगा।"

सदा की भाँति कान्त का मन अनिर्वचनीय आनन्द से भर आया। ठीक यही बात एक ज्योतिषी ने उसके पिता से कही थी और अभी उस दिन एक मित्र ने उसका हाथ देखकर कहा था, "तुम और यह क्लर्की ! तुम्हें तो किसी ऊँचे पद पर होना चाहिए।"

लेकिन वह आगे कुछ सोचता कि उसने माँ की आवाज सुनी। वह कह रही थी, "अरे क्या करने लगा ? मैं तो रोटी लिये बैठी हूँ।"

वह मुस्कराया, "अभी आया, माँ !"

वह उठा और नीचे चला गया। देवीकान्त ने सदा की भाँति पटरा बिछाया। माँ ने आग चेताकर उस पर साग रख दिया। देवी से बोलीं, "भइया के लिए आम ला।"

"आम कहाँ से आये, माँ ?"

"तुझे पता नहीं। रमेश का चाचा आया था। कहता था कि गोमती का विवाह है। रमेश के बच्चों को ले जायगा।"

"कहाँ है गोमती का विवाह ?"

"मेरठ में! लड़के ने वकालत पास की है। चौधरियों का खान्दान है। भइया किसी जमाने में सेठ थे। चार घोड़ों की बग्घी तो मैंने देखी है।"

"और क्या कहते थे ?"

"और हाँ, सीताराम को छः महीने की सजा हो गई।"

"हो गई...!"

"हाँ, पटवारी का कुछ फैसला नहीं हुआ। बाकी कहता था कि पिकेटिंग चलेगा।"

कान्त ने सुन लिया। सुनकर कुछ अजीब-सा लगा, जैसे किसी ने पेच कसना शुरू कर दिया हो। सीताराम उसी के साथ पढ़ा करता था। निहायत नालायक और गन्दा लड़का था। जमनादास मास्टर कहा करते थे, "साले की ऐसी शक्ल है जैसे अभी कबर से उठकर आया हो और काम के नाम..." खाते-खाते कान्त सहसा रुक गया। मन उमड़ आया था। माँ बोली, "क्या हुआ रे ?"

"कुछ भी नहीं।"—वह फिर खाने लगा और सोचने लगा—और वही सीताराम आज लीडर बन गया है। उसने गांधी जी की तरह गाँव की चौपाल में बैठकर नमक बनाया था। उसका चित्र अनेक समाचार-पत्रों में छपा था और मैं जो क्लास का मानीटर था, सदा मास्टरों की आँखों में चढ़ा रहा, जिसके लिए सबने एकमत होकर कहा था—यह एक दिन बड़ा आदमी होगा। मैं उसी नौकरशाही का दास हूँ जो मेरे देश की दुश्मन है...।

माँ बोली, "रोटी लाऊँ ?"

"नहीं।"

"नहीं क्यों रे ? खाया ही क्या है ?"

"नही माँ।"

"तो बस भइया ! चल लिये हाथ-पैर। इस उमर में यह खुराक। सारा दिन कोल्हू में पिसे जाता है। नहीं खायगा तो कैसे होगा ? रामजी रखो, एक वक्त में आठ फुलके खाने जोग है। तेरी उमर में···"

"माँ लालटैन साफ कर देना। रात को काम करना है।"

"रात को ?"—माँ हत्प्रभ-सी देखती ही रह गई।

कान्त ने उसी शान्त भाव से कहा, "हाँ! आज से रात को भी काम करना होगा!"

"नाश हो ऐसे काम का। यो वक्त आ गया काम करते, अब भी बाकी पड़ा है।"

कान्त हँस पड़ा, "अरे माँ! काम बाकी है तभी तो मेरी जरूरत है। खत्म हो गया तो कौन पूछेगा ?"

"ना बाबा ! फिर भी कोई वक्त तो होता ही है।"

"माँ, दासता के लिए क्या वक्त और क्या बे वक्त।"

और फिर झटपट हाथ-मुँह धोकर ऊपर आ गया। ऊपर आकर फिर एक बार पुकारा, "माँ! देवी के हाथ लालटैन भेज देना।"

× × ×

चारों ओर रात का सन्नाटा गहराता आ रहा था। आसमान में तारे टिम-टिमा उठे थे और धरती पर रह-रह कर कुत्ते भोंकने लगते थे। इसी समय बाबू निशिकान्त लालटैन के प्रकाश में मेज पर झुका हुआ था। उसे बहुत से रजिस्टरों पर लाल निशान लगाने थे। इन्हीं निशानों की बदौलत उसे अर्थ और यश की प्राप्ति होती है, पर आज न जाने क्यों उसे यह अर्थ और यश अखर रहा है। वह विद्रोह करना चाहता है, वह सोचता है, "मैं अपने देश को प्रेम करता हूँ। मैं उसकी आजादी के लिए मर-मिटना चाहता हूँ परन्तु मैं कर रहा हूँ उसी सरकार की दासता जो मेरे देश को गुलामी की जंजीर में जकड़े हुए हैं, जो मेरी आँखों के सामने, बल्कि स्वयं मेरे द्वारा ही

मेरी माँ को अपमानित और पददलित कर रही है। मैं अपना सारा जीवन उनको अर्पित कर बैठा हूँ जो मुझे मेरे भाइयों का गला घोंटने को विवश करते हैं। मैं अपने भाई का गला घोंटता हूँ... ।

वह एकाएक काँप उठा। उसका मस्तिष्क तीव्रता से झनझनाया और फिर एक धुँधला पर दृढ़ विचार ऊपर उभर आया—मैं यह सब कैसे सह रहा हूँ? मैं स्तीफा क्यों नहीं दे सकता? मैं स्तीफा दूँगा...।

बस, उसने यंत्र की भाँति एक कोरा कागज उठाया और लिखना शुरू किया—"महोदय!

मुझे दुःख है कि मैं अब आपके दफ्तर में काम नहीं कर सकता ..."

सहसा उसे सूझा कि इतनी बड़ी बात बिना किसी भूमिका के लिखना उचित नहीं है। उसने वह कागज फाड़ डाला और नया कागज लेकर लिखना शुरू किया—

"महोदय,

अब क्या लिखूँ..."

उसने दवात में कलम डुबोया। एक लम्बा तिनका साथ चला आया। कागज़ पर एक भौंड़ी-सी लाइन खिचकर रह गई। वह खीज उठा। चिनचिनाकर कलम को मेज पर दे मारा—क्या वाहियात बात है...?

और तभी उसने सुना मानो कोई बड़े जोर से हँसा, "वाहियात बात कुछ नहीं है। तुम स्तीफा नहीं दे सकते।"

"क्यों? क्यों नहीं दे सकता?"

"क्योंकि तुम अकेले नहीं हो। तुम गरीब हो। स्तीफा दे दोगे तो अपने परिवार के लिए क्या करोगे? कल को तुम्हारा विवाह होगा।"

बात काटकर उसने कहा, "देश के गुलाम रहते मैं विवाह नहीं करूँगा।"

"परन्तु अपने भाई को तो विष नहीं दे दोगे। जानते हो तुम उसे कितना

"प्यार करते हो...?"

सहसा कान्त चौंककर उठा। त्यागपत्र का मसविदा सोचते-सोचते उसकी आँखें झप गई थीं। उसने स्वप्न में जो कुछ देखा उसकी बात सोचकर उसे कँपकँपी आने लगी। कलम हाथ से छूटकर 'टन्न' का शब्द करती हुई फर्श पर जा पड़ी। उसने अपना सिर मेज पर टिका दिया। तड़फ उठा—तो मैं क्या करूँ?

लेकिन उसे कुछ भी नहीं करना पड़ा। अगले दिन सवेरे वह सदा की भाँति उठा, घूमने गया। लौटकर दूध पिया और फिर स्नान कर कोट उठाया। तब घड़ी सात बजा रही थी और वह लपका हुआ दफ्तर की ओर जा रहा था।

: २ :

कान्त का एक और जीवन था जिसका संचालन उसकी डायरी करती थी। जो वह करना चाहता था परन्तु कर नहीं सकता था उसी का इतिहास इस डायरी में निर्मित हो रहा था। बहुत पहले अचानक एक दिन इसी डायरी में वह ऐसा कुछ लिख बैठा जिससे उसके पीड़ित मन को सन्तोष हुआ था। उस दिन गांधी जी का जन्म-दिन था।

तब बड़े आत्म-मन्थन के बाद उसने अपनी डायरी में लिखा, "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आज से—

१. खद्दर पहनूँगा।

२. अछूतों को अपने समान मानूँगा।

३. राष्ट्र-भाषा हिन्दी की सेवा करूँगा।

४. हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्न करूँगा।

लिखकर उसने बड़े सन्तोष से उन प्रतिज्ञाओं को बार-बार पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते जैसे कुछ याद आ गया हो, उसने एक बार फिर कलम उठायी और उनके नीचे लिखा, "यदि मैं ये प्रतिज्ञायें पूरी न कर सका तो आत्महत्या कर लूँगा।"

इन्हीं प्रतिज्ञाओं के कारण सत्याग्रह के दिनों में वह एक उलझन में फँस गया। उन दिनों सरकार बार-बार सरक्यूलर निकालकर सरकारी नौकरों को राज-भक्ति की याद दिलाया करती थी। एक बार उसने आदेश भेजा—सरकारी नौकर का किसी राजनीतिक सभा में जाना और किसी राजनीतिक नेता से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना वर्जित है। उन्हें यह आदेश दिया जाता है कि यदि उनके निकटतम सम्बन्धी पिता-पुत्र अथवा भाई आदि सत्याग्रह में भाग लेते हैं तो वे उन से सब सम्बन्ध तोड़लें। उन्हें अपने घर में न आने दें; इत्यादि इत्यादि।

पढ़कर उसका रक्त खौल उठा। उसने अपने नाम आये सरक्यूलर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले और कहा, "सत्याग्रह करने वालों से कोई सम्बन्ध न रखो! हूँ···।"

इस विद्रोह का परिणाम यह हुआ कि वह सत्याग्रही बन्धुओं से खुलकर मिलने लगा। उन्हें वह अपने घर बुला लाता और घण्टों उनसे बहस करता। मित्रों ने इस गतिविधि को देखा। वे शंकित हो उठे। एक दिन एक शुभ-चिन्तक ने उसे बड़े प्रेम से अपने घर बुलाकर समझाया, "बेटा, मै जानता हूँ कि तुम बड़े लायक हो। तुम्हारे जैसे नेकचलन लड़के कम होते हैं लेकिन मैं तुम से एक बात कहना चाहता हूँ।"

फिर एक क्षण रुककर वे बोले कि "मैं कहता था, आजकल कैसे खोटे दिन आ गये हैं। पता नहीं कल क्या हो? गांधी तपस्वी है पर सरकार जितनी शक्ति उसके पास कहाँ है। मै जानता हूँ, जीत उसी की होगी पर उस दिन तक न जाने कितने घरबार उजड़ जायेंगे। तुम समझदार हो। हमारे पुरखा सदा खद्दर पहिनते थे। आज भी गाँव में गाढ़ा पहिना जाता है पर तुम जानते हो सरकार

उसे कितना बुरा मानती है। किसी ने शिकायत करदी तो नौकरी छूट जावेगी और नौकरी छूट जाने पर…"

यहाँ आकर सहसा वह चुप हो गये। कान्त समझकर भी कई क्षण अन-बूझा-सा बैठा रहा। वह जानता था कि जो कुछ कहा गया है उसके पीछे सद्-प्रेरणा है। इसका विरोध करना उचित नहीं है, पर उसकी प्रतिज्ञा…उसने गरदन को धीरे से झटका दिया और कहा, "आपने जो कुछ कहा है उसके लिए कृतज्ञ हूँ। विश्वास रखिये कि मैं जान-बूझ कर ऐसा काम नहीं करूँगा जिससे किसी को लज्जित होना पड़े।"

शुभचिंतक गद्गद् होकर बोले, "मैं जानता हूँ, तुम बड़े समझदार हो। तुम से यही आशा थी।"

इस प्रकार कान्त एक विकट परिस्थिति में फँसते-फँसते बच गया। परन्तु फिर भी मन में प्रश्न उठा—क्या जीवन को सदा इसी प्रकार छला जा सकता है ? और छला भी जा सकता है तो क्या यह उचित है ? जैसे पीड़ा फिर जागी। उसे लगा—स्तीफा न देकर डिसमिस होने की बात के पीछे साहस नहीं है बल्कि एक गहरी दुर्बलता है—वह दुर्बलता, जिसे उसका अशक्त मन जीत नहीं पा रहा है।

लेकिन इस दुर्बलता का भी एक इतिहास है। उसकी माँ ने अनेक बार उससे कहा था, "बेटा, मैंने वे दिन देखे हैं जब तेरे बाप-दादा के घर में मकई-बाजरी की रोटी बना करती थी। गेहूँ मरदों के नसीब में भी नहीं था। क्या हुआ कभी साल-छः महीने में तीज-त्योहार के दिन गेहूँ के दर्शन हो जाते थे, नहीं तो तेरे बाबा अनाज गधे पर लादकर गाँव में बेचने जाते थे और साँझ को जो कुछ बचा लाते थे उसे ही कूट-पीस कर हम खाते थे। और बेटे फिर हमने वे दिन भी देखे जब सतपकवानी खाई और लुटाई। पता नहीं लगता था कि खिचड़ी में घी ज्यादा है या पानी। यह सब तेरे बाबा की नीयत की बदौलत था। खिलाकर खाते थे। पहला पोता हुआ तो शहनाई बजवाई और खुद जाकर गाँव भर के भंगी-चमारों को चार-चार आने बाँटे। और दो-

दो जसूठन किये एक कच्चा और एक पक्का।"

यहाँ आकर सहसा माँ रुक गई थी। उसने लम्बी साँस खींची और रुँधे स्वर मे बोली, "चाचा और उन्हीं बाबा के मरते-मरते यह बागबाड़ी लुट गई। एक दिन गाँव मे प्लेग फैला। घर उजड़ गये। तुम्हारा घर भी उस दिन लुट गया। तेरे चाचा क्या मरे बाबा की रीढ़ टूट गई। कई साल जिन्दा रहे पर सूरज ढल चुका था। जिस दिन मरे जायदाद कर्जे में डूबी हुई थी।"

और आगे की कहानी कान्त की अपनी कहानी थी। वह आज भी सोच-कर काँप उठता है, "अगर माँ न होती ·?"

बदनसिह से वह अक्सर कहा करता था, "बदनसिंह ! माँ सबकी होती है पर मेरी जैसी माँ भगवान सबको दे। बाबा के मरने पर गृहस्थी का भार पिताजी के कन्धों पर आ पड़ा था पर उन्होंने तो सदा मन्दिर में पूजा की थी। वह पैसे की माया नहीं जानते थे और कर्ज अमर बेल की तरह बढ़ रहा था तब मेरी माँ ने अपने शरीर का छल्ला-छल्ला बेच डाला और कुटुम्ब की लाज रखी। पर फिर एक दिन पिताजी ऐसे लेटे कि उठ नहीं सके। माँ ने छाती पीट ली पर उसके आँसू जम गये। उसने अपने बेटों को देखा। उनके बाप ने उन्हें दगा दी थी पर माँ नहीं दे सकती थी। उसने भी नहीं दी। मै तब दसवीं पास कर चुका था। आगे पढ़ने का कोई प्रश्न नहीं था। प्रश्न था नौकरी का, उसी के लिए वह जन-जन के आगे आँचल पसारती रही। किस-किस से उसने मेरे लिए भीख नहीं माँगी। उसी की अनथक मेहनतों का परिणाम है कि मैं आज सुख से जीवन बिता रहा हूँ। यह और बात है कि मेरे दिल में एक और माँ का दर्द उठा करता है, पर जब अपनी इस माँ का ध्यान आ जाता है तो सब कुछ भूल जाता हूँ।"

बदनसिंह स्नेहसिक्त-स्वर में उत्तर देता, "कान्त ! मैं सब कुछ जानता हूँ, इसीलिए कहता हूँ कि कोई ऐसा काम न कर बैठना जिससे तुम्हारी माँ को कष्ट हो।"

ऐसे ही एक अवसर पर कांत भर्राये स्वर मे बोला, "बदनसिंह !

आदमी में इतनी ममता क्यों है ?"

"इसीलिए कि दुनिया चल सके।"

कांत इस बात को जानता था, पर न जाने क्यों उसका समाधान नहीं होता था। बदनसिंह उसका मित्र था। मित्रता में ममता भी थी पर उसी के शब्दों में उसका विशेष कारण था कांत का असीम ज्ञान। ज्ञान की असीमता की कोई सीमा नहीं है और जहाँ तक कान्त के ज्ञान का सम्बन्ध था, वह किसी भी तरह असीम नहीं था।

फिर भी बात को पकड़ने की उसमें प्रवृत्ति है। वह जो कुछ है उसे जान लेना चाहता है।

पुरानी बात है। एक दिन ऐसा हुआ कि अचानक दो दिन के ज्वर के बाद उसकी छोटी बहिन, जिसे वह बहुत प्यार करता था, चल बसी। तब रात का समय था। वह सो रहा था। किसी ने उसे नहीं उठाया पर अगले दिन सवेरे जब वह जागा तो देखा—माँ रो रही है। उसे देखकर उनका बाँध और भी टूट गया। अपने पास बुलाकर पूछा, "मिन्नी कहाँ गई रे ?"

कान्त ने माँ को देखा और इस प्रश्न को सुना। फिर दृष्टि उठाकर मिन्नी का खटोला देखा। वह खाली था। कुछ समझ में नहीं आया इसलिए उत्तर में स्वयं पूछ उठा, "कहाँ गई माँ ?"

"भगवान ने उसे अपने पास बुला लिया है।"

भगवान ने बुला लिया ? कान्त और भी अनबूझ हो उठा। भगवान ने मिन्नी को क्यों बुलाया ? उसे क्यों नहीं बुलाया ? मिन्नी तो बोलना तक नहीं जानती थी। हठात् एक और प्रश्न उभर आया, पूछा, "भगवान कहाँ रहते हैं, माँ ?"

आसमान दिखाकर माँ बोली, "वहाँ।"

उधर देखते-देखते कान्त ने कहा, "माँ, मैं भी वहाँ जाऊँगा।"

शोकाकुल माँ क्रोध से भर उठी। बोली, "कुलच्छने, मरजाने, कैसी बात कहे है !"

उसकी समझ में पहले भी कुछ नहीं आ रहा था। अब तो और भी उलझन हो गयी। माँ उसे भगवान के पास जाने से क्यों रोकती है? मिन्नी चली गई तो रोती क्यो है? क्या मिन्नी अब लौटेगी नहीं। मिन्नी के जाने का दुख तो उसे भी है पर वह लौटेगी क्यों नहीं···?

कान्त का दिल भर आया पर इसी करुणा ने उसकी जिज्ञासा को बल दिया। उसने चुपके-चुपके अपने पिता के टोकरे में से पुस्तकें निकालकर पढ़ना शुरू किया। विष्णु-सहस्रनाम, हनुमानचालीसा, प्रेमसागर, चन्द्रकान्ता, राधेश्याम की रामायण, और सुखसागर से लेकर किस्सा साढ़े तीन यार, किस्सा हातमताई और किस्सा तोता-मैना तक सभी पुस्तकें उसने पढ़ डालीं पर ईश्वर उसकी समझ में नहीं आया। आखिर ईश्वर कहाँ रहता है, क्या करता है, क्यों करता है? एक दिन उसने देखा—माँ के पास एक छोटा-सा प्यारा-प्यारा मुन्ना लेटा है। वह बहुत खुश हुआ। दादी से पूछा, "माँ के पास मुन्ना कहाँ से आया है?"

दादी ने मुस्कराकर जवाब दिया, "भगवान ने भेजा है, बेटा!"

फिर एक दिन देखा, "धौली गाय एक अपने जैसे छोटे-से बच्चे को चाट रही है।

चाचा से पूछा, "यह बच्चा कहाँ से आया?"

चाचा बोले, "आता कहाँ से, भगवान ने भेजा है।"

और मिन्नी को भगवान ने बुला लिया। वह फिर नहीं लौटी। उसे भी एक दिन भगवान ने भेजा था। उसने सुखसागर में पढ़ा था—"भगवान का एक बहुत सुन्दर लोक है। वहाँ वह शेष-शैया पर सोते रहते हैं और लक्ष्मी उनके चरण दबाती रहती हैं···"

उसने सोचा, "वह ये सब काम कैसे करते हैं?"

आगे लिखा था—जब-जब धरती पर पाप होने लगते हैं तो वह स्वयं आते हैं।

प्रश्न उठा, क्या आजकल पाप हो रहे हैं? पर पाप क्या है? कुछ

समझ में नहीं आया। केवल इतना सोचा—अब की एक बार जब भगवान् आवेंगे तो वह उनसे बहुत सी बातें पूछेगा और उनके साथ चलेगा।

यही बात उसने एक साथी से कही। वह अधिक समझदार था, बोला, "जब किसी को भगवान पास बुलाते हैं या अपने साथ ले जाते हैं तो वह मर जाता है।"

"और भगवान नहीं मरते।"

साथी हँसा, "भगवान न जीते हैं न मरते हैं।"

"तो हम क्यों मरते हैं और मरना होता क्या है?"

साथी ने जो कुछ अपने पुजारी पिता के मुँह से सुना था कह दिया, "सभी मरते हैं और मरने पर आदमी को जला दिया जाता है।"

"भला कैसी बात है? जला देते हैं तो भगवान के पास कैसे जाते हैं।"

"वहाँ भगवान फिर जिला लेते हैं।"

बात कुछ समझ में बैठी नहीं, परन्तु इसी बीच में एक और घटना हो गई। स्कूल का परीक्षा-परिणाम निकलने वाला था। एक साथी के पिता ज्योतिषी थे। उन्होंने एक दिन सबका हाथ देखा। कान्त को बताया, "कान्त रे! तू तो भइया फेल होगा। तुझ पर देवी का कोप है।"

कान्त सहसा घबरा गया, आँखें भर आईं। उसे देवी के कोप की चिन्ता नहीं थी पर फेल होने की बात उसका दिल चीरती थी। वह सदा प्रथम आता था और इस बार तो उसने विष्णु भगवान की प्रस्तर-प्रतिमा के आगे घी के दीये जलाकर तथा पेड़े चढ़ाकर प्रार्थना भी की थी। तो क्या वह भगवान ने नहीं सुनी और क्या देवी भगवान से बड़ी है? उसे दुखी देखकर ज्योतिषी महोदय बोले, "पर तू एक काम कर बेटे! देवी के मन्दिर में रोज सवेरे जलेबी चढ़ाया कर।"

कान्त रोज सवेरे जलेबी चढ़ाता और देखता—पुजारी रोज उन जलेबियों को उठाकर ले जाता है। उसने पुजारी के लड़के से पूछा, "तुम जलेबियों का क्या करते हो?"

"करते क्या है, खाते हैं।"

"तुम खाते हो, वे तो देवी की हैं।"

"हाँ, देवी की ही हैं तभी तो खाते हैं। हमें देवी की आज्ञा है।"

कान्त ने सोचा—कैसी अनहोनी बात है! मुझे आज्ञा क्यों नहीं है? मैं क्यों नहीं खा सकता? अगले दिन जब वह जलेबी चढ़ाकर लौट रहा था, तो उसने देखा—एक दोने में दो पेडे रखे हैं। वे ताजे हैं और उनमें से मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही है। जी में आया—एक उठा ले। पर तभी सोचा—यह तो देवी का है—तो क्या हुआ; रामू भी तो खाता है। बस, वह आगे बढा। उसकी छाती धड़क रही थी। लेकिन हाथ जो आगे बढ़ गया था पीछे नहीं लौट रहा था। उसने एक बार चारो ओर देखा फिर झपटकर एक पेड़ा उठाया और तेजी से भाग चला।

दूर एक वृक्ष की ओट में उसने पेड़ा खाया। वह सचमुच मीठा था। बड़ा अच्छा लगा। अगले दिन उसका परीक्षा-फल भी निकल आया। वह सदा की भाँति अपनी कक्षा में अव्वल आया था। उस दिन कान्त के मन में पहली बार नास्तिकता का उदय हुआ।

× × ×

शहर में आकर वह जिस स्कूल में भरती हुआ वह आर्य समाज का था। पण्डितजी प्रतिदिन एक घंटा वेदपाठ पढ़ाया करते थे। उन्होंने एक दिन बताया "ईश्वर एक है, वह निराकार, सर्वव्यापक और अन्तर्यामी है। स्वर्ग, नरक नहीं है। देवी-देवता ढोंग हैं, मूर्ति-पूजा पाखण्ड है।"

कान्त ने अचरज से मन-ही-मन दोहराया—देवी-देवता ढोंग हैं, मूर्तिपूजा पाखण्ड है। और उसका अन्तर्मन एक अज्ञात प्रकाश से भरने लगा। पण्डित जी आगे बोले, "पुजारी लोग अपना पेट भरने के लिए भोली जनता को बहकाया करते हैं ईश्वर कर्मों का फल देता है। जो कुछ हम करते हैं उसका फल मिलना अनिवार्य है। कर्म से कोई नहीं बचता, स्वयं ईश्वर भी नहीं...।"

कान्त का सिर अपनी सीट पर आगे की ओर झुक गया और उसने अपना

समस्त ध्यान पण्डितजी पर केन्द्रित कर दिया। निस्सन्देह पण्डितजी ठीक कहते हैं। यही सत्य है। यही धर्म है। गाँव के मन्दिर, उनकी मूर्तियाँ, उनके पुजारी सब झूठे हैं, बिलकुल झूठे। फिर जैसे एक दर्द उठा—हाय! न जाने अपना पेट काटकर कितने पैसे उसने विष्णु की पाषाण प्रतिमा पर चढ़ाये थे। कितने पेड़े, कितनी जलेबियाँ वे पुजारी लोग खा गये थे। काश कि पुजारी उसके सामने होते···!

आगे उसने परम श्रद्धा के साथ पण्डितजी की सभी बातों को कृतज्ञ हो कर स्वीकार किया कि भूत-प्रेत नहीं होते, आत्मा अमर है, श्राद्ध वृथा है, भगवान अवतार नहीं लेते। अब पण्डितजी उसके आराध्य देव बन गये। जिस निश्चल श्रद्धा के साथ वह विष्णु की पाषाण प्रतिमा के आगे नत-मस्तक होता था उसी निर्दोष श्रद्धा से उसने पण्डितजी की मौन पूजा प्रारम्भ कर दी। वह उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने लगा। और उसकी वह आराधना व्यर्थ नहीं गई। वह परीक्षा में सर्वप्रथम आया। उसे पचास में से अड़तालीस नम्बर प्राप्त हुए और उसकी कापी पर पण्डितजी ने सुनहरे अक्षरों में लिखा—"सर्वोत्तम!"

अज्ञानी कान्त उस दिन से पक्का आर्यसमाजी बन गया। वह साप्ताहिक सत्संग में सब से पहले पहुँच जाता। पहुँचते ही यज्ञ की सामग्री जुटाता और मन्त्रोच्चारण शुरू कर देता। बहुधा वह अकेला होता। उसकी यह श्रद्धा वहाँ आने वालों पर एक गहरा प्रभाव डालती, लेकिन एक दिन जब उसने वेदी पर बैठकर उनके सामने स्वामी दयानन्द के जीवन पर एक व्याख्यान दिया, तो वे सब अचरज से उसे देखते ही रह गए। कान्त को जितने भी पुण्य-कार्य याद आये उन्हीं का सम्बन्ध स्वामी दयानन्द से स्थापित करते हुए उसने कहा, "महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे महापुरुष युगों के पश्चात् जन्म लेते हैं। गीता में योगेश्वर कृष्ण के कथनानुसार उनका आविर्भाव तभी होता है जब पृथ्वी पापों से पूर्ण हो जाती है। महर्षि के जन्म के समय भारत भूमि की ऐसी ही अवस्था थी। वह पराधीन थी, पददलित थी। विध-

मियों ने चारों ओर से उस पर आक्रमण कर रखा था। हमारी नारियाँ पतिता थीं। हम नाना जाति, वर्ण और धर्म के बन्धनों में फँसे हुए थे। छूत-छात का पाप हमारी जड़ों को खा रहा था। हमारी जाति के प्रकाण्ड पण्डित मुसलमान और ईसाई होते जा रहे थे। गउओं का हनन हो रहा था। ऐसे अन्धकारपूर्ण समय में उस महर्षि का उदय हुआ। उसने हमको मार्ग सुझाया। उसने हमें नाना जातियों के भ्रम-जाल से मुक्त किया। उसने मूर्ति-पूजा और देवी-देवताओं के पाखण्ड का नाश किया। उसने हमें खद्दर, नमक और गऊ का महत्त्व सुझाया। 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग सबसे पहले उसी ने किया। उसी ने नारी को मुक्ति दी। उसी ने वेदों को मठाधीशों के अधिकार से निकालकर जनसाधारण की सम्पत्ति बनाया। उससे बढ़कर क्रान्तिकारी कौन था इत्यादि।

भाषण समाप्त होने के कुछ क्षण तक लोगों के कानों में कान्त की वाणी गूँजती रही। फिर सब प्रशंसा करने लगे। एक महाशय ने कहा, "कान्त! भाव और भाषा दोनों पर तुम्हारा असाधारण अधिकार है।" दूसरे प्रतिष्ठित वकील बोले, "बोलने की रीति बड़ी प्रभावशाली है।" तीसरे कोई अवसर-प्राप्त सज्जन थे। उन्होंने कहा, "भाषा बड़ी मीठी और बड़ी शुद्ध है।" वेद-पाठ पढ़ाने वाले पण्डितजी वहीं उपस्थित थे। गद्गद् होकर बोले, "अजी! यह मेरा विद्यार्थी है, मैं इसे जानता हूँ। एक दिन यह समाज का नाम उज्ज्वल करेगा।"

लेकिन कान्त को याद है, इन सबसे दूर एक और व्यक्ति ने उसकी प्रशंसा की थी। जैसे ही वह अन्दर से बाहर आया, तो किसी ने पीछे से पुकारा, "सुनियेगा!"

वह मुड़ा। एक खद्दरधारी युवक उसे पुकार रहा था। पास जाकर उसने कहा, "बहुत सुन्दर बोलते हो।"

कान्त ने देखा—युवक सुन्दर है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से विश्वास छलका पड़ता है। उसने मुस्कराकर कहा, "आपको पसन्द आया?"

"हम लोगों में ऐसी शुद्ध हिन्दी कोई नहीं बोलता।"

कान्त कृतज्ञ भाव से हँस पड़ा। युवक ने कहा, "और आप सरकारी नौकर होकर खद्दर पहनते हैं! डर नहीं लगता?"

कान्त ने सगर्व पूछा, "डरूँगा क्यो? क्या ऐसा करना पाप है?"

"कम-से-कम सरकारी नौकर ऐसा ही समझते हैं।"

"मैं नहीं समझता।"

"तुम साहसी हो।"

फिर दोनो हँस पड़े। कान्त ने युवक का परिचय चाहा। पता लगा कि वह खद्दर बेचता है। नाम चन्द्रकुमार है पर वैसे कहते सब कुमार हैं।

कान्त एकाएक चौंक पड़ा, "चन्द्रकुमार! आपने अपने साथी के पीटे जाने पर जेल में सत्याग्रह कर दिया था।"

"ओ वह तो···।"

"और तब उन्होंने आपको बहुत मारा था।"

कुमार हँस पड़ा, "और क्या जेल में प्यार किया जाता है?"

"कम-से-कम हमारे बहुत से जन-सेवक यही चाहते हैं। क्या आप उन वकील साहब को नहीं जानते। वह गोरे-गोरे और लम्बे-पतले। जेल में भी उनको अण्डे मिलते थे। सुना एक दिन उनकी पत्नी भी उनकी सेवा में रही थीं।"

कुमार ने सहज भाव से जवाब दिया, "दुनिया वैचित्र्य का नाम है।"

कान्त को इस शान्त युवक ने बड़ा प्रभावित किया और अलग होने से पूर्व उसने कुमार से मित्रता करने का निश्चय कर लिया। उस रात तो बहुत देर तक बैठा हुआ अपनी डायरी लिखता रहा। उसे विश्वास हो चला था कि वह एक दिन अवश्य अपने स्वप्नों और आदर्शों को पूरा करेगा।

तब उसने रजिस्टरों को उठाकर नीचे डाल दिया और विजयगर्व से गुनगुनाता हुआ डायरी के पन्ने पलटने लगा। सहसा उसकी दृष्टि उस पृष्ठ पर पड़ी जिस पर उसने लिखा था—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि मैं आज से—(१) खद्दर पहनूँगा, (२) अछूतों को अपने समान मानूँगा, (३) राष्ट्र-भाषा हिन्दी

की सेवा करूँगा तथा (४) हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्न करूँगा।"

वह एक अद्भुत भाव से मुस्कराया—ये प्रतिज्ञाएँ! क्या मैंने इन्हें पूरा करने का प्रयत्न किया है। पहली प्रतिज्ञा खद्दर पहनने की है और मैं खद्दर पहनता हूँ। सरकारी नौकर होकर भी मुझे भय नहीं है। इसीलिए आज कुमार ने कहा था, 'तुम साहसी हो!' सच मैं साहसी हूँ। मै नौकरी छोड़ सकता हूँ पर खद्दर नहीं छोड़ सकता। वह प्रसन्नता से भर उठा। उसने प्रतिज्ञा को निभाने का पूरा प्रयत्न किया है। एक ही नहीं चारों! हाँ चारों......

उसे याद आया कि आर्यसमाज में दीक्षित होने के बाद जब वह पहली बार प्रीति-भोज में सम्मिलित होने गया था तो वह कुछ काँप रहा था। खाना परोसने वाला चमार बताया जाता था। वही चमार जिसके साथ कपड़े छू जाने पर गाँव में उसे नहाना ही नहीं पड़ता था, बल्कि माँ की मार भी खानी पड़ती थी। कान्त के पास बैठे हुए एक व्यक्ति ने कहा, "क्रांत-द्रष्टा ऋषि दयानन्द की शक्ति तो देखिये। धरती की धूल माथे का चन्दन बन गई है।"

कान्त ने सुन लिया। सुनकर क्रांत-द्रष्टा को मूक प्रणाम किया। परन्तु चमार कौन-सा है। कपड़े तो सभी के स्वच्छ हैं। सभी सज्जन पुरुषों की तरह बोलते हैं। उसने अपने साथी से पूछा, "क्यों जी वह कौन सा है?"

"अरे! तुम नहीं जानते। वही तो था जो मिट्टी के बरतन रख गया था।"

कान्त ने उसे देखा। बिलकुल उसी के जैसा था। लेकिन इससे पूर्व कि वह कुछ सोचे उसकी दृष्टि अपने सामने वाले सज्जन पर पड़ी। वह खा नहीं रहे थे। परोसने वाले भाई ने भी उन्हें देखा, फिर पास जाकर कहा, "मैं समझता हूँ आपको अछूत की छूत से डर लगता है।"

वह हँस पड़े। बोले, "बात यह है कि अपना तो मन नहीं करता।"

"अरे यार! सब दिखावे की बातें हैं। नाम को चमार का लड़का है। उसका बाप स्कूल में मास्टर है। इस जन्म में तो बाप-दादा के काम को कभी हाथ लगाया नहीं।"

"फिर भी भाई···।"

"फिर भी क्या ? एक बार मिट्टी के बर्तन रख गया है। उन्हें सभी छूते हैं।"

कान्त ने सब कुछ सुना। उसका दिल ग्लानि से भर आया। क्यों ये लोग अपने को ही छलते रहते हैं। परन्तु जैसे ही वह घर पहुँचा तो सब कुछ भूलकर उसने अपनी माँ से कहा, "सुनती हो माँ ! आज मैंने क्या किया···"

"क्या ?"

"चमार के हाथ का खाना खाकर आया हूँ।"

"है नहीं रे ! क्यों मजाक करे है ?"

"सच कहता हूँ।"

"मेरी कसम !"

"तेरी कसम !"

माँ का दिल बैठ गया। बोली, "क्या सूझी रे तुझे ? इस तरह क्यों धर्म-भ्रष्ट करता फिरे है।"

कान्त ने धीरे स्वर से कहा, "माँ, वहाँ तो सैकड़ों आदमी थे। आर्य-समाज का प्रीति-भोज था।"

माँ के जैसे प्राण लौटे, "तो यूँ क्यों नहीं कहता ? मेरी तो जान निकल गई थी। समाजी तो ऐसे करे ही है। वे क्या चमारों के घर जावे हैं।"

× × ×

कई वर्ष बाद गांधीजी ने अछूतों के प्रश्न को लेकर आमरण व्रत किया तो देश में हरिजनोद्धार की बाढ़-सी आ गई। उसके एक मित्र ने हरिजन बस्ती में एक स्कूल खोला। एक दिन कान्त भी उसे देखने गया, और बहुत दिन तक वहाँ जाकर पढ़ाता रहा। उसे विश्वास होने लगा कि शीघ्र ही यह युग-युग से चला आने वाला कोढ़ अब दूर हो जायगा, लेकिन एक दिन उसके अपने घर में एक ऐसी घटना घटी जिससे उसकी यह मान्यता खण्ड-खण्ड हो गई। आँगन की नाली धोने के लिए जिस स्थान से जाना पड़ता था वहाँ कान्त की

चारपाई पड़ी रहती थी। लड़की प्रतिदिन वहाँ आकर ठिठक जाती थी। कहती, "बाबूजी! जरा खाट हटा लो।"

एक बार, दो बार, दस बार, कान्त ने उसे हटाया। हटाता रहा, पर कभी-कभी वह सोचता—आखिर यह क्यों? खाट को यदि भंगन छू देगी तो वह कैसे भ्रष्ट हो जायगी है। पड़ौसियों के बच्चे अक्सर आकर उस पर बैठ जाते हैं। कभी-कभी पाखाना कर देते हैं, पेशाब तो वे रोज ही करते हैं, परन्तु वह कभी भ्रष्ट नहीं समझी जाती। द्विजों के मलमूत्र में जो अपवित्रता नहीं है, वही अपवित्रता मलमूत्र साफ करने वाले दलित के स्पर्शमात्र में कहाँ से आ जाती है?"

सो एक दिन निश्चय करके कान्त ने लड़की के कहने पर भी खाट नहीं उठाई। लड़की झल्लाकर बोली, "बाबूजी! आप गरीबों को क्यों तंग करते हैं? मैं नाली साफ नहीं करूँगी।"

और वह सचमुच लौट चली। कान्त ने जोर से कहा, "तू अपने आप क्यों नहीं हटा लेती?"

लड़की मुड़ी और पहले से भी अधिक तीव्र स्वर में बोली, "मैं हटाऊँ! फिर कहते फिरेंगे भंगन को तमीज नहीं। माँजी अलग जान खायेंगी, हमारा धरम भिरस्ट करे है। ना बाबा! काम करवाना है तो अच्छी तरह करा लो। नीच जात को हर तरह मुसीबत है, किसी ने देख लिया तो ··।"

कान्त ने फिर कुछ नहीं कहा। चुपचाप खाट को वहाँ से हटा दिया, लेकिन मन में एक प्रश्न उभर आया—सर्वव्यापी भगवान क्या इनमें नहीं हैं? नहीं हैं तो सर्वव्यापी कैसे हैं? हैं तो क्या वह देखते नहीं, जानते नहीं। क्या सचमुच ही ये लोग पूर्व-जन्म के सचित दुष्ट-कर्मों का फल पाते हैं, पर बुरे कामों का फल अगले जन्म में क्यों मिलता है? और पिछले जन्म के पुण्य के कारण जिन्हें धन-धान्य मिलता है, वे सब बुरे काम क्यों करते हैं? समाज उन्हें रोकता क्यों नहीं···?

फिर तो एक के बाद एक अनेक घटनाएँ उसके सामने आईं और गईं।

रायबहादुर जो समाज के प्रधान हैं, डिप्टी साहब जो फार्म के अफसर हैं, राजा और नवाबों की कहानियाँ, सबसे अन्त में अंग्रेज जाति के अत्याचार की करुण कहानी । क्या पैंतीस करोड़ भारत-वासियों में सभी ने पिछले जन्म में पाप किये थे ? क्या एक भी पुण्यात्मा नहीं था ? क्या भगवान् संसार भर के पापियों को भारत में भेज देते हैं ?

कान्त कुछ निर्णय नहीं कर सका, परन्तु इस संघर्ष के कारण उसकी आस्था क्रान्ति में दृढ़ होने लगी और एक बार फिर उसने ईश्वर को कसौटी पर चढ़ाया। परिणाम यह हुआ कि वह अपने को व्यक्त करने को व्यग्र हो उठा। इसी आत्माभिव्यक्ति ने कान्त को पहले व्याख्याता और फिर लेखक बना दिया।

कान्त के लेखक बनने की कहानी का उसकी तीसरी प्रतिज्ञा से गहरा सम्बन्ध था। उसकी बात सोचते-सोचते वह बहुत दूर जा पहुँचा। उसे बचपन से ही पढ़ने का शौक था। हिन्दी की पहली पुस्तक पढ़ने के बाद वह रास्ते में पड़े हुए अखबार के टुकड़े या सामान बाँधने के कागज़ बड़े मनोयोग से पढ़ा करता था।

फिर नगर के स्कूल में पहुँचकर उसने देखा—बालसखा के अन्त में कुछ चिट्ठियाँ छपा करती हैं। उसको लिखने वाले उसी की आयु के बालक होते हैं, अक्सर छोटे भी। सोचा—वे लिख सकते हैं तो वह क्यों नहीं लिख सकता। पर सोचने में बात जितनी सरल थी करने में वह उतनी ही कठिन बन गई। एक सध्या को जब वह स्कूल से लौट आया था तो चुपचाप सबसे अलग जा बैठा। उसने अपने चारों तरफ किताबें फैला लीं। आगे एक कापी रखी और उसी में लिखने लगा। तभी देखा—चाचा उधर आ रहे हैं। वह सिहर उठा। चाचा बोले—"कहो जी, यहाँ बैठे क्या कर रहे हो ?"

"जी ट्रांसलेशन ·।"

"हाँ, यह ठीक है। ट्रांसलेशन बहुत जरूरी है। इंगलिश का ज्ञान बढ़ता है।"

"जी, रोज करता हूँ !"

"बड़ा अच्छा है, और जगह भी तुमने बड़ी अच्छी ढूँढी है। एकान्त में पढ़ने में मन लगता है।"

कान्त गद्गद् हुआ। चाचा चले गये। उसने लिखना शुरू किया। लिख चुका तो जैसे आकाश छुआ। एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा, दस बार पढ़ा। पढ़ते-पढते अघाता ही नहीं था। किसी तरह लिफाफे में रखकर पता लिखा और उसे किताब में रख लिया। सवेरे स्कूल जाते समय स्वयं अपने हाथ से बंबे में छोड़ेगा।

लेकिन चिट्ठी लिखकर जितनी प्रसन्नता हुई, लिखने के बाद के दिनों में वह अब उदासीनता में पलट गई। कभी खीज उठती, कभी निराशा जकड़ लेती—कौन छापेगा मेरी चिट्ठी ?

एक दिन ऐसा हुआ कि एक परिचित वकील का लड़का जो उसके नीचे की क्लास में पढ़ता था, दौड़ता हुआ उसके पास आया। बोला, "तुम्हारी चिट्ठी छपी है।"

कान्त चौंका, "कैसी चिट्ठी !"

लड़का बोला, "वही जो तुमने 'बाल-सखा' में लिखी है।"

"हाँ, कहाँ है ? देखूँ।"

अन्दर जो उत्सुकता उमड़ रही थी, उसे कान्त ने यथा-शक्ति रोका। तेज आँधी का आवेग कोमल लता ही रोक सकती है, बड़े वृक्ष तो उखड़ जाते हैं। दोनों जने साथ-साथ स्कूल से लौटे। मार्ग में वकील का घर था। अन्दर से 'बाल-सखा' का नया अंक लाकर उसने कान्त को दिया। पत्रों वाले पृष्ठ पर उसका पत्र छपा था—

श्रीमान् मान्यवर सम्पादकजी,

नमस्ते। मेरे एक मित्र हैं, उनका एक छोटा भाई है। वे हमेशा लड़ा करते हैं। बड़ा दुःख होता है। आप बतायें क्या करें ?

आपका सेवक
निशिकान्त, श्रेणी ६

नीचे आकिट देकर सम्पादक ने लिखा था—

"आप एक दिन उन लड़ने वाले मित्र को अपने घर बुलावें और उनके सामने अपने भाई से प्रेम का व्यवहार करें। आपके मित्र जरूर लज्जि होंगे और फिर नहीं लड़ेंगे।"

चिट्ठी से अधिक चिट्ठी का जवाब पढ़कर उसका मन प्रफुल्लित हुआ। सम्पादक ने उसकी बात का जवाब दिया है। तब सम्पादक की जो कल्पना उसके मन में उठी वह स्कूल के गोरे इन्सपेक्टर से भी महान् थी। ऐसा महान् सम्पादक उसकी चिट्ठी का जवाब देता है, तो वह अवश्य महान् है। और एक दिन अवश्य वह महान् लेखक बनेगा।

लेखक बनने में जो विशेष सहायक हुई वह बहुत बाद की एक और घटना कान्त को याद आ गई। उस दिन बैठक में बैठा हुआ वह एक उपन्यास पढ़ रहा था। तभी एक नारी ने वहाँ प्रवेश किया। उस नारी का मुख उसे आज तो ठीक-ठीक याद नहीं है, परन्तु इतना अवश्य याद है कि उनकी आँखों से स्नेह छलका पड़ता था। वह मुस्करा रही थी, उन्होंने सफेद वस्त्र पहने थे और हाथ में एक रसीदबुक थी। वे किसी गुरुकुल के लिए चन्दा माँगने आई थीं। कान्त के हाथ में पुस्तक देखकर वह बोलीं, "उपन्यास पढ़ रहे हो?"

कान्त ने लजाकर धीरे से कहा, "जी।"

पूछा, " 'परख' पढ़ा है?"

"परख? जी नहीं, किसने लिखा है?"

"जैनेन्द्रकुमार ने।"

"अच्छा है?"

"उस पर हिन्दुस्तानी एकेडमी से ५००) का पुरुस्कार मिला है।"

कान्त ने सोचा—जिसे पुरुस्कार मिला है उसकी महानता में कोई सन्देह नहीं हो सकता। उसने कहा, "आप पता बता दीजिये। मैं जरूर पढ़ूँगा।"

बात आगे बढ़ी। महिला ने बताया, "जैनेन्द्रकुमार मेरा लड़का है।"

कहते समय महिला का सारा अस्तित्व एक रहस्यमय प्रकाश में डूब गया। उनके नेत्रों से जो तरल पदार्थ उमड़ा, उसने कान्त के हृदय को छुआ। वह कई क्षण शान्त-मन उन्हें देखता ही रह गया।

ऐसी ही और भी अनेक घटनायें थीं और वह धीरे-धीरे लेखक बनता जा रहा था। आर्यसमाज ने भी उसके हिंदी-प्रेम को विशेष रूप से पुष्ट किया था। परन्तु आर्यसमाज ने जहाँ उसकी पहली तीनों प्रतिज्ञाओं के पालन में पूरा-पूरा योग दिया, वहाँ चौथी प्रतिज्ञा के मार्ग में वह एक बड़ी रुकावट बन गया। किसी भी कारण से हो, आर्यसमाज के भक्त मुसलमानों के दुश्मन थे और कांत चाहता था एकता।

कांत का मन फिर पीछे की ओर लौटा। एक के बाद एक अनेक घटनाएँ उसके स्मृति-पटल पर उभरने लगीं।

ईद का दिन था। सदा की भाँति हिन्दुओं ने अपनी गाय-भैंसों का दूध निकाला और मुसलमानों में बाँट दिया। कान्त के चाचा की बाल्टी भी कुछ ही क्षणों में खाली हो गई और वह अन्दर चले गये। लेकिन कान्त बहुत देर तक आने-जाने-वालों को देखता हुआ दरवाजे पर खड़ा रहा। धीरे-धीरे भीड़ कम हो चली। सब अपने-अपने घरों में त्यौहार मनाने की तैयारी करने लगे। कान्त भी अन्दर जाने को मुड़ा कि तभी उसकी दृष्टि अपने सहपाठी अहमद पर पड़ी। उसके हाथ में खाली लोटा था और उसकी आँखों से निराशा बही पड़ती थी। वह ठिठक गया। पुकारा, "अहमद !"

अहमद ने दृष्टि उठाई। कान्त ने पास आकर पूछा, "तुझे दूध नहीं मिला ? तू अब तक कहाँ था ?"

अहमद ने धीरे से कहा, "अम्मा को बुखार आता है, देर हो गई।"

"तो..."

"वापिस जा रहा हूँ ।"—कहते-कहते उसका गला भर आया।

कान्त ने एक बार फिर अहमद को देखा और एकदम अन्दर की ओर भाग चला। फिर मुड़कर कहा, "मैं अभी आया।" अन्दर माँ को देखा तो

धीरे से डरते-डरते पूछा, "दूध और है क्या ?"

माँ बोली, "है, तू पियेगा ?"

"ना।"

"तो ?"

शीघ्रता से वह बोला—"अहमद को दूध नहीं मिला।"

"कौन अहमद ?"

"वह मेरे साथ पढ़ता है। उसकी माँ को बुखार आता है। उसे देर हो गई।" और यह कहकर कान्त ने माँ को ऐसे देखा जैसे कोई बड़ा भारी अपराध कर बैठा हो। लेकिन माँ थी कि स्नेह से भीग आई, बोली, "लोटे में दूध रखा है, ले जा।"

कान्त उल्लास में डूब गया और अहमद कृतज्ञ स्नेह में। कृतज्ञता का बदला है स्नेह-आभार। कुछ देर बाद अहमद स्नेह का वही आभार लेकर लौटा। खाना खाकर कान्त लेटा था कि किसी ने उसे पुकारा। द्वार पर आकर देखा तो कटोरा लिये अहमद खड़ा था, बोला, मैं सेवैयाँ लाया हूँ।"

कांत के साथ उसकी माँ और चाची भी बाहर आगई थीं। अहमद की बात सुनकर चाची ने तीव्रता से जवाब दिया, "हम क्या तुम्हारे घर का खाते हैं ?" माँ ने इशारे से उन्हें रोका। फिर धीरे से कहा, "बेटा ! तुम बड़े अच्छे हो। पर हम तुम्हारी सेवैयां नहीं ले सकते।" अहमद कुछ समझ न पाया, बोला, "कान्त के लिए लाया हूँ।"

"नहीं बेटा, वह नहीं खायेगा।" चाची फिर बोली।

माँ ने समझाया, "बेटा, तुम मुसलमान हो, हम हिन्दू। हिन्दू मुसलमान के हाथ का नहीं खावे।"

अहमद ने एक क्षण कान्त की ओर देखा, कान्त ने अहमद की ओर। उनका स्नेह तब उस दूध की तरह था जिसमें किसी ने नीबू की एक बूँद डाल दी है और वह फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया है।

फिर उसे ताजियों की बात याद आई। याद आया कैसे पेड़ की एक

टहनी काटने पर हिन्दू-मुसलमानों में झगड़े होने लगे। फिर गाँव पीछे रह गया। शहर में आर्यसमाज के उपदेशक ने बताया "हम आर्य हैं। आर्य श्रेष्ठ पुरुष होते हैं। शेष अनार्य और म्लेच्छ हैं। म्लेच्छ उन्हें कहते हैं जो वेदों को नहीं मानते और बुरे आचरण करते हैं। मुसलमान म्लेच्छ हैं। वे गुण्डे हैं। वे हमारी माँ-बहिनों को भगाते हैं...।"

कान्त ने सोचा—किसी की माँ-बहिनों को भगाना जरूर गुण्डापन है। लेकिन भगाना क्या होता है? बचपन में माँ कहा करती थीं, "लाला दिन ढलते ही घर आ जाया करो। गाँव में गीधिये उतर आये हैं।" कान्त ने पूछा, "गीधिये क्या करते हैं?"

"बालकों को भगा ले जाते हैं।"

क्या मुसलमान गीधिये होते हैं। वे बालकों को भगाते थे और ये औरतों को...औरतों का वे क्या करते हैं? कुछ समझ में नहीं आया। शायद विवाह कर लेते हैं। पर उसे याद आया कि हिन्दू-मुसलमान का विवाह नहीं हो सकता। हिन्दू आर्य हैं, मुसलमान अनार्य हैं। मुसलमान सचमुच दुष्ट हैं। लेकिन तभी प्रश्न उठा—औरतें भागती क्यों हैं?

एक दिन डरते-डरते पण्डितजी से पूछा, "पण्डितजी, स्त्रियाँ भागती क्यों हैं?"

पण्डितजी ने कान्त को ऐनक के भीतर से ऐसे देखा जैसे उसने कोई भयंकर धृष्टता की हो। बोले, "स्त्रियाँ मूर्ख होती हैं, इसलिए बहकाने से भाग जाती हैं।"

कान्त ने उस रात को सोते समय खाट पर लेटे-लेटे बहुत देर तक तारों से विचार-विनिमय किया, परन्तु वह कुछ निर्णय नहीं कर सका। मूर्ख स्त्रियाँ भाग जाती हैं तो हिन्दू रोते क्यों हैं? वे स्त्रियों को मूर्ख रखते क्यों हैं? मुसलमान मूर्ख स्त्रियों को भगाते क्यों हैं?

× × ×

एक दिन कान्त को समाज मन्दिर जाने के लिए कुछ देर हो गई।

जिस समय वहाँ पहुँचा तो यज्ञ की वेदी से पवित्र धूम उठकर चारों ओर फैल रहा था। वह शीघ्रता से पण्डितजी के पास जा बैठा। उसने देखा कि उनके पास केवल धोती पहिने एक स्वस्थ युवक बैठा है। उसका सर घुटा हुआ है और वह काँपते हाथों से यज्ञ-कुण्ड में सामग्री डालने की चेष्टा कर रहा है। उसने धीरे से अपने पास बैठे हुए व्यक्ति से पूछा—"यह कौन है?"

उत्तर मिला—"मुसलमान को आर्य बना रहे हैं।"

कान्त अचरज से मुस्कराया—"मुसलमान आर्य बन रहा है," उसने एक बार फिर उस युवक को देखा, पंडितजी को देखा, स्वामी दयानन्द के चित्र को देखा, फिर सुना पंडितजी उस युवक से कह रहे हैं, "तुम अब आर्य हो नित्यप्रति गायत्री का जाप करो, संध्या करो, हवन करो, सत्य बोलो, शुद्ध कार्य करो, अब तुम्हारा नाम धर्मपाल है। उधर लड्डू रखे हैं, सबको बांटो, आज से सब तुम्हारे बन्धु हैं।"

कान्त के मन में सहसा शंका उठी–अब तक क्या यह दुश्मन था? तभी धर्मपाल ने कहा—"लीजिये"। वह कांपा। और दोनों हाथ फैला कर उसने लड्डू ले लिया। फिर दृष्टि घुराकर देखा—बाजार का साधारण लड्डू है। फिर चक्खा–मीठा भी है। और शुद्धि से पहले धर्मपाल उसे छूता तो क्या कड़ुवा होता? कैसा कुतर्की-मन है, कुतर्क करता है।···उसने देखा कुछ लोग अभी तक लड्डू को हाथ में दबाये हुए हैं। धर्मपाल नतमस्तक मंत्री से कुछ निवेदन कर रहा है। वह नये वस्त्रों में कितना सुन्दर लगता है। कितना सजीला, आर्य है न, धरती का श्रेष्ठ मानव।

इसके बाद धर्मपाल कान्त के लिये, एक रहस्यमय वस्तु की तरह, दर्शनीय हो उठा। स्कूल से आते जाते उसने अनेक बार उसे समाज मंदिर के आसपास घूमता देखा। मन में बातें करने की इच्छा जागी। परन्तु कई दिन संकोच के कारण वह उससे दूर ही रहा। एक दिन ऐसा हुआ कि सत्संग में धर्मपाल उसके पास आकर बैठ गया। लोगों के आने में कुछ देर

थी इसलिए कान्त उससे बातें करने लगा। पूछने पर धर्मपाल ने बताया कि उसका कोई घर नहीं है। उसके माँ-बाप उसे बचपन में ही छोड़ कर मर गये थे। एक हिन्दू कुम्हार ने उसे पाला है। कान्त का कौतूहल जागा, वह बोला, "वह अभी जिन्दा है?"

"जीहाँ, गरीब है, किसी तरह पेट पालता है।"

"तो तुम नौकरी क्यों नहीं कर लेते?"

प्रश्न सुनकर धर्मपाल के मुख पर हल्की-सी छाया उठी और फिर सघन हो गई। बोला, "मुझे नौकर नहीं रखते।"

"क्यों?"

"क्योंकि मैं म्लेच्छ हूँ।"

"क्या कहते हो भाई, तुम तो अब आर्य हो।"

धर्मपाल बोला, "मंत्रीजी ने एक वकील साहब के पास भेजा था। भले आदमी हैं। दो-चार दिन बाद मुझे बुलाकर कहने लगे, "भाई धर्मपाल, मुझे तो तुम से बड़ी हमदर्दी है, पर तुम जानते हो औरतों का ख्याल कुछ और ही होता है। वे अभी इतनी उदार नहीं हैं। तुम्हारे हाथ का खाते झिझकती हैं। और कोई काम इस समय है नहीं, होगा तो मैं तुम्हें जरूर बुला लूँगा, अच्छा और पाँच रुपये देकर उन्होंने मुझे बिदा कर दिया। वहाँ से एक लालाजी के पास भेजा गया। दुकान पर काम करना था। साँझ को जैसे ही मैंने पानी पीने का घड़ा उठाकर अन्दर रखा तो वह एकबारगी लाल-पीले हो उठे, "तूने यह क्या किया बे? हिन्दू बन गया है तो क्या हमारा धर्म बिगाड़ेगा। निकल जा यहाँ से। खाने को नहीं मिलता तो हिन्दू बन जाते हैं। ...आगे उन्होंने क्या कहा यह सुनने को मैं खड़ा नहीं रहा। चला आया।"

कान्त सुन रहा था और उसका मन ग्लानि से भरता आ रहा था। कई क्षण वह गति-हीन-सा शून्य में ताकता रहा। बोला, "तुमने मंत्रीजी से कहा था?"

धर्मपाल हँस पड़ा, "कहा था; वे कहते हैं कि मैंने क्या ठेका लिया है?"

कान्त के भीतर श्रद्धा और विश्वास का जो सागर लहरा रहा था, उसमें कम्पन हो आया और जब सागर काँपता है तो···

कुछ क्षण बाद कान्त बोला—"मैं तुम्हारे लिए कोशिश करूँगा।"

धर्मपाल मुस्कराया, "बहुत अच्छा।"

लेकिन कान्त को यहीं छुटकारा नहीं मिला लौटती बार जब वह मंदिर के बाहर पनवाड़ी की दुकान पर शरबत पीने के लिए रुका, तो पनवाड़ी ने धर्मपाल की ओर इशारा करके कहा, "यह छोकरा बड़ा बदमाश है।"

"क्यों ?"

"फिर मुसलमान होने वाला है।"

"सच ?"

"जीहाँ, कल बड़ी देर तक मुसलमान छोकरों के साथ बातें करता रहा।"

कान्त ने कुछ जवाब नहीं दिया। वही कहता रहा, "बाबूजी, भगवान जिस जाति में जन्म देता है, उसका असर कभी नहीं मिटता। साँप सदा साँप रहता है। हमें समाज की यह बात अच्छी नहीं लगती। म्लेच्छ आखिर म्लेच्छ है। शुद्ध करने से उसकी जात नहीं बदल सकती।"

कान्त ने चुपचाप गिलास खाली करके उसे पकड़ा दिया और पैसे देते हुए बोला, "शायद तुम ठीक कहते हो।"

यह कहकर वह स्वयं काँप उठा।

कुछ समय बाद उसको सिविल-हास्पीटल के कम्पाउंडर के घर नामकरण-संस्कार के शुभ अवसर पर सादर निमंत्रित किया गया। जैसा कि सदा होता था, वह नियत समय पर वहाँ पहुँच गया। तब तक कोई नहीं आया था। कम्पाउंडर ने प्रणाम करके निवेदन किया, "पंडितजी आने वाले हैं, तब तक आप हवन की तैयारी कर लें।"

कान्त ने बिना कुछ उत्तर दिये सदा की तरह कुण्ड में समिधा लगानी शुरू कर दी। कपूर ठीक बीच में रक्खा। फिर सामग्री में घी मिलाया।

एक बार पुकारकर दियासलाई मँगाई, तो कम्पाउंडर के स्थान पर उसकी पत्नी को आना पड़ा। दियासलाई देकर उसने पूछा, "जी और कुछ चाहिए ?"

"जी नहीं," कान्त ने कहा।

वह फिर बोली, "मुझे भी बैठना होगा ?"

"जी, नहीं···जीहाँ, आप भी आहुतियाँ डालेंगी।"

पत्नी चली गई। तभी पंडितजी आ गये और यज्ञ शुरू हो गया। उनके साथ तीन सज्जन थे। शेष ने आने में असमर्थता प्रगट की थी। तीन में एक सज्जन जाति के कुम्हार थे, दूसरे चमार और तीसरे जाट थे। कान्त को यह बात खटकी। पर तभी उसने देखा कि समाज के मंत्री भी एक ओर आकर बैठ गये हैं। तब कुण्ड में अग्नि-शिखा प्रज्वलित हो चुकी थी और कम्पाउंडर आहुतियाँ डालने लगा था। कान्त ने धीरे से कहा, "उन्हें बुलाया जाय पंडितजी ?"

वह मानों सुन रही थी। शिशु को गोद में लिये कम्पाउंडर के पास आकर बैठ गई। आहुतियों के बीच में कान्त ने उसे ध्यान से देखा—मुख पर परदा नहीं है, न विशेष लज्जा है; पर सुघड़ता है और स्फूर्ति भी। शरीर गठा हुआ है और रंग सेब की तरह लाल। यज्ञ हो चुका तो उसके प्रस्ताव पर बालक का नाम रक्खा गया, अक्षय। फिर लड्डूओं के थैले बाँटे गये। कुल छः व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे। कम्पाउंडर ने भोजन करने की प्रार्थना की। मंत्रीजी बोले, "मुझे तो भाई एक मुकद्दमे की तैयारी करनी है। क्षमा चाहता हूँ।" पंडितजी को किसी संस्कार में जाना था। जाट सज्जन की गाड़ी का समय था। कान्त बड़ी दुविधा में पड़ा, पर तभी पत्नी ने आकर कहा, "आपको भी कुछ काम है ?"

"जी, जी नहीं।"

"तब बैठियेगा।"

कान्त बैठ गया। दूसरे दोनों सज्जन बड़ी बेतकल्लुफी से बातें कर

रहे थे। वे प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे। एकाएक कान्त की ओर देखकर चमार जाति के बाबू ने कहा, "आप बड़े साहसी हैं।"

"क्यों?"

"जानते हैं, यह स्त्री कौन है?"

कान्त अचरज से बोला, "जी नहीं!"

"मुसलमान," उन्होंने कहा, "कम्पाउंडर ने शुद्ध करके उसे हिन्दू बना लिया है।"

जो भाई कुम्हार थे, वह मुस्कराये, "इसीलिए तो और लोग नहीं आये हैं और जो आये थे वे चले गये हैं।"

कान्त ने कम्पाउंडर से कहा, "मै तुम्हें बधाई देता हूँ। तुम साहसी हो।"

कम्पाउंडर मुस्कराकर बोला, "साहस आपका है, मेरा नहीं। वह स्त्री है। मैं उसे प्रेम करता था, पर आप व्यर्थ ही अपवित्र हुए हैं।"

कान्त एकाएक कोई जवाब न दे सका। सोचकर इतना ही कहा, "किसी के हाथ का खाने मे कोई अपवित्र नहीं होता।"

बात वहीं नहीं रुकी। कम्पाउंडर ने पत्नी से इस बात की चर्चा की। जाते समय उसने कान्त से कहा, "आप किसी दिन फिर आ सकेंगे?"

"जी, काम होगा तो…"

बात काटकर वह बोली, "काम क्या, आप आइये। मैं आपको खाने का न्योता देती हूँ।"

कान्त धीरे से बोला, "अच्छी बात है।"

अब तक सुना था—मुसलमान हिन्दू स्त्रियों को भगा ले जाते हैं और हिन्दू मुसलमान औरतों को अछूत समझते हैं पर कपाउंडर ने उस स्त्री को शुद्ध कर लिया है लेकिन शुद्ध करने से क्या उसकी मुसलमानियत खत्म हो गई। मुसलमानियत, हिन्दूपन, ऊहँ; ये सब नाम हैं। मुसलमान होने से क्या स्त्री स्त्री नहीं रहती? मैं भी मुस्लिम नारी से विवाह करूँगा।

× × × ×

और उसी रात को उसे नींद नहीं आ रही थी। वह बहुत सोच चुका था। फिर भी वह यंत्रवत उठा और कमरे में टहलने लगा। उसे कुछ नए विचार सूझ रहे थे। वे विचार विद्रोह से पूर्ण थे। वह विद्रोह उसके अपने घर के प्रति ही नहीं, समाज के प्रति भी था। उसके सामने अनेक मूर्तियाँ बार-बार उठती थीं। उनके मुख पर वह अपने विचारों की प्रतिच्छाया देखता था। परन्तु उन सबको पीछे हटाकर जो दो मूर्तियाँ सबसे ऊपर उठ आती थीं वह कम्पाउंडर और उसकी पत्नी की थीं। यद्यपि वे उसकी प्रतिज्ञा में सीधे सहायता नहीं करती थीं फिर भी न जाने क्यों उसे ऐसा लगता था कि जब तक जाति-पांति, धम, वर्ण का नाश करके विवाह नहीं किये जावे, तब तक हिन्दू-मुस्लिम समस्या नहीं सुलझ सकती। लेकिन मुसलमानों की धर्मान्धता और उसका आर्य-समाजी विश्वास, उसके मार्ग मे हिमालय के समान अड़े हुए थे। ऐसी अवस्था मे कम्पाउंडर ने जिस पथ को ग्रहण किया था वह कान्त को बुरा नहीं लगा।

: ३ :

उस दिन सवेरे सवेरे एक अध्यापक मित्र ने आकर कहा, "कान्त, एक बहुत आवश्यक काम से तुम्हारे पास आया हूँ।"

कान्त ने नम्रता से जवाब दिया, "आज्ञा कीजिये।"

"आज्ञा क्या भाई, घर से तार आया है कि पत्नी बीमार है, जाना होगा।"

"अरे तो जाओ न," कान्त आकण्ठ सहानुभूति से भरकर बोला।

"आज ही जारहा हूँ, पर भाई एक ट्यूशन है। परीक्षा पास है।

तुम जरा देख लो तो…"

सहज भाव से कान्त ने कहा, "आप कह जाइये। मै देख लूंगा।"

वह मित्र पहले ही कह आये थे, इसलिए जब वह पढ़ाने के लिए पहुँचा तो कमला के पिता उसकी राह देख रहे थे। अपनी बेटी से परिचय कराते हुए उन्होंने कहा, "बेटा! पंडितजी एक हफ्ते के लिए घर गये हैं। तब तक यह श्री निशिकान्त तुम्हें पढ़ायेंगे। जानती हो यह…"

कमला धरती की ओर देखते हुए बोली, "जी, मैंने सुना है।"

कान्त ने देखा—रंग स्वर्णिम है, मुख पतला, आँखे नीली, लम्बी, ओठ लाल और केश सघन तथा कृष्ण।

बाबूजी बोले, "बैठो बेटी।"

कमला कान्त के सामने कुर्सी पर बैठ गई। कान्त ने पूछा, "आज-कल आप क्या पढ़ रही हैं?"

"शकुन्तला।"

"कौनसा अंक?"

"चौथा," और कमला ने जो स्थल चल रहा था वही निकालकर कान्त के सामने रख दिया। कान्त ने कई क्षण उसे देखा, फिर पुस्तक उसे लौटा दी। बोला, "पढ़िये।"

कमला ने पढ़ा—

"कर ध्यान आज शकुन्तला जाती, हृदय दुख से घिरा।
है दृष्टि धुँधली शोक से, आँसू रुके, गद्‌गद् गिरा॥
बनवास-रत भी स्नेह-वश इतना दुखी मैं हो रहा।
फिर क्यों न तनया-नव-विरह से हो गृही पीडित अहा॥"

और वह रुक गई। कान्त अर्थ करने लगा लेकिन उससे पहले उसने कालिदास और उसकी कला का परिचय दिया। फिर शकुन्तला की कहानी सुनाते हुए बोला, "उसके माता पिता उसे बन में छोड़कर चले गये थे।"

कमला के लिए यह सब कुछ नया था। तन्मय-विमुग्ध वह पुस्तक में

दृष्टि गड़ाये कान्त की बात सुन रही थी। सहसा बोली,"बड़े बुरे थे वे लोग।"

कान्त हँस पड़ा, "वे बुरे हो सकते हैं परन्तु उनकी पुत्री परम सुन्दरी थी। कण्व ने जिस समय उसे देखा, उस समय पक्षियों ने उस पर छाया कर रखी थी। इसी कारण कण्व ने उसे शकुन्तला कहकर पुकारा। तुम शकुन्तला का अर्थ जानती हो?"

कमला ने सिर हिलाकर बताया कि वह नहीं जानती।

कान्त बोला,"देखो, शकुन्त संस्कृत शब्द है। उसके अर्थ होते हैं पक्षी। 'शकुन्तै लालिता पालिता सा शकुन्तला'। अर्थात् पक्षियों ने जिसका लालन-पालन किया है वह शकुन्तला है। उसी शकुन्तला को कण्व अपने आश्रम में ले आये। वह उनकी तनया नहीं थी, पालिता पुत्री थी। फिर भी वह उस पर अपार स्नेह रखते थे। जिस समय वह आश्रम से विदा होकर पति के घर जा रही थी, उस समय वह कितने व्यथित हुए, उसी का चित्रण इस श्लोक में है। वस्तुतः कण्व के बहाने कवि ने इस श्लोक में माता-पिता का सन्तान के प्रति जो स्नेह होता है उसी का चित्र खींचा है। यह कितना सहज और कितना मार्मिक है। वह कहते हैं, "आज शकुन्तला जा रही है, यह सोचकर ही हृदय दुःख में भर आता है। शोक के कारण दृष्टि धुँधली पड़ रही है। आँसू रास्ता पाने में असमर्थ हैं। वाणी गद्‌गद् है। मैंने संसार त्याग दिया है, मैं शोक-मोहातीत हूँ। परन्तु जब मुझे ही इतना दुख होता है तब उन गृहस्थियों का, जो ममता-माया में फँसे हुए हैं क्या हाल होगा?"

कमला के पिता वहीं बैठे सुन रहे थे। उनके नेत्र सजल हो आये। अवरुद्ध कण्ठ से बोले, "माँ-बाप का प्रेम सचमुच ऐसा ही होता है। सतयुग में भी ऐसा ही था। आज भी ऐसा ही है। दुनिया पलट गई है पर यह नहीं पलटा।"

कान्त ने कहा, "मनुष्य की सहज प्रवृत्तियाँ कभी नष्ट नहीं होतीं। अन्तर केवल इतना पड़ जाता है कि कभी मनुष्य प्रवृत्तियों का दास हो जाता है और कभी प्रवृत्ति। यूरोप में कुटुम्ब-प्रथा नहीं है परन्तु वहाँ की माँ भारत

की माँ से अपने बच्चों को कम प्यार नहीं करती। हाँ, वह भारत की माँ की भाँति ममता की दासी नहीं है। वह अपने स्नेह का प्रदर्शन नहीं करती, न उसके कारण सन्तान को पंगु बनाती हैं। पर वह स्नेह अवश्य करती हैं।"

सहसा कमला ने कहा, "मास्टरजी, आप मुझे तीसरा अंक फिर से पढ़ा दीजिये।"

कान्त ने पूछा, "क्यों? क्या पंडितजी ने उसे छोड़ दिया है?"

"जी छोड़ा तो नहीं पर कई पद्यों के अर्थ उन्होंने नहीं समझाये। कहते थे कुंजी में देखकर याद कर लेना। लेकिन वे मेरी समझ में नहीं आते।"

तीसरे अंक में क्या है कान्त जानता था। उसने अनायास ही कमला की ओर देखा। उन आँखों में सहज स्निग्धता और भोलेपन के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उसने कहा, "अच्छी बात है। कल मैं तुम्हें तीसरा अंक पढ़ाऊँगा।" और वह लौट आया।

अगले दिन वह क्लब में पहुँचा। अचरज से साथियों ने उसे देखा। उनके बार-बार कहने पर भी वह कभी नहीं आता था। वे बोले, "कान्त, हवा किधर चल रही है?"

मुस्कराकर कान्त ने कहा, "पूर्वी हवा चल रही है।"

कहकहा उठा, "क्या बात है, लाला?"

"बात क्या है, मैं लेखक हूँ, मुझे हर जगह जाना चाहिए!"

"बेशक बेशक," एक साथी ने उल्लास से कहा, "हम हमेशा तुमसे यही बात कहते रहे पर तुम समझे नहीं।"

दूसरे बोले, "कोई बात नहीं, सुबह का भूला शाम को घर आ जाता है तो भूला नहीं कहाता।"

बदनसिंह को इस परिवर्तन से विशेष खुशी हुई, बोला, "शरीर को हिलाओगे तो मस्तिष्क भी खुलेगा। तुम्हारे जैसे लेखक को इस क्लब की सब

से अधिक आवश्यकता है पर तुम हो कि जो जीवन है उसी से मुँह मोड़ रहे हो। असल में लेखक कुछ सनकी होते है।"

कान्त मुस्कराया, "मै आज यहाँ आया हूँ, यह भी तो सनक ही है।"

बदनसिंह ने बेडमिंटन का बल्ला उठाते हुए कहा, "अच्छा आओ, तुम्हें बेडमिंटन खिला दूँ।" फिर गेंद सँभाली और पूछा, "नई शिष्या का क्या हाल है?"

"अच्छा है।"

"सुन्दर है?"

"क्या मतलब?"

"अच्छा देखो, बल्ला दाहिने हाथ में पकड़ो। हाँ, ऐसे। और मतलब यह कि पढाने में रस आता है या नहीं?"

"क्यों नहीं आयेगा?"

बदनसिंह ने गेंद को धीरे से फेंका, और मुस्कराकर कहा, "तो श्रीमान् इसीलिए क्लब आये हैं।"

कान्त कुछ जवाब नहीं दे सका। खेल में गति आ गई थी। परन्तु बदनसिंह ने गलत नहीं कहा था। कान्त ने शकुन्तला की कहानी प्रारम्भ से पढ़ानी शुरू कर दी। पहले अंक की उत्कण्ठा, दूसरे अंक का आकर्षण और व्यथा, तीसरे की व्यथा और मिलन। वह एक-एक पद की व्याख्या करने में एक एक घंटा व्यतीत कर देता। मधुर स्वर से कई बार उस पद को पढ़ता। एक-एक शब्द का अर्थ बताता और सहसा बीच में रुककर देखता—कमला क्या कर रही है।

कमला तन्मय-विमुग्ध सुनती रहती। न रुककर टोकती, न लज्जा से मुस्कराती। एक दिन ऐसा हुआ कि कमला ने सुनते-सुनते आँखें बन्द कर लीं। कान्त ने देखा। वह सहसा चुप हो गया और चुप होते ही कमला ने चौंककर नेत्र खोल दिये। काँपकर कान्त ने पूछा, "समझ में आता है?"

कमला ने धीरे से कहा, "जी, इतना समझाने पर भी न समझूँगी

तो कब समझूँगी ?"

कान्त ने सब कुछ पा लिया ।

पंडितजी सात दिन के लिए गये थे, पंद्रह दिन में लौटे । तब भी न लौटते तो कान्त उसी तरह पढ़ाता रहता । अन्तिम दिन का विषय विशेष रूप से करुण था । कान्त शान्त और सरल भाषा में समझाने लगा—और तब शकुन्तला पति के घर जाने के लिए आश्रम-वासियों से बिदा लेने लगी । नर-नारी ही नहीं, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता सभी से उसने स्नेह से भेंट की । आँखों में पानी भरकर सबसे बिदा माँगी । एक तरफ उसका हृदय मिलन के उल्लास से पूरित था, दूसरी ओर प्रिय जनों के विछोह से व्यथित । उसी शकुन्तला का मार्मिक और स्वाभाविक चित्रण कवि ने इस अंक में किया है । वह चित्रण न काल्पनिक है, न अतिरंजित । दिन-रात वह वास्तविक नाटक प्रत्येक परिवार में होता रहता है, और सदा होता रहेगा । फिर भी कालिदास की एक विशेषता दिखाई देती है । मनुष्य के समान प्रकृति भी शकुन्तला के वियोग की व्यथा से पीड़ित है । कण्व प्रकृति से कहते हैं:—

सींचे बिना तुमको कभी पहिले सलिल पीती न जो ।
भूषण प्रिया भी स्नेह-वश पल्लव कभी लेती न जो ।
उत्सव मनाती जो प्रथम खिलते कुसुम तुम पर जभी ।
पति गेह आज शकुन्तला जाती करो आज्ञा सभी ।

और,
खाने को जिसको दिये सदा समा के धान ।
पुत्र-तुल्य यह मृग वही पीछे करे प्रयाण ।।

सच तो यह है कि शकुन्तला मनुष्य से अधिक प्रकृति की स्नेह छाया में पली थी । जन्मते ही माँ-बाप की क्रूरता ने उसे मनुष्य के स्नेह से वंचित कर दिया था । पालित पिता तपस्वी थे । उनका स्नेह गृहस्थ का स्नेह नहीं था । केवल सम-वयस्काओं का सखित्व उसे प्राप्त था सम-वयस्का स्नेह देतीं ही नहीं पाती भी हैं । इसीलिए वह केवल प्रकृति ही थी जिसका अखण्ड ममत्व शकुन्तला को मिला था । उसी से विदा लेते समय शकुन्तला का उल्लास

स्नेहाधिक्य से पिघल चला, पर उसे जाना था। एक-एक करके उसने सबसे भेंट की और फिर तपस्वी पिता से कहा, "पिता आपका शरीर तपस्या से दुर्बल है, इसलिए मेरे लिए अधिक दुखी न होना।" तपस्वी कण्व उसाँस लेकर बोले—

"उटज द्वार पर जो उगे तव पूजा के धान।
देख उन्हें कैसे सहूँगा मैं शोक महान॥"

परन्तु शकुन्तला को जाना था, चली गई। करुणा पर जीवन की पुकार की जय हुई। कण्व ने यह कहकर संतोष कर लिया—

"पर धन जग में बालिका, भेज उसे पति पास।
न्यास सौंप मानो मिटा मेरे मन का त्रास॥"

यहीं आकर कान्त रुक गया उसकी वाणी रुँध गई थी। कई क्षण वह नेत्रमूँदे आत्मविस्मृत-सा बैठा रहा। जब स्वस्थ हुआ तो देखा—कमला के अरुणकपोलो पर आँसू अपना स्मृति-चिन्ह छोड़ गये हैं। और वह स्वप्न-भंग हो जाने पर भी विमोहित-सी अक्षरों में समा जाना चाह रही है।

चलते समय धीरे से कान्त ने कहा, "कल से मैं नहीं आऊँगा।"

कमला बोली, "जी..."

"कुछ और पूछना है?"

"नहीं।"

"कुछ नहीं?"

"नहीं।"

वह उठा और सदा की तरह जाने को मुड़ा। तभी उसे कुछ याद आया। बोला, "आवश्यकता होने पर मुझे फिर कहला सकती हो।"

कमला ने सिर झुकाए उत्तर दिया, "आपकी कृपा है। आपने..."

कान्त आगे बढ़ गया। कमला पीछे रह गई। वह जीने तक उसे प्रणाम करने भी नहीं आई। उसके पिता आए। उन्होंने प्रशंसा के दो शब्द कहे, फिर द्वार बन्द करके लौट गये। कान्त मुड़ा। बन्द द्वार को देखा। देखता

ही रह गया ।

कान्त में फिर परिवर्तन होने लगा । इधर सामाजिक बनने की जो तीव्र उत्कण्ठा अपने आप फूट पड़ी थी, वह सहसा बन्द हो गई । वह अब मित्रों के चुहल में भी भाग नहीं लेता । क्लब में फिर गैरहाजिरी लगने लगी । वह फिर पुस्तकों में समा जाने की चेष्टा करने लगा । दूर बीहड़ बन में निरुद्देश्य घूमने की प्रवृत्ति फिर से जाग उठी । कभी वह घंटों एकांत मे बैठा रहता । यह सब देखकर एक दिन माँ बोली, "कान्त तुझे क्या हो गया है ?"

"पता नहीं माँ !" कान्त ने धीरे से कहा, "जी घबराता है ।"

"तो बेटा डाक्टर को क्यों नहीं दिखाता । बीमारी बढ़ गई तो मुश्किल होगी ना । मेरा बेटा ! तू डाक्टर के पास जा ।"

डाक्टर का नाम सुनकर कान्त काँप उठा । पीड़ा जहाँ है वह जानता है । उस पीड़ा की दवा डाक्टर क्या जाने । फिर भी उसने माँ से कहा, "अच्छा माँ, आज मैं डाक्टर के पास जाऊँगा ।"

परन्तु माँ को शांति नहीं हुई । दोपहर को जब वह पड़ोसिनों के साथ बैठी सूत ओट रही थी तो बोली, "हमारे कान्त को न जाने क्या हो रहा है ? उसका जी घबराता है । भूख मिटती जाती है । दो कौर भी नहीं चलते । पड़ा-पड़ा आसमान की तरफ ताका करता है । राम जी रखें, अच्छी तरह हँसता-बोलता था और भगवान नजर ना लगाये अच्छे पाँच फुल्के खा भी लेता था ।"

एक पड़ोसिन ने कहा, "नजर तो नहीं लग गई ?"

"इत्ते बड़े को ?"

"अजी पूछो ना, आजकल सब कुछ होजा है ।"

"हाँजी नई-नई बीमारी चल पड़ी हैं ।"

तभी एक बूढ़ा ने गम्भीर स्वर से कहा, "बहू, मैं एक बात पूछूं हूँ ?"

"जी !"

"उसका विवाह क्यों नहीं किया ? बूढा लोग हो गया । उसे सारी बीमारी योही है ।"

दूसरी वृद्धा बोली, "रामेश्वर की माँ ठीक कहे है। इत्ते बडे लोग का अभी विवाह नहीं किया।" तीसरी ने जो बाहर की थी, चौंककर कहा, "क्योजी, थारे कान्त का विवाह नहीं हुआ? अजी इत्ते बड़े तो चार-चार बालकों के बाप हो जा हैं। तमने क्या जुल्म कर रखा है।"

चौथी बोली, "आजकल इत्ते इत्ते बडे विवाह ना करें तभी तो बीमारी हो है।"

"हाँजी," पाँचवीं ने समर्थन किया।

चौथी ने प्रोत्साहित होकर कहा, "कहूँ तो हूँ। और नहीं क्या हमारे बड़े बेवकूफ थे जो छोटों छोटों को ब्याह देवे थे।"

कान्त की माँ पहिले ही बहुत दुखी थी। सहानुभूति की इस ताडना से उसका दिल और भर आया। रुआंसी-सी बोली, "क्या करूं जी, माने नहीं है। और तुम जानो जी बालक तो वह है नहीं जो मार-पीट कर कुछ करवा लूँ। बड़े लडकों में बड़ी गैरत हो है जी। जरा में..."

वाणी रुक गई। आंसू अबाध गति से बहने लगे। सहानुभूति से भरकर एक प्रौढा ने कहा, "जीहाँ, आजकल गैरत जल्दी आवे है।"

"देखो ना, रामगुलाम का बेटा," तीसरी बोली, "क्या कहा था बाप ने, जहर खाकर मर गया।"

सुनकर सबके दिल धक-धक कर उठे। जैसे उन्होंने मौत को सामने देखा। एक और नारी जो अबतक सुनने में संलग्न थीं बोलीं, "जिज्जी! पूछो मत। जाने रामजी क्या करेंगे। बेचारे माँ-बाप की मुसीबत है।"

"हाँ भैना, योही बात है, जब तक औलाद ना हो, तब तक यों तड़पते रहे। सयाने, देवी-देवता, डाक्टर सभी की मानता करे। हो जा तो आप गीले में सोवे, उसे सूखे मे सुलावे, बड़े हो के वे यो सुख दे। ना बाबा। मन घना पापी है। ना यूँ जीने दे ना वूँ। भला तुम्हारा कोई जीने में जीना है। राम रखो, बहू हो तो दस काम करे।"

बात दूसरा ही रूप ले रही थी! कान्त की माँ को बुरा लगा। बोल

उठी, "नाजी यह बात ना है। मेरा कान्त मेरे हुक्म के ताबे चले है। यूँ ही किसी के सिर झूठा दोष लगा दूँ। और जी, उसी के दम से घर बना है। नहीं तो जी"…आँसू फिर बहने लगे। पास ही जो स्त्री बैठी थी उसने धीरे से कहा, "हाँजी, कान्त ऐसा नहीं है।"

दूसरी बोली, "अजी कान्त तो बड़ा अशराफ लड़का है; वो तो बात की बात थी।" रामेसुर की माँ ने कहा, "हम क्या नहीं जानें। तुम तो माँ हो। एक दफे को हमारा कहना भी नहीं टाले। तेरे जेठ तो उसे रात-दिन सराहें हैं। ऐसे लेक्चर देवे है कि बस सुनने को जी करे है।"

माँ आँसू पोंछकर बोली, "अजी योंही तो बात है। जब से समाज में लेक्चर देने जाने लगा है तब से यही कहवे है कि पच्चीस साल का होकर विवाह करूँगा। ऐसे रिश्ते आवे हैं कि बड़े-बड़े घर की पढ़ी-लिखी लौंडियें, पर वह तो सुने ही नहीं।"

वृद्धा ने पूछा, "पर बहू! पच्चीस का तो वो होगा?"

"नाजी, अगले महीने की दोयज को वह पूरे चौबीस का होगा।"

"बहू! यह सब कहने की बातें हैं। जवान बेटे को कुछ शर्म भी चढ़ जा' है। तू अच्छी-सोनी सी बहू ढूँढ़ ले, जैसी वो चाहे है और फिर उससे बात कर।"

माँ ने मुँह चढ़ाकर कहा, "ओय जी, आप तो ऐसी बात कहे हैं। तरह-तरह की लौंडियाँ, तरह-तरह के घर देख चुकी हूँ, पर वह तो पच्चीस वर्ष की रट लगाये जा है।"

वृद्धा हार मानने वाली नहीं थी। बोली, "अब कहना बहू। शायद मान जावे और देख एक बात और है। उससे ज्यादा मत पूछना। सब बातें तय कर लेना। बस लड़की देखने की बात है। सोनी बहू होगी तो कभी मना न करेगा। मैं बुढ़िया हूँ, पर आजकल के लौंडों की बात मुझसे छानी ना है।"

और कहकर वह हँस पड़ी। उनके पोपले मुँह की हँसी बड़ी अच्छी लगी। सब हँस पड़े। और उसी रात को माँ ने दृढ़ स्वर में कान्त से कहा, "कान्त,

चाहे तू कुछ कह, मुझे तेरा विवाह करना पड़ेगा।"

कान्त चौंका, "क्यों ?

"क्यों क्या, मैं कहती हूँ।"

कान्त हँस पड़ा, "मैंने विवाह करने को मना कब किया है ?"

"और कैसे करते हैं। देखं न क्या हाल हो रहा है तेरा, ना बेटा मैं अब नहीं सुनूँगी।"

कान्त की हँसी और भी तेज हुई। बोला, "मेरे इस हाल से विवाह का क्या सम्बन्ध है ?"

"सम्बन्ध क्या नहीं ? बुद्धा लोग हो गया—ना भइया! अब विवाह करले।"

कान्त ने क्रुद्ध होना चाहा पर लगा जैसे अन्दर से कोई उसे कातर और कातर करता आ रहा है। तो क्या माँ ठीक कहती है। क्या मेरी घबराहट इसी लिए है कि मैं विवाह करना चाहता हूँ। क्या कमला, कम्पाउंडर की मुसलिम पत्नी, इन सबके प्रति जो आकर्षण है उसका कारण विवाह है ?

जैसे भूचाल आगया। जैसे किसी ने उसे झकझोर डाला। उसका अस्तित्व टीस उठा और उसे लगा—यह सर्व-ग्रासिनी दुर्बलता उसे जिन्दा न छोड़ेगी, उसका प्रण टूट जायेगा।

प्रण की याद आते ही भूचाल उल्टा लौटा। ज्वार को भाटे ने समेट लिया। आलोड़न के ऊपर उठकर उसने मन ही मन कहा, "नहीं, प्रण नहीं टूटेगा।" और दृढ़ स्वर मे वह माँ से बोला, "माँ, विश्वास रक्खो, मैं विवाह करूँगा। पर एक वर्ष बाद। इससे पहले नहीं। किसी भी शर्त पर नहीं।"

माँ के हाथ ढीले पड़ गये। मन कसक उठा। आँसू उमड आये। मुँह फेर लिया। और फिर शीघ्रता के साथ बाहर चली गई। आज अपने आँसू वह बेटे को दिखाना नही चाहती। उसके अभिमान को ठेस लगी है परन्तु अपनी पराजय वह स्वीकार नहीं करेगी।

माँ चली गई। कान्त ने माँ को पराजित किया था परन्तु पराजित माँ ने जाते समय जिस दृष्टि से उसे देखा वह उसके हृदय मे चुभकर रह गई। उसे लगा जैसे वह स्वय पराजित होगया है। उस दृष्टि में विशेष कुछ नहीं था। एक मात्र कुचला हुआ दर्प था वह दर्प जो उसके हृदय को विजयोल्लास से भरने वाला था, परन्तु प्रथम प्रभाव जैसे ही दूर हुआ उसने अनुभव किया कि उसका हृदय विजय के स्थान पर वेदना से पूर्ण है और वेदना क्षण प्रति क्षण असहनीय होती जा रही है। उसने अपना सिर मेज पर रख दिया। उसे एक-एक करके अपनी इच्छायें याद आने लगीं। वे सुखद जीवन की कल्पना से पूर्ण थी और उस जीवन का आधार थी उसकी भावी पत्नी। वह परम सुन्दर और सुसंस्कृतज्ञ थी। वह कोकिल-कण्ठी थी और एक दिन उसी की तरह ससार की महान कवयित्री होने वाली थी। वह न उसके अपने प्रान्त की थी, न जाति की। वह उसके धर्म को भी नही मानती थी। वह प्रायः मुसलमान होती थी क्योंकि उसने हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रण किया था। कभी कभी वह किसी नीच जाति की होती थी, हरिजन अथवा कलाल।

कमला के पिता कलाल थे।

तभी उसने सुना—कोई जीने में आ रहा है। वह बदनसिंह था। उन दोनों को उस रात मिलकर काम करना था। बदनसिह ने पास आकर कहा, "आज क्या बात है ?"

कान्त ने मुस्कराने की चेष्टा को, "कुछ नहीं, बैठो।"

"लेकिन माँ रो रही है।"

"माँ रो रही है ?"

"हाँ, जब उन्होंने किवाड़ खोले तो उनकी आँखे लाल थीं। जान पड़ता है कि तुमने फिर कुछ कहा है।" वह गम्भीर हो रहा था और त्रस्त भी। उसने धीरे से कहा, "माँ को दुख पहुँचाने की बात कभी मेरे मन में उठी हो, मैं नहीं जानता, परन्तु मेरी कुछ मान्यतायें हैं। मैं उन्हें तोड़ना नहीं चाहता और लगता है कि बिना उनके टूटे माँ का दुःख दूर नहीं हो सकता।"

बदनसिंह हँस पड़ा। बोला, "दोस्त, तुम शादी कर डालो, माँ के सब दुख दूर हो जायेंगे।"

"वही तो बात है बदनसिंह।" कान्त ने जवाब दिया, "शादी के बारे मे मेरी कुछ धारणाये है। मैं पच्चीस वर्ष से पहले शादी नहीं करूँगा।"

बदनसिंह शरारत से हँसा, "दाई से पेट नहीं छिपाया जा सकता, मेरे दोस्त! तुम ब्रह्मचर्याश्रम की मर्यादा स्थापित करना चाहते हो। बड़ी सुन्दर बात है। भीष्मादि भारत के आदित्य ब्रह्मचारी तुम पर बड़े प्रसन्न होंगे। पर एक बात पूछता हूँ—ब्रह्मचारी क्या पेट पालने के लिए दफ्तर की खाक छाना करते हैं? क्या वे सुन्दर नारियो के उपासक होते हैं? मेरे दोस्त, यह सब माया-जाल है। असल बात इतनी है कि तुम कुछ चाहते हो और वह तुम पा नहीं रहे हो। उसी को पाने के लिए तुमने ब्रह्मचर्य का सहारा लिया है।"

कान्त एकाएक बोल उठा, "तुम ठीक कहते हो बदनसिह! मै कुछ करना चाहता हूँ, कुछ पाना चाहता हूँ।"

"क्या?" बदनसिह ने पूछा, "मुझे बता सकोगे?"

जैसे कान्त की सब कातरता दूर हो गई। उसने बदनसिह को अपनी सभी प्रतिज्ञाओ के बारे मे बताया और कहा, "अपने भावी जीवन के लिए मैं ऐसी पत्नी चाहता हूँ जो मेरे इन स्वप्नों को पूरा कर सके।"

सब कुछ सुनकर बदनसिंह सहज भाव से बोला, "तुम चाँद को पकड़ना चाहते हो। सुनते हैं अमरीका मे कुछ वैज्ञानिक चाँद को पकड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं पर अभी पकड नहीं पाये हैं। पकड़ पावेंगे इसमे भी मुझे शंका है।"

कान्त ने जवाब दिया, "पकड नहीं पाये हैं या पकड़ पाने में शंका है इसीलिए उन्होने प्रयत्न करना तो नहीं छोड दिया है?"

"हाँ," बदनसिंह ने लापरवाही से रजिस्टर उठाते हुए कहा, "तुम भी प्रयत्न करते रहो। एक दिन देखोगे कि तुम्हारे प्रयत्न जारी है परन्तु जिसके लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं वह प्रश्न मिट गया है।"

"क्या मतलब?"

"मतलब यही जनाब कि विवाह जवानो का होता है, बूढ़ो का नहीं। और अगर तुम कमला के बारे मे सोचते हो तो मैं श्रीमान् को बता दूँ कि उसका विवाह शीघ्र होने वाला है। इसी लिए ही उसे पढ़ाया जा रहा है। और कि उसके पिता बदलकर दिल्ली चले गये हैं।"

क्षण भर में कान्त का मुँह पीला पड़ गया। सहसा कुछ कहते न बना। कई क्षण बाद सँभलकर उसने इतना ही कहा, "यह प्रश्न इतना सरल नहीं है कि जो व्यंग-बाणों से अथवा विवाद करने से सुलझ सके इसलिए इस समय अपना काम कर लेना अधिक उपयुक्त होगा।"

बदनसिंह हँस पड़ा, "चलो एक बात तो तुमने बुद्धिमानी की की; परन्तु यह भी सुन लो कि तुम पर व्यंग-बाण चलाने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सको तो मुझे सुख ही होगा। कहा करुँगा मेरा एक साथी था जिसने असम्भव को सम्भव बनाया था। और भाई कान्त, मेरे जैसे के लिए तो तुम अब भी असम्भव काम करते रहते हो। अब तक शादी नहीं की। सरकारी नौकर होकर भी खद्दर पहिनते हो। साहित्य पढ़ते और लिखते हो। कौन जाने तुम एक दिन चाँद को पकड़ लो, और इसे न भी पकड़ सको तो विश्वामित्र की तरह एक नया ही चाँद बना लो।"

कहते-कहते बदनसिंह की हँसी भीग आई। उसने चुपचाप रजिस्टर खोला और जल्दी-जल्दी टिक लगाने लगा। कान्त भी चुपचाप रजिस्टर पर झुक गया। और फिर रात गहराने लगी।

× × ×

अगले दिन कान्त कम्पाउंडर से मिलने चला। वह घर पर नहीं था। पत्नी ने बताया, "वे ड्यूटी पर हैं। एक बजे लौटेंगे।"

"अच्छा तो फिर आऊँगा।"

पत्नी बोली, "नहीं, नहीं आइये भी। मैंने तो उनसे आपको बुलाने के लिए कहा था। अभी परसों आपकी एक कहानी पढ़ी थी। वही जिसमें दो अलग-अलग जाति वाले युवक-युवती विवाह करते हैं।"

अब तो कान्त को बैठना पड़ा। पूछा, "आपको वह कहानी अच्छी लगी?"

गम्भीर स्वर में कम्पाउंडर की पत्नी बोली, "अच्छी तो लगी, परन्तु मैं पूछती हूँ कि क्या ये बातें कभी हो सकती हैं?"

"एक दिन सब कुछ होगा।"

"शायद, पर आज तो मुझसे कोई सीधे मुँह बात भी नहीं करता। मेरे हाथ का छुआ तक नहीं खाता।"

इन शब्दों के पीछे जो तीव्र वेदना थी कान्त ने उसको अनुभव किया, पर वह हतप्रभ नहीं हुआ, बोला, "मैं तो खा लेता हूँ।"

वह मुस्कराई, "आप खा लेते हैं, पर आप ही क्या दुनिया हैं? अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता है?"

कान्त ने धीरे से कहा, "एक में बड़ी शक्ति है। आपको शंका नहीं करनी चाहिए।"

वह बोली, "शका मैं नहीं करती। डरती भी नहीं। डरती तो कैसे माँ-बाप का घर छोड़ पाती?"

कान्त ने पूछा, "आपके माँ-बाप जिन्दा हैं?"

"जीहाँ।"

"कहाँ हैं?"

"आजकल जम्मू में हैं। पहिले कभी काश्मीर रहते थे।"

"तो आप काश्मीरी हैं?"

"मैं तो कभी काश्मीर नहीं गई। सुना है कि मेरे दादा वहाँ रहते थे। बड़े अच्छे पण्डित थे।"

"वह पण्डित थे?"

"जीहाँ, वह पण्डित थे। परन्तु बाद मे सपरिवार मुसलमान हो गये। मेरे पिता सदा जम्मू रहे। वहीं मेरा जन्म हुआ है।"

"पर आप ·!"

बात काटकर उसने स्वयं कहा, "वही बताती हूँ। मेरे पति पंजाबी जाट हैं। जम्मू के अस्पताल में नौकर थे। मैं अक्सर वहाँ जाती थी। हम लोग गरीब थे। घर डाक्टर नहीं बुला सकते थे। एक बार बहुत दिन अस्पताल में रहना पड़ा। तब उन्होंने जी-जान से मेरी देख-भाल की।"

वह क्षण भर के लिए रुकी। कान्त ने मुस्कराकर कहा, "मैं समझ गया। परन्तु क्या आपके पिता राजी थे ?"

"जीहाँ, वह राजी हो गये थे। वह स्वयं हिन्दू होना चाहते थे। पर मैंने मना कर दिया।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मै नहीं चाहती थी कि उनका अपमान हो। वह गरीब हैं पर इज्जत से तो जीते हैं। यहाँ आकर कुत्तों की तरह रहने से मै मरना अच्छा समझती हूँ।"

"पर तुम," यंत्रवत कान्त ने पूछा।

वह बोली, "मै ! मेरा अब अस्तित्व कहाँ है ? मैं तो उनकी हूँ।"

कान्त को लगा कि उठकर उसके चरण पकड़ ले। पर वह बैठा रहा, बोला, "आप ठीक कहती हैं। बात ऐसी ही है।"

इस बार कम्पाउडर की पत्नी ने पूछा, "आपने विवाह नहीं किया ?"

"जी नहीं।"

"क्यों ?"

"मैं चाहता हूँ कि मेरा विवाह भी आपकी तरह हो।"

सुनकर कम्पाउडर-पत्नी मुस्करा उठी, बोली, "तभी आप ऐसी कहानियाँ लिखते हैं।"

वह हँस पड़ा, पर कम्पाउंडर-पत्नी बोली, "देखिये, मैं आपको सलाह देती हूँ। जब तक आप अपने समाज को नहीं पलट देते तबतक, किसी बेगुनाह लड़की का जीवन बरबाद न कीजिये।"

कान्त ने धीरे से कहा, "समाज की मुझे इतनी चिन्ता नहीं है जितनी

अपनी। सोचता हूँ कि कहीं मैं ही किसी दिन उसका अपमान न कर बैठूँ। यदि एक दिन भी मुझे अपने किये पर संदेह होगा तो वह उसका घोर अपमान होगा। विवाह नहीं किया है, वह इसीलिए कि अभी इतनी शक्ति मुझमें नहीं है।"

कम्पाउंडर की पत्नी बोली, "आप में शक्ति नहीं है, पर साहस अवश्य है। सच बात कहने का साहस उस शक्ति से कहीं बढ़कर है।"

और तब जागकर उसका बच्चा रोने लगा। वह शीघ्रता से उठी। कान्त ने कहा, "मैं चलूँ। दफ्तर जाना है।"

"अच्छा," उसने कहा, "फिर कभी आइये।"

"अवश्य आऊँगा। चाहता था कि आपको घर बुलाऊँ, लेकिन जानता हूँ मेरी स्नेहमयी माँ आपको स्नेह नही दे सकेगी।"

वह बोली, "आपके स्नेह का ही बोझ मैं नहीं उठा सकूँगी। और ले कर क्या होगा ?"

कान्त हँस पड़ा, पर जाते-जाते उसने कहा, "माँ बचपन में कहा करती थी कि सती नारी में बोझ नही होता। वह फूलों से तुलती है। उसी तरह स्नेह में भी बोझ नहीं होता।"

जवाब में उसे कम्पाउंडर-पत्नी की निश्छल हँसी सुन पड़ी। उसे सुनने को वह रुक नही सका, परन्तु बाहर आते-आते उसे ऐसा लगा जैसे वह हवा में उड़ रहा हो। कितने सुखी हैं ये लोग। इससे अधिक और है क्या जो मनुष्य चाहेगा। लेकिन ·

तभी उसकी दृष्टि बड़े बाबू पर जा पड़ी, जो गरदन हिलाते हुए आगे-आगे जा रहे थे। उनको देखते ही उसका मस्तिष्क तीव्र गति से चल पड़ा। वह कितने स्नेही हैं पर साथ ही कितने चिड़चिड़े। वह अक्सर घर जाने से दफ्तर में सो रहना अच्छा समझते हैं। वह समझने लगे हैं कि सरकारी नौकरी उनके जीवन का चरम उद्देश्य है और कर्त्तव्य-पालन जीवन का मूल-मंत्र। लेकिन दुर्भाग्य से उनकी पत्नी का मत उनसे भिन्न है। लोग

हैं कि उनकी पत्नी कर्कशा है। इसके विपरीत कान्त का मत है कि वह कर्कशा बनने पर मजबूर की गई है वैसे ही जैसे नाटे एकाउन्टैन्ट की पत्नी को नर्वस ब्रेकडाउन का रोग हो गया है। माँ बनना ही नारीत्व का चरम विकास उन्होंने माना है। या कहें वे मानने को मजबूर हुए हैं पर कान्त उस मजबूरी को स्वीकार नहीं करेगा। नहीं, वह ऐसी पत्नी से विवाह नहीं करेगा। वह सच्चे अर्थों में जीवन संगिनी की खोज करेगा और अपने धर्म तथा जाति से बाहर विवाह करेगा। उसको लेकर वह साहित्य-सेवा करेगा और गांधी के मार्ग पर आगे बढ़ेगा।

दफ़्तर पहुँचने पर चपरासी ने उसे दो पत्र दिये। एक उसके मामा का था। लिखा था—उमा का विवाह निश्चित हो चुका है। जीजी को छोड़ जाओ। दूसरा एक निमंत्रण था, कमला के विवाह का निमन्त्रण। उसके पिता ने बड़ी नम्रता से उससे विवाह में सम्मिलित होने की प्रार्थना की थी।

न जाने क्या हुआ? दोनों पत्र हाथ से छूटकर धरती पर गिर पड़े। दृष्टि शून्य में विलीन हो गई। चपरासी वहीं खड़ा था, बोला, "कान्त बाबू! क्या आपकी तबियत खराब है?"

"हाँ।"

"तो छुट्टी ले लो न।"

"अभी लेता हूँ।"

वह यंत्र की तरह बोल रहा था। यंत्र की भाँति वह अपनी कुर्सी पर बैठ गया, और प्रार्थना-पत्र लिखने लगा—"बहुत दिनों से मेरा स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। दिल घबराता है। डाक्टरों ने मुझे आराम करने की सलाह दी है। घर पर मुझे कुछ और आवश्यक कार्य भी करने हैं। इसलिए एक माह का अवकाश स्वीकृत करने की कृपा करें। मैं यह भी निवेदन कर दूँ कि पिछले तीन वर्षों में मैंने कोई लम्बा अवकाश नहीं लिया है।"

तीसरे दिन उसका प्रार्थना-पत्र स्वीकृत हो गया। उसी सध्या को वह मा को लेकर मामा के पास चल पड़ा।

: ४ :

कान्त एक माह का अवकाश लेकर गया था परन्तु जब लौटा तो तीन माह बीत चुके थे। दिल्ली, लखनऊ, बनारस, प्रयाग, देहरादून और मसूरी सब जगह वह गया। पढ़ना-लिखना उसने बिल्कुल छोड दिया। वह तो केवल देखता था और हँसता था। उसकी इस प्रगति पर माँ को संतोष हुआ। स्वयं उसे भी लगा कि जैसे वह बदलने लगा है, परन्तु एक दिन सवेरे जब वह फिर अपने चिर-परिचित नगर मे लौट आया तो उसका मन पहले से भी अधिक दुखी हो उठा। उसने चाहा कि वह यहाँ से फिर कही भाग जाये। कही वहाँ जहाँ कोई प्रश्न न हो, कोई बन्धन न हो, कोई रूप न हो। जहाँ सौन्दर्य हो, सुख हो, स्वतंत्रता हो। परन्तु ऐसा तो कहीं है नहीं, इसीलिए वह चुपचाप घर आया। पडौसियो के अनेक सवालो का हँस-हँसकर जवाब दिया। घर में जो कूडा था उसके हटाने की व्यवस्था की और फिर दफ्तर चला गया। मित्रो ने उसे देखा। वे मुस्कराये। कहा, "हलो कान्त, तुम आ गये। मोटे हो गये हो, यार।"

"सच ?"

"शीशा नहीं देखा ?"

"रोज देखता हूँ।"

"तभी तो।"

"क्यो ?"

"तीन माह बीतने पर देखते तो पता चलता।"

"देख तो रहा हूँ। तुम सब मेरे शीशे हो। तुम कहते हो कि मैं मोटा हूँ तो मैं अवश्य मोटा हूँ।"

संध्या को कुमार के पास पहुँचा। वह बरामदे में बैठा हुआ अखबार पढ़ रहा था। आहट सुनकर दृष्टि उठाई। "कान्त !"—वह गद्गद् होकर पुकार उठा।

फिर ललककर उसे गले लगा लिया। थपथपाते हुए कहा, "तुम्हारा

चेहरा दमक रहा है।"

कान्त हँस पड़ा, "सच ?"

"हाँ, शीशा लाऊँ।"

कान्त और भी हँसा, "मेरा स्वास्थ्य सुधर रहा है, यह खुशी की बात है। परन्तु इससे अधिक खुशी मुझे इस बात की है कि तुम्हे मजाक करने का अवसर मिला।"

कुमार भी खिलखिलाकर हँसा,"मुझे तुमने रोते कब देखा है,भाईतुम्हारी तरह न तो मैं विचारक हूँ और न लेखक। मै तो हँसता हूँ और जीता हूँ।"

कान्त ने कहा, "मुझे भी ऐसा ही बना लो न।"

"ना बाबा", कुमार उसी तरह हँसता रहा, "मैं गुरुडम मे विश्वास नहीं करता। और फिर बनने बनाने से अधिक होना अच्छा होता है।"

कान्त बोला, "अच्छा भई, तो हम भी कुछ होकर रहेंगे।"

"निस्सदेह कान्त ! मुझे खुशी है कि भ्रमण ने तुम्हारी सूझ-भरी बुद्धि का बटन खोल दिया है। तभी तो तुम इतना हँसते हो। मैं तुम्हे सलाह दूँगा कि वर्ष में एक बार जरूर छुट्टी लेकर दुनिया देखने के लिए जाया करो।"

अन्दर से नौकर ने आकर कहा, "जी, खाना तैयार है।"

कुमार कान्त की ओर मुड़ा, "आओ कान्त, खाना खायें।"

लेकिन कान्त ने उसकी बात बिना सुने अचरज से कहा,"अरे धर्मपाल तुम !"

वह नौकर धर्मपाल था। मुस्कराकर बोला, "जीहाँ, मै इन्हीं के पास आ गया हूँ।"

"पर सुना था कि तुम फिर मुसलमान होने वाले थे।"

"जीहाँ, होने वाला था, पर आपकी तरह एक दिन यह बाबूजी मिल गये और मुझे अपने साथ ले आये।"

सुनकर कान्त ने कुमार से कहा, "कुमार, तुम बहुत अच्छे हो।"

कुमार मुस्कराया, "यानी बहुत बुरा।"

"वह कैसे ?"

कुमार ने जवाब दिया, "कैसे क्या ? तुम्हारे जैसे बुद्धि वादियों से सुना है कि किसी को यह कहना कि तुम बड़े अच्छे हो ऐसा ही है जैसे यह कहना कि तुम बहुत बुरे हो, क्योंकि अच्छा ही हो, ऐसा कोई व्यक्ति इस दुनिया में देखने को नहीं मिलेगा।"

कान्त ने साँस खीची। कहा, "ओह ओ भाई, तुम तो बड़े कुतर्की हो चले हो। बाहर से वैसे ही भोले लगते हो।"

कुमार हँसा, "भोला न बनूँ, तो संसार को जानूँ कैसे ?"

कान्त आज हारता चला जा रहा था पर इस हार से उसे दुख नही था। उसने कहा, "कुमार, तुम अच्छे हो या बुरे, मुझे इससे कोई मतलब नहीं है, पर मुझे अच्छे लगते हो..."

"ठहरो, ठहरो कान्त !" कुमार खिलखिलाते हुए बोला, "अच्छा लगता हूँ तो किसी दिन बुरा भी लग सकूँगा। इसीलिए गीता मे भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अनासक्त रहने का उपदेश दिया था।"

कान्त ने कहा, "भगवान कृष्ण भगवान थे। वे आदर्श की बात ही कह सकते थे। पर इस दुनिया का रहने वाला कोई आदमी अनासक्त है, यह मै नही मानता।"

"नहीं है, यह तो ठीक हो सकता है, पर आगे भी नहीं होगा, यह मान लेना तो अपनी शक्ति में अविश्वास प्रगट करना है।"

"शायद।"

"तो फिर उठो और भोजन करने चलो।"

और फिर उठते-उठते कहा, "भई, कभी-कभी तो मन न करने पर भी बुद्धि बड़ी तेजी से दौड़ती है। आज तो जान पड़ता है कि मुझे तुम्हारी छूत लग गयी है। तुम्हारा काया-कल्प हुआ है न ?"

कान्त भी उठा, "लेकिन काया-कल्प होकर भी मैं हारता जा रहा हूँ।"

"नहीं कान्त ! तुम हार नहीं रहे, बल्कि ज्ञान पा रहे हो।"

कान्त प्रभावित हुआ। बोला, "कहा तो तुमने ठीक, हारकर भी मैंने

बहुत कुछ पाया है।"

"मनुष्य सदा हारकर ही पाता है, कान्त।"

धर्मपाल हाथ धुलाने के लिए पानी लाया। उसी की ओर देखकर कान्त ने पूछा, "कुमार, तुम्हारे पड़ौसी तुम्हे कुछ कहते तो नही हैं?"

"किस लिए?"

"इसी धर्मपाल को लेकर।"

कुमार ने हाथ पोंछते-पोंछते जवाब दिया, "मेरे कार्यों के बारे में कब कौन क्या कहता है, इसकी मै विशेष चिन्ता नहीं करता। करूँ तो काम कैसे चले। तुम्हीं ने तो शायद बताया था कि काम और चिन्ता दो विरोधी तत्व हैं।"

"सो तो है, लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हें कभी डर नहीं लगता।"

कुमार सहसा ठिठका। क्षण भर रुककर उसने कहा, "कान्त भइया, यह कहना कि मैं कभी नहीं डरा अपने आपको धोखा देना है, पर इतना अवश्य है कि मैं जानता हूँ डरने और झिझकने से कुछ लाभ नहीं होता।"

वे खाना खाने लगे थे। बातें भी बराबर चल रही थीं। कान्त फिर कुछ पूछे इससे पहले ही कुमार ने कुछ गम्भीर होकर कहा, "अपने डर की एक बात याद आ गई। सुनोगे?"

कान्त ने कहा, "क्यों नहीं?"

"तो मै आज तुम्हें एक गोपनीय बात बताता हूँ। मेरा विवाह हो चुका है।"

"सो तो मैं जानता हूँ, कुमार। तुमने एक दिन कहा था कि तुम्हारी पत्नी मर चुकी है।"

"नहीं कान्त, वह जिन्दा है।"

कान्त ने हठात् कुमार को देखा। वह पूर्ववत् शान्त था। कहता रहा, "तुम समझ रहे हो कि मैंने झूठ बोला था पर वस्तुतः मैंने सत्य को झूठ नहीं बनाया था केवल उसके साथ कृपणता की थी। मेरी पत्नी नहीं है यह तो ठीक है, परन्तु जो लड़की मेरी पत्नी बनी थी वह आज भी जिन्दा है।"

"आखिर तुम कहना क्या चाहते हो ? तुमने उसे छोड़ दिया शायद..."

हाथ से उसे बोलने से रोककर कुमार ने कहा, "सुनो तो, वही बता रहा हूँ। मैंने उस लडकी को पत्नी तो बना लिया पर उसके हृदय को अपना न बना सका। नतीजा यह हुआ कि उसने अपना हृदय किसी दूसरे को दे डाला। मेरे पास बाहरी दुनिया का बोझ इतना रहा है कि मै अपने अन्दर की दुनिया को अपनी समझकर उस ओर ध्यान न दे सका। यह मेरी भूल थी। मै उसे अपनी समझता रहा पर कभी अपनी बनाने का प्रयत्न नहीं किया। मैं भूल गया कि पत्नी गृह-लक्ष्मी से पहले प्रेयसी है। जिस दिन जान पाया उस दिन किसी और ने उसे अपनी प्रेयसी बना लिया था।"

कान्त ने पूछा, "वह कृतघ्न कौन था ?"

"कृतघ्न नहीं, कान्त !" कुमार ने कहा, "वह मेरा मित्र था। जब मैं जेल मे था तब उसने मेरी पत्नी की बड़ी सहायता की थी। आज भी मै उसे अपना मित्र मानता हूँ, पर कान्त, उससे आँखें मिलाने का साहस नहीं कर सकता। इसीलिए छिपकर यहाँ बैठा हूँ। यह डर ही तो है।"

कान्त के हाथ का ग्रास हाथ में रह गया। धर्मपाल ने आकर पूछा, "रोटी लाऊँ ?"

कुमार बोला, "हाँ लाओ और साग भी।"

कान्त ने कहा, "बड़े अचरज की बात है। उसे तुम पर गर्व होना चाहिए था।"

कुमार मुस्कराया, "तुम आदर्श की बात कहते हो, पर भइया आदर्श आदमी को अधिक देर तक जिन्दा नहीं रख सकता। वह आसमान के समान है पर मनुष्य धरती पर ठहरा हुआ है। धरती पर रहता है, तभी तक आसमान सुख देता है। उसके पास वही धरती नहीं थी। आसमान उसे कब तक सँभालता। मैं शुरू से ही उदासीन था। यद्यपि वह उदासीनता जान बूझकर नहीं थी। परन्तु अज्ञान तो और भी बडा दोष है। जेल से लौटकर मैंने उनके प्रणय-बन्धन को समझा। दुख में मेरे मित्र ने पत्नी को सहारा दिया

था। इसलिए सहानुभूति स्वाभाविक थी। वही सहानुभूति मेरी उदासीनता के कारण प्रेम में पलट गई। तुम इसे आदर्श-हीनता कहो अथवा पाप, पर यह अस्वाभाविक बात नहीं थी। पहले तो मुझे भी यह बात बुरी लगी थी। मैं घृणा और द्वेष से भर उठा था परन्तु जब एकान्त क्षणों में मैंने इस घटना का विश्लेषण किया तो मुझे लगा—गलती मेरी है। इस बात की चर्चा बाहर नहीं थी, यह बात नहीं। गली-मुहल्ले में जब-तब लोग मेरी ओर उँगली उठाकर मन ही मन हँसा करते थे। उस व्यंग को मैं समझता था। इसलिए एक दिन मैंने अपनी पत्नी से सब बातें साफ-साफ कह दीं। सुनकर वह काँप उठी। फिर क्रुद्ध होकर बोली, 'आप मुझे इस तरह बदनाम करना चाहते हैं।' मैंने कहा, 'अब तुम्हें क्रोध आ रहा है। मैं जाता हूँ। शान्त होने पर इस बात पर विचार करेंगे।' और मैं लौट आया। मैंने अपने मित्र को पत्र लिखा। मैंने उसमें कुछ नहीं छिपाया। अन्त में लिखा—जो सत्य है, उसे मैं स्वीकार करता हूँ। तुम एक दूसरे से प्रेम करते हो। तब यह अच्छा है कि तुम साहस-पूर्वक उसे अपनी बना लो। मैं तुम्हारी राह में रोड़ा नहीं बनूँगा। वह मेरे चरणों में लोट गया। सिसक-सिसक कर रोया। तब की अपनी दृढ़ता पर मुझे आज भी अचरज होता है। मैं उससे बोला तक नहीं। चुपचाप शहर छोड़ कर चला आया।"

कान्त सुन रहा था और सोच रहा था। यहाँ आकर बोला, "फिर ?"

"फिर वे लोग चले गये।"

"चले गये ?"

कान्त ने दृष्टि उठाकर देखा—कुमार की थाली में रोटी उसी तरह रक्खी है जिस तरह धर्मपाल रख गया था। वह कई क्षण मौन उस अद्भुत व्यक्ति को देखता रहा। वेदना का इतना बड़ा सागर अपने अन्दर छिपाकर ये लोग कैसे हँसते हैं ? फिर उसने धीरे से कहा, "तुम रोटी नहीं खा रहे ?"

कुमार मुस्कराया और चुपचाप रोटी खाने लगा। कान्त भी खाता रहा। कोई नहीं बोला। खा चुके तो कान्त ने कहा, "अब चलूँ।"

"जाओगे ?" कुमार बोला, "पर तुम्हारी बातें तो सुनी ही नहीं। अपनी ही कहता रहा।"

कान्त ने हँसकर जवाब दिया, "आज मैंने इतना कुछ जाना है कि न जानता तो अज्ञानी रहता।"

कुमार भी उसी तरह हँसा। कहा, "कान्त भइया! जानने की कहीं कोई सीमा नहीं है।"

पैढ़ियों पर उतरते-उतरते कान्त मुड़ा। बोला, "लेकिन मैं तो इधर यह महसूस करने लगा हूँ कि ज्ञान की सीमा है।"

"क्या !"

"यही कि ज्ञान की कोई सीमा नहीं है और अपने को अज्ञानी समझ कर ही मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।" कहकर कान्त रुका नहीं। कुमार की मुक्त और गहरी हँसी सुनता हुआ खट-खट नीचे उतर गया। घर पहुँच कर जैसे ही उसने किवाड़ खोले तो देखा—कई पत्र पड़े हैं। सदा की तरह उठाकर वह उन्हे ऊपर ले गया। उनमे एक तो मात्र कागज का पुर्जा था। शायद कोई आया था, और उसे न पाकर वह कागज पर अपना मन्तव्य लिख कर डाल गया। उसने लालटेन जलाई और सबसे पहले उसी पत्र को पढ़ने लगा। वे नारी के अक्षर थे। वह उन अक्षरों को पहचानता था पर एकाएक उसे कुछ याद नहीं आया। वह पढ़ने लगा—"परम पूज्य मास्टर जी" सहसा दृष्टि नीचे की ओर गई। लिखा था, आपकी आज्ञा-कारिणी कमला। उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने फिर पढ़ा। पूरा पत्र इस प्रकार था—

परम पूज्य मास्टर जी,

सादर नमस्ते। आशा करती हूँ कि आप मुझे भूले नहीं हैं। वर्ष आपने मुझे पन्द्रह दिन तक 'शकुन्तला' नाटक पढाया था। इस बार मैं अगली परीक्षा देना चाहती हूँ। मेरी बडी इच्छा है कि आप ही मुझे पढ़ायें। मै जानती हूँ कि आप ट्यूशन नहीं करते। आप समझें आपकी बहिन परीक्षा दे रही है। मैने कई बार आपका पता लगाया, पर आप तो बार-बार छुट्टी बढ़ा

रहे थे। आज आने की बात थी, तभी पत्र लिखा है।

पिताजी बदलकर दिल्ली चले गये हैं। माताजी का देहान्त हो गया। आपको बहुत याद किया करती थीं। आशा है आप मुझे निराश नहीं करेंगे।

आपकी आज्ञाकारिणी
कमला

पुनश्च :—

हम नीम की गली में रहते हैं। वह सरकारी स्कूल में अध्यापक हैं।

—कमला

फिर किसी पुरुष के हस्ताक्षर थे।

आज भी आप नहीं मिले। बहुत देर राह देखी। प्रार्थना है कि किसी वक्त गरीब खाने पर दर्शन दें। मिलने पर बातें होंगी।

— मोहनकृष्ण

कान्त न जाने कैसा होने लगा। कमला का विवाह हो चुका है। उसके पति मोहनकृष्ण हैं। उसकी माँ इस संसार में नहीं है। यह क्या से क्या हो गया, पर वह आगे न सोच सका। चुपचाप उठा और पत्रों में लिखे पते पर जाकर उसने पुकारा, "मास्टर साहब!"

जो सज्जन दरवाजा खोलने आये वह स्वयं अध्यापक महाशय थे। एक दम बोले, "परिचय देने की आवश्यकता नहीं। कमला कहती थी कि मास्टर जी जरूर आयेंगे।"

सुनकर कान्त का अन्तर्मन हर्ष और विस्मय से कुछ भीग आया। वह हँसता हुआ पीछे-पीछे ऊपर आगया। ऊपर आकर उन्होंने कान्त को बैठक में बैठाया। स्वयं अन्दर चले गये। कान्त देखने लगा—छोटा-सा कमरा है। सामान भी संक्षिप्त है। पर वह इस प्रकार सजाया गया कि उसे याद आगया—सादगी स्वयं एक कला है।

तभी उसने सुना कि कोई विनम्र और मधुर स्वर में कह रहा है,"

"मास्टरजी नमस्ते !"

सहसा आँखें ऊपर उठी, देखा,—"सामने एक सलज्ज युवती है। उसने मखमली चौड़ी पाड की सफेद धोती पहनी है, जो सिर के अग्रभाग तक खींची गई है। उसके कर्णफूल गर्दन झुका लेने के कारण स्वयं भी आगे झुक आये हैं, और नमस्ते के लिए जुड़े हाथों मे दो डायमण्ड कट की अँगूठियाँ चमक रही हैं।

वह सँभला। धीरे से कहा, "नमस्ते. बैठिये।"

पर कमला नहीं बैठी। उसके पति आ गये थे और उनकी माँ भी। कान्त ने उठकर उन्हे नमस्कार किया। आशीर्वाद देकर माँ बोली, "बैठो, बेटा।"

मोहनकृष्ण ने कहा, "माँ यह बहुत बडे विद्वान् हैं। नौकरी करते हैं, परन्तु फिर भी पढते रहते हैं।"

माँ बोली, "मैं जानू हूँ। कमला ने मुझे सब बता दिया है। पड़ौस में सब इनकी तारीफ करे है। यहीं रहे है न ?"

"जीहाँ, दो वर्ष इसी गली मे रहा हूँ।"

"हाँ, सब जाने है तुम्हे। भले आदमी क्या छिपे हैं। हमारे मोहन की यहाँ बदली हुई तो स्कूल के सैकडो लडके स्टेशन पर छोड़ने आये।"

मोहनकृष्ण एकाएक बीच मे बोल उठा, "तो आप पढाने आयेंगे ?"

"जी मेरे पास समय तो नहीं है पर ·"

"कौन सा समय ठीक रहेगा ?"

"मैं संध्या को आना पसन्द करूँगा। सवेरे तो मैं स्वयं पढ़ता हूँ।"

"जो आपको ठीक लगे। संध्या को आ जाइये।"

इसी बीच में माँ अन्दर चली गई। कमला कुर्सी पर बैठ गई। आँचल ऊपर करके मन्द-मन्द मुस्कराई। बोली, "आपने बड़ी कृपा की।"

मोहनकृष्ण हँस पड़े, "अजी कृपा की खूब कही। इतनी भक्ति से तो पत्थर भी पिघल जाते हैं। ये तो रक्त-मांस के बने हैं।"

कमला विद्रूप से बोली, "आप तो मजाक करते हैं।"

"मैं मजाक करता हूँ।" मोहनकृष्ण ने उसी तरह हँसते हुए कहा— "भाई साहब, सच मानिये। आपने इन पर जादू कर दिया है। आपसे अधिक अच्छा कोई पढ़ा सकता है यह बात तो यह किसी भी शर्त पर नहीं मानतीं। माँ आप जानते हैं पुराने विचारों की है। कहने लगीं; भई पढ़ना है तो कोई बूढ़ा मास्टर लगा लो…।"

कमला क्रुद्ध होकर बोली, "क्या रामकहानी ले बैठे?"

"लीजिये आप क्रुद्ध होती हैं तो मैं कुछ नही कहूँगा।"—मोहनकृष्ण ने कहा, "मैं तो केवल यही बात कह रहा था कि आप उनकी कितनी प्रशंसक हैं। ये बातें जानकर वे और भी अच्छी तरह पढ़ायेंगे।"

"जैसे पहले न पढ़ाते।"

"बापरे! आप तो मेरी प्रत्येक बात का उल्टा अर्थ लगाती हैं, अच्छा जी अब हम नहीं बोलेंगे।"

तभी नीचे से माँ ने पुकारा, "मोहन, जरा यहाँ तो आइयो।"

"आया, माँ।"

मोहन नीचे चला गया। कान्त ने एक बार शून्य में देखा, फिर कमला को। कमला ने निर्द्वन्द्व होकर पूछा, "पुस्तक ले आऊँ मास्टरजी?"

"कान्त ने कहा, "आज रहने दो, कल से आरम्भ करेंगे।"

और फिर बोला, "आपकी माताजी के मरने का मुझे दुख है।"

शरत्कालीन नीलाम्बर के समान प्रिय मुख पर देखते-देखते विषाद के बादल उमड़ आये। नयन सजल हो उठे। सिर नीचा करके बोली, "आप की बड़ी याद करती थीं।"

"पिताजी ठीक हैं?"

"उन्होंने दूसरी शादी करली है।"

सहसा कान्त, उस सारे आनन्द में दाँत के नीचे आए कंकर के समान एक तीव्र घृणा से भर उठा।

कमला फिर बोली, "अब वहाँ मेरा क्या है? बहिन अपने घर है। भाई है ही नहीं। माँ थी तो .."

आगे उससे बोला नही गया। कान्त ने साहस करके कहा, "आप चिंता क्यो करती हैं। मोहनकृष्ण आपके साथ हैं, आपको और क्या चाहिए?"

कमला ने सिर उठाकर आँचल से आँसू पोछ लिये, फिर मुस्कराने की चेष्टा करती हुई बोली, "यही एक बडी जीत है।"

"सबसे बडी जीत कमला! इसके सामने..."

तभी नीचे से माँ ने कमला को पुकारा। वह शीघ्रता से उठी। बोली, "मै अभी आती हूँ।"

और वह शीघ्रता से नीचे चली गई। कान्त सोचने लगा। एक कमला वह थी जिसे उसने शकुन्तला पढ़ाई थी, एक कमला आज है। दोनों में कितना अन्तर है? वह पुत्री था, यह बधू है। वह कली थी, यह पुष्प है। तब वह अनुभव करती थी। आज यह निवेदन करती है। तब वह वन्दिनी थी। उसे सीता के समान लक्ष्मण की रेखा लाँघने का अधिकार नही था, परन्तु आज..."

सहसा वह चौंका। देखा—वे तीनो नाश्ता लिये आ रहे हैं।

कान्त बोला, "अरे अरे अम्माजी, मै तो खाना खाकर आया था।"

"तो क्या हुआ? मै क्या खाना खिला रही हूँ। यह तो नाश्ता है। और मैं तो झिझक रही थी, पर कमला ने बताया कि तुम हम से परहेज नहीं करते।"

कान्त बोला, "परहेज? परहेज क्या?"

"बेटा, हम कलाल है न।"

कान्त हँस पडा, "कलाल क्या आदमी नहीं हैं। विश्वास रखिये, मैं आपके चौके में बैठकर खाना खाऊँगा।"

सुनकर सब हँस पडे। माँ गद्गद् होकर बोली, "जरूर खाना, बेटा। मेरे लिए तो तुम और मोहन दोनों एक हो।"

"मोहन का कोई और भाई है ?"

"ना बेटा, एक इसी को इसका बाप एक साल का छोड़ गया था।"

कान्त ने एक बार इस तपस्विनी को देखा। फिर बोला, "तब आप समझिये, आपके दो बेटे हैं।"

माँ तरल हँसी हँसी, पर कमला ने धीरे से कहा, "आप तो मेरे भाई हैं।"

मोहनकृष्ण मुस्कराया, "देख लीजिये, है न जादू। अरे भाई आपके तो मास्टरजी हैं अर्थात् गुरु और गुरु होते हैं..."

हँसते-हँसते कान्त ने वाक्य पूरा किया, "और गुरु होते हैं पिता से भी बड़े।" कहकर उसने कमला की ओर देखा। वह हँसती-हँसती बोली, "अच्छाजी, आप जीते मैं हारी। आप मेरे गुरु हैं, पिता से बड़े, परमेश्वर से भी बड़े।"

कान्त हँसते-हँसते जैसे रुक गया। पर मोहनकृष्ण और भी तेजी से हँसकर बोला, "भाई साहब! आपने ही इसे पढ़ाया है। आसानी से हार नहीं मान सकती। पर आइये, नाश्ते के साथ न्याय किया जाये। हलुआ विशेष तौर से आपके लिए बनाया गया है। बड़ा स्वादिष्ट है और मुझ में एक दुर्गुण है, स्वादिष्ट भोजन मिल जाने पर मेरी भूख सुरसा की तरह मुँह फाड़ देती है।"

सुनकर इस बार चारों एक साथ खिलखिला उठे।

तीसरा खण्ड

: १ :

कुमार जब कान्त के घर पहुँचा तो काफी रात बीत चुकी थी। शीत का प्रकोप था और सारा वातावरण एक प्रकार से धुएँ से आच्छादित हो रहा था।

उसे देखते ही कान्त बोला, "भई, तुम खूब आये। मैं आज तुम्हारे पास जाने की सोच रहा था, परन्तु शीत के कारण नहीं जा सका।"

कुमार ने पूछा, "क्यों कुछ विशेष बात थी ?"

"हाँ, बात थी तभी तो, पर तुम कहो तुम कैसे आये। कुछ उदास जान पड़ते हो।"

कुमार हँसा, "नहीं, उदास तो नहीं हूँ, पर मेरे आने का भी एक विशेष कारण है।"

"तो बताओ ?"

कुमार ने कुछ गम्भीर होकर कहा, "मैंने तुमको एक बार अपने जीवन की एक गोपनीय कथा सुनाई थी, उसी को लेकर एक समस्या उठ खड़ी हुई है। मैं समझता था कि नाटक पर अन्तिम पर्दा पड़ चुका है, पर देखता हूँ अभी कोई और अंक खेला जाना शेष रह गया है। गाँव से खबर आई है कि मीना विपत्ति में फँस गई है।"

"मीना उसी का नाम है। उसका पति बहुत ज्यादा बीमार है। इलाज कराने के लिए उनके पास पैसा नहीं है। गाँव में साधारण दुकान करते थे। काफी

दिन बीमार रहे। जो पूँजी थी वह खत्म हो गई, परन्तु बीमारी का अन्त नहीं आ रहा है।"

कान्त सब कुछ समझ गया। फिर भी उसने पूछा, "क्या अब भी यह तुम्हारे सोचने की बात रही है। उसका दूसरा पति मर गया तो वह तीसरे को वर सकती है।"

कुमार ने धीरे से कहा, "उसे तीसरे पति को वरने की छुट्टी है, पर यह ठीक नहीं होगा।"

"क्यों न होगा? तब भी तो हुआ था।"

कुमार बोला, "उसमें अन्तर था। तब उसका दुख मेरे कारण था परन्तु अब वह पैसे के अभाव के कारण है। अभाव मिट जाने पर वे सुखी बन सकते हैं।"

कान्त सहसा कुछ जवाब न दे सका। उमड़-घुमड़ कर कई विचार मन में उठने लगे। उसने सोचा आज जो कहानी वह लिख रहा है उसके नायक के स्थान पर कुमार का चित्रण कैसा रहेगा कि कुमार ने फिर कहा, "इस समय मेरे पास काफी रुपये नहीं हैं। क्या तुम कुछ सहायता कर सकोगे?"

कान्त बोला, "जानता हूँ, तुम उसे रुपया भेजना चाहते हो, लेकिन. .।"

बीच में टोककर कुमार ने कहा, "शायद तुम कहना चाहते हो कि यह सब कोरी भावुकता है, पर शायद तुम्हीं ने कहा था—भावुकता यदि कार्य में परिवर्तित कर दी जाये तो वह शक्ति बन जाती है।"

कान्त तर्क करने के मूड में नहीं था। उसने धीरे से इतना ही कहा, "कल फंड से निकालकर रुपया दे दूँगा।"

कुमार ने जेब से एक लिफाफा निकालकर उसके आगे रख दिया, कहा, "इसमें सौ रुपये हैं। पता लिखा है। सौ और रखकर तुम्हीं भेज देना।"

कान्त कई क्षण चुप रहा। फिर एक पत्र कुमार को देता हुआ बोला, "कमला की चिट्ठी आई है।"

कुमार ने पढ़ा। लिखा था—

'पूज्यवर।'

मै नही जानती कि आपको क्या कहकर सम्बोधित करूँ? उस संकट में आपने हम लोगो के लिए जो कुछ किया, उस पर सहसा विश्वास नही आता। पर देवता और राक्षस दोनों को उसी ने बनाया है। जिन्होंने स्वामी की हत्या की, उन्हीं का एक भाई उन्हे बचाने के लिए प्राण तक देने को तैयार हो गया था। और फिर जब हमारा कोई नहीं था, तो आपने अपनो से ज्यादा हमे अपना समझा। आपके वे मित्र कई दिन तक हमारे साथ रहे। मैं तब इतनी पागल थी कि धन्यवाद भी न दे सकी। यहाँ आकर जब होश आया तो दुनिया बदल चुकी थी। सोचा अब आपको दुनिया में आकर क्यो उन घावों को ताजा करूँ। पिता के घर रहकर बाकी जिन्दगी बिता दूँगी। पिता ने एक दिन दूसरे विवाह का प्रस्ताव भी किया पर मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकी। उसकी कल्पना आज भी मुझे शूल के समान छेदती है। मै स्वामी की याद में शेष जीवन बिता देना चाहती हूँ। उन्होंने एक बार मुझसे कहा था—'हमारा सम्बन्ध शाश्वत है।' मै उनकी बात झुठलाना नही चाहती। उनके प्यार की याद करके आज भी लज्जा आती हूँ, परन्तु मास्टरजी अब तो लज्जा का कारण ही मिट गया। क्या छिपाऊँ, किससे छिपाऊँ? और आपसे गुप्त हम दोनो के पास था भी क्या? क्या आप भूल सकेंगे वे रातें—जब आप हम दोनों को पढाते-पढाते भूल जाते थे कि आधी रात कभी की आकर चली गई है। पानी के बुलबुले की भाँति वह दुनिया अब स्वप्न हो गई। यह भी होती जा रही है। पिता का घर मेरे लिए पराया हो चुका है। घर माँ से होता है। मेरी माँ नहीं है, इसलिए घर भी नही है। पर विश्वास रखिए मैं घबराती नही हूं। आपने मुझे बताया था कि अकेला आदमी सबसे शक्तिशाली है। सहारे की इच्छा कायरता का प्रतीक है। मै जानती हूँ मैं यहाँ नहीं रह सकती, रहूँगी भी नही। आपकी कन्या-पाठशाला में अध्यापिका का एक स्थान खाली हुआ है, उसके लिए प्रार्थना-पत्र भेज रही हूँ। आप उन लोगों को जानते हैं। आपको कुछ कहते मुझे दुख होता है। पर आपसे ज्यादा

आज मुझे कौन जानता है ?

गांव में मांजी किसी तरह जी रही हैं। उनके एक भतीजे के पास शराब का ठेका है। बेचारी ! उन्हें मैं अपने पास बुला लूँगी। आपके वह मित्र वहीं हों तो उन्हें मेरा सादर प्रणाम कहिये।

आपकी

कमला

पढ़ लिया तो कुमार ने कहा, "मैं उसकी बात पसन्द करता हूँ।"

"पर वह अकेली किसके पास रहेगी।"

"अकेली क्यों ? सास-बहू हैं।"

कान्त बोला, "दोनों नारियाँ हैं, पुरुष बिना . "

कुमार ने कहा, "सो तो तुम हो और जितना हूँ मैं भी हूँ। पिता के घर जैसी परिस्थिति है उसमें सुखी रहने की कोई आशा नहीं है। वह घुल-घुलकर मरे इससे तो कहीं अच्छा है कि वह बदनाम होकर खुली हवा में प्राण दे।"

कान्त को यह बात अच्छी लगी। उसने कहा, "मैं उसके लिए कोशिश करूँगा।"

इसी समय किसी ने हारमोनियम के स्वर छेड़ दिये। दोनों मित्र मुस्कराये। कुमार बोला, "पण्डितजी हैं।"

"हाँ वही हैं, रामायण का पाठ कर रहे हैं। उनका विश्वास है कि विश्व की राज-नीति, समाज-नीति, धर्म-नीति, अर्थ-नीति, सब की सीमा-रेखा रामायण में अंकित हो चुकी है। तुलसीदास सब युगों के श्रेष्ठतम मानव थे। जो मनुष्य राम नाम नहीं लेता वह मूर्ख है। इसलिए वह सवेरे-शाम मोहल्ले के सभी बच्चों को बुलाकर राम-नाम का कीर्तन करते हैं और प्रसाद बाँटते हैं।"

कुमार खिलखिलाकर हँसा, "और प्रसाद के लोभ से बच्चे आ जाते हैं।"

"हाँ कुमार, इतना शोर मचाते हैं कि बस काम करना दूभर हो जाता है। पिछले महीने एक मित्र परीक्षा देने के लिए आये थे। जिस समय वह पढ़ने बैठते उसी समय पण्डितजी का पाठ शुरू हो जाता। वह बड़े दुःखी हुए।

आभारी रहूँगा।' वह अभिमान से मुस्कराये; बोले—'भाई, तुम्हारे लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ। क्योंकि मै जानता हूँ तुम सच्चे आदमी हो, पर भगवान मेरा जाने तुम्हारे अन्दर भी एक कमी है। तुम राम-नाम की वास्तविक महिमा नहीं जानते। मेरे पास बैठो तो मैं तुम्हें बताऊँ। बोलो, आओगे।' मैं जानता था कि वह लम्बी चर्चा का आरम्भ है। इसलिए मैंने विनम्र होकर कहा-'पण्डितजी आज तो दफ्तर जाना है। हो सका तो कल आपकी बात सुनूँगा।"

कुमार हँस पड़ा, "फिर क्या हुआ?"

पर कान्त ने मुस्कराकर कहा, "होता क्या? मेरा दुर्भाग्य कि मैं उनसे दीक्षा न ले सका। बात यह है कि उनको उत्साह के दौरे आया करते हैं। ठीक होने पर वह स्वयं भूल जाते हैं। लेकिन तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहे थे।"

"मेरी क्यों?"

"क्योंकि तुम अपने पास धर्मपाल को रक्खे हुए हो।"

"तुमने बताया होगा?"

"हाँ, एक दिन चर्चा चलने पर मैंने तुम्हारा जिक्र किया तो वह बड़े खुश हुए। बोले,—सच्ची सेवा यह है। भगवान जाने मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ। राम के भक्त मनुष्य मनुष्य मे भेद नहीं करते।"

कुमार बोला, "राम की बात मै नही जानता पर बात उन्होंने ठीक ही कही थी।"

और वह जाने के लिए उठा।

: २ :

कई बार बुलाने पर कान्त का आना हुआ। कमला बोली, "आपके सहारे ही पर तो हम यहाँ आये हैं और आपने अब आना ही छोड़-

दिया।"

कान्त मुस्कराया, "क्या करूँ वर्ष का अन्त है। बजट में जितना रुपया माँगा था वह सब खर्च करना होगा। नहीं तो सरकार नालायक कहेगी। इसलिए सवेरे छः बजे दफ्तर जाता हूँ और रात को नौ बजे लौटता हूँ। कभी-कभी तो रात को भी नहीं लौटता।"

कमला अचरज से भर आई, "इतना काम करते हो ?"

"पूछो नहीं. बस किसी तरह जी रहे हैं।"

आवाज सुनकर मोहन की माँ भी आगई, पूछा, "माँ आगई तेरी, बेटा।"

"जीहाँ।"

"सब ठीक है।"

"जीहाँ, आपकी कृपा है।"

फिर सहसा उसने कमला की ओर देखकर कहा, "बहू, कान्त भूखा होगा। देखियो कुछ रक्खा है क्या ?"

कमला उठकर चली गई तो कुछ इधर-उधर की बातें करके माँ प्रार्थना के स्वर में बोली, "बेटा, तुझे इसलिए बुलाया है कि तू कमला को समझा।"

कान्त अचरज से बोला, "जी किस लिए ?"

"यही कि वह एक लडका गोद ले ले। उसके दिन कट जायेंगे और कुल का नाम चलेगा। मेरा क्या है, आज मरी कल परलै। किस-किस के आगे हाथ पसारेगी ? और तुम्हारे जैसे आदमी कहाँ हैं ? कुमार बेचारा हर सातवें दिन सामान दे जाता है। सो बेटा, कमला तुम्हारी बहन है। तुम्हे बहुत मानती है। तुम कहोगे तो मना नहीं करेगी।"

सुनकर कान्त को अजीब-सा लगा। कई क्षण अवाक् वह देखता ही रहा। फिर न जाने क्या सोचकर वह बोला, "अच्छा माँजी, कहूँगा।"

तभी कमला एक तश्तरी में गुझिये और मठरी रखकर ले आई। दूसरे हाथ मे एक कापी थी। वहीं खाट पर रखकर धीरे से बोली, "इसे भी देख

लेना।"

"क्या है ?"

कमला ने कुछ जवाब नहीं दिया। तब कान्त की दृष्टि सहसा उसके मुख पर जा पड़ी। वहाँ न लज्जा की लालिमा थी, न हास्य की मधुरिमा। वेदना ने उनको एक ऐसी सौम्यता में पलट दिया था जो देखने वाले के मन में उतरती चली जाती थी। कान्त के मन में भी उतरती चली गई मो उधर से दृष्टि हटाकर वह चुपचाप कापी के पन्ने उलटने लगा और पढ़ने लगा। उसी समय माँ वहाँ से चली गई। कमला चुपचाप बैठा सुनती रही। कान्त पढ़ता रहा और खाता रहा। पढ़ चुका तो बोला, "एक दिन तुम कहानी-लेखिका बन जाओगी।"

कमला ने धीरे से दृष्टि उठाकर उसे देखा और मुस्कराने लगी। कान्त ने कहा, "लेकिन अभी इसमें एक कमी है। तुमने अपना हृदय तो इसमें उँडेल दिया है परन्तु मस्तिष्क से काम नहीं लिया है। इसे फिर लिखो और लिखते समय भूल जाओ कि तुम वज्राघातों से पीड़ित नारी हो।"

कमला ने जवाब दिया, "भूलने के लिए तो कहानी लिखी है।"

"जानता हूँ," कान्त हँसा, "आदमी अपना दर्द दुनिया को देना चाहता है। लेकिन क्या ही अच्छा हो वह कुछ दुनियाँ के दर्द को दूर करने की भी चेष्टा करे।"

कमला धीरे से बोली, "दूसरे का दर्द दूर कर सके, यह क्या आदमी की स्पर्धा नहीं है ?"

सुनकर कान्त कई क्षण सोचता रहा। फिर कहा, "स्पर्धा होकर भी वह उस ओर प्रयत्न करता है और अपने को ऊपर उठाता है। इसे हम स्वार्थ का उत्कर्ष कहते हैं। स्वार्थ को हम जितना विस्तृत करेंगे सत्य के उतने ही पास आवेंगे।"

कमला ने उस क्षण कोई जवाब न देकर मानो कान्त का समर्थन किया। फिर एकाएक बोली, "माँजी ने आपसे कुछ कहा था क्या ?"

कान्त ने सब कुछ बता दिया और फिर मुस्कराकर पूछा, "तुम्हारा क्या विचार है ?"

"आप बताइये।"

"मैं ! लड़का मुझे नहीं, तुम्हे चाहिए।"

कमला हँस पड़ी, बोली, "नहीं, मुझे भी नही चाहिए। जरूरत अम्मा को है।" और फिर क्षणभर रुककर कहा, "मेरा तो मन नही करता।"

"मन नहीं करता तो मत लो।"

"पर अम्मा को कैसे मना करूँ ?"

"अम्मा को मना करने के बहुत से रास्ते हैं। पर मै पूछता हूँ, तुमने अपना मन तो अच्छी तरह टटोल लिया है। ऐसा तो नही कि कहीं चोर अन्दर छिपा बैठा हो।"

"मालूम तो नहीं होता।"

"बहुत सी बातें बिना मालूम हुए पनपती रहती हैं, कमला !"

"तो फिर क्या करूँ ?"

"कुछ दिन इस प्रश्न को मन मे घुमडने दो। मैं अम्माजी को समझा दूँगा।"

कमला का मुख कृतज्ञता से खिल उठा, पर वह कुछ कह पाती कि जीने में किसी के आने की आहट मिली। धर्मपाल था। कान्त को देखकर बोला, "आप यहाँ हैं। सब जगह ढूँढ फिरा हूँ।"

"क्यो रे ?"

"कल आपको हमारे घर आना है। एक सभा है।"

कान्त मुस्कराया, "सुन चुका हूँ। तुम्हारे बाबू हिन्दू-मुसलमानो को एक करना चाहते हैं।"

धर्मपाल भी मुस्कराया, बोला, "जी नहीं। वहाँ हिन्दू-मुसलमानों को शुद्ध किया जायेगा।"

सुनकर सब हँस पड़े। धर्मपाल फिर कमला की ओर मुड़कर

बोला, "और आप भी आइए।"

कान्त पूछ बैठा, "कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध भी है?"

"जीहाँ।"

"तभी। अच्छा, मैं आऊँगा पर कुछ देर से। दफ्तर जाना है।"

और वह चला गया। धर्मपाल बहुत व्यस्त था, वह भी नहीं रुका। अम्मा रसोई में लग गई और कमला चुपचाप कापी में दृष्टि गड़ाए दूर, बहुत दूर, भटक गई। उसे मास्टरजी की अनेक बातें याद आने लगीं। साथ ही उसे कुमार की स्मृति हो आई जो काम करता है परन्तु बोलता नहीं। उसने सोचा, क्या वह सचमुच इतना निस्पृह है, अथवा कुछ भुलाना चाहता है?

यह तर्क का आरम्भ था, पर तभी अम्माजी ने पुकार लिया, "कमला! बहू! रोटी तैयार है।"

कमला हठात् चौंककर उठी, "आई माँ!"

: ३ :

उस सभा में सब उसके चिर-परिचित मित्र थे। परन्तु वह एक व्यक्ति को नहीं पहचान पा रहा था। उसी का परिचय देते हुए कुमार ने कहा, "आप का नाम रियाज़ अहमद है। कांग्रेस समाजवादी पार्टी के सदस्य हैं। दो बार बड़े घर में राज्य के मेहमान रह चुके हैं। उर्दू के बड़े अच्छे शायर हैं।"

रियाज साहब एक बार फिर आदाब बजा लाये, कहा, "आपके बारे में सुन चुका हूँ। आप देश से प्रेम करते हैं परन्तु सरकारी नौकर हैं। मानवता में विश्वास करते हैं, परन्तु आर्यसमाजी हैं।" कहकर वह बड़े जोर से हँसा, "ताज्जुब है आप इतने समझदार हैं और फिर भी नौकरशाही के गुलाम हैं।"

कुमार ने कहा "गुलाम ! जनाब, स्वामी-भक्ति का आदर्श स्थापित कर रहे हैं।"

कान्त हँसता रहा, "जी हाँ, सीधा दफ्तर से आ रहा हूँ, और यहाँ से दफ्तर जाऊँगा।"

शेष लोगों में दो तो स्थानीय काँग्रेस कमेटी के मन्त्री थे। श्री बलवन्त और श्री देवदत्त। जेल हो आये थे। साधारण खाते-पीते घरों से सम्बन्ध रखते थे। बलवन्त का रुझान साम्यवाद की ओर था और देवदत्त गांधीवादी थे। तीसरे व्यक्ति नवीनचन्द्र इन्श्योरेन्स कम्पनी के एजेण्ट थे। वह प्रेमी जीव थे और उनका रुझान हिन्दू-सभा की ओर था। चौथे महानुभाव भी कभी हिन्दू-सभा में थे, परन्तु अब वह मुस्लिम कल्चर के प्रशंसक थे। लोगों की मान्यता थी कि वह कूटनीतिज्ञ हैं। उनका नाम पण्डित रामकिशोर था। सबसे अन्त मे आने वाले जमीअत के प्रचारक हबीब साहब थे।

पोशाक सदा की तरह मैल-खोरी, वही सलवटों-वाला काला कुरता, पाजामा और दुपल्ली टोपी। आकर सबको अदा से झुककर आदाब बजा लाये। कुछ बातचीत हुई और फिर वे गम्भीर मन्त्रणा में व्यस्त होगये। कुमार ने भूमिका बाँधी, कहा, "आम तौर पर सभाओं में वे बड़े लोग आते हैं जो धन और प्रतिष्ठा के कारण गद्दी के अधिकारी होते हैं। वे बातें करते हैं, प्रस्ताव करते हैं और फिर भूल जाते हैं। परन्तु मैं जानना चाहता हूँ क्या उनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता ? क्या हम जो कुछ मानते हैं उसे अपने कार्यों द्वारा सिद्ध नहीं कर सकते। क्या ये दंगे जो छूत की बीमारी की तरह फैलते जा रहे हैं रोके नहीं जा सकते ?"

जगदीश तत्परता से बोल उठा, "रोके क्यों नहीं जा सकते ?"

कान्त ने पूछा, "कैसे ?"

"मुसलमान अपने को भारतीय समझें।"

"अब क्या समझते हैं ?"

"अरबी।"

कान्त ने धीरे से कहा, "ठीक है, पर कभी सोचा आपने कि इसमें दोष किसका है ?"

"आप बता दीजिये।"

"हमारा है।"

"कैसे ?"

"सीधी-सी बात है जगदीशजी । हम उन्हे सदा अछूत समझते रहे है। उनसे इतनी घृणा करके हम यह आशा कैसे कर सकते हैं कि वे हम से प्रेम करें। इसी प्रेम के अभाव के कारण वे आज तक भारत को अपना देश नहीं समझ पाए हैं।

जगदीश ने तत्परता से उत्तर दिया, "आप दूसरा पक्ष क्यों नहीं देखते ? इस्लाम मिशनरी धर्म है। मिशनरी धर्म सदा आक्रमणकारी होता है। उससे सुलह होना···"

बात पूरी की रियाज ने, "उससे सुलह होना नामुमकिन है। ठीक है, पर मेरे दोस्त, आप इस सवाल को इस नजर से देखते ही क्यो है। मजहब तभी सामने आता है जब हमारे अन्दर कोई डर बना रहता है। मेरी समझ में हिन्दू-मुस्लिम झगड़े का कारण धर्म नहीं है। वह आर्थिक सवाल ज्यादा है। हिन्दू हमेशा सरमायादार रहे हैं और गरीब मुसलमान को हमेशा हिन्दू सरमायेदार से डर रहता है।"

हबीब साहब बोले, "मेरी समझ में तो आज के सभी हिन्दूसभाई, आर्य समाजी और कांग्रेसी हिन्दुस्तान में अपना राज्य देखना चाहते हैं। इसी प्रकार मुसलमान मुसलमानों की हुकूमत स्थापित करना चाहते हैं। मजहब और धर्म बैर का कारण नहीं है। कारण यह प्रतिस्पर्धा है।"

देवदत्त ने हबीब साहब का समर्थन किया, "बेशक आप ठीक कहते हैं। धर्म किसी से नफरत करना नहीं सिखाता। यह तो कुछ लोगो का स्वार्थ है, जो उन्हें लड़ाता रहता है।"

बलवन्त बोले, "मैं रियाज साहब की बात ठीक समझता हूँ। प्रश्न

आर्थिक है। उसे सुलझाने के लिए मज़हब को बिल्कुल भुला देना होगा।"

जगदीश ने शीघ्रता से कहा, "जो नहीं, यह असम्भव है।"

बलवन्त, "तब समझौते की आशा व्यर्थ है।"

देवदत्त, "धर्म को आप इतना बुरा क्यों समझते हैं ?"

बलवन्त, "क्योंकि उसका आधार डर है और डर के रहते शांति की कल्पना स्वप्न के समान है।"

वातावरण मे तेजी आने लगी। कुमार ने कान्त की ओर देखा। कान्त बोला, "देखिए, हम कुछ गलत रास्ते पर चल पड़े हैं। धर्म को मिटाने की बात व्यर्थ है। वास्तव में कौन धार्मिक है यह कहना बड़ा कठिन है। परन्तु 'धर्म खतरे में है' यह पुकार लगाने वाले अनेक हैं। वह धर्म को प्यार करते हैं, ऐसी बात नही है, परन्तु ऐसा कहने से उनके स्वार्थ की सिद्धि होती है, यह निश्चित है।"

रियाज़—"बेशक, बेशक, आप ठीक कहते हैं।"

हबीब साहब—"मजहब को कोई मिटा नहीं सकता। बात असल मे यह है कि हम मजहब को जानते नही।"

देवदत्त—"जी हाँ, सब धर्मों के बुनियादी उसूल एक हैं। कोई कारण नही कि हम प्रेम से न रहें।"

कान्त ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "बेशक कोई कारण नही कि आदमी प्रेम से न रह सके। धर्म उसमें बाधक नही है। उसके लिए तो एक दूसरे को समझने की आवश्यकता है। गौर से देखें तो सवाल के कई पहलू हैं—धार्मिक, आर्थिक और जातीय। कभी वह धार्मिक ज्यादा था, आज आर्थिक और जातीय ज्यादा है। पहली बात यह है कि हमारे दिलों मे मिल-कर रहने की इच्छा हो। दूसरे हम एक दूसरे का दृष्टिकोण ईमानदारी से समझें। तीसरी बात सबसे महत्त्वपूर्ण है अर्थात् हम अपनी समझ को अमली रूप दें। मुसलमान आज विद्या और धन दोनो मे हिन्दुओ से पीछे हैं, यह तो हमें मानना ही होगा। यह मानकर यह आवश्यक हो जाता है कि हम उनकी

बातें सुनें और उन्हें पूरी करने की कोशिश करें। यह कहना कि हिन्दू-मुसलमान एक हैं, ऊपर से अच्छा लगकर भी मैं समझता हूँ गलत है। एक तो हिन्दू भी नहीं हैं, न सारे मुसलमान एक हैं इसलिए मुसलमानों की संस्कृति और सभ्यता के जो विशेष चिन्ह हैं, हमें उनका पार्थक्य फिलहाल मान ही लेना चाहिए।"

कमरे में सन्नाटा छा गया। रियाज और हबीब अचरज से कान्त को देखते हो रह गये। कुमार और शर्मा का मन खिल उठा। बलवन्त ने धीरे से कहा, "मिस्टर कान्त! तुम्हारी बात में सच्चाई है।"

देवदत्त ने आपत्ति की—"मिस्टर कान्त! पार्थक्य मानकर तो हम कहीं भी नहीं रहेंगे।"

"बेशक," जगदीश बोला, "यह तो विनाश का कारण है। पाकिस्तान का प्रश्न इसी को लेकर आगे आ रहा है।"

शर्मा ने जवाब दिया—"आ नहीं रहा, आयेगा। आप उन्हें जितना दबायेंगे, वे आपसे उतना ही दूर हटेंगे। मुझे डर है कि पाकिस्तान जल्द ही दस करोड़ मुसलमानों की माँग बन जायेगा।"

हबीब साहब मुस्कराये, बोले, "निशिकान्त साहब ने बहुत लाजवाब बात कही है। मै पाकिस्तान का हामी नहीं हूँ, पर मैं अपने दोस्त शर्मा की राय से सहमत हूँ। कहीं यह भूत हमारे सिर पर चढ़कर न नाचने लगे।"

रियाज ने कहा—"मुझे यहाँ आने की खुशी है। मै धर्म वर्म नहीं जानता परन्तु जातियों का सवाल जरूर गौर करने लायक है। हिन्दू-मुसलमानों में एकता जरूरी है। अंग्रेज उन्हीं की फूट का फायदा उठाकर राज्य कर रहे हैं। हमें मुस्लिम जनता में जाकर काम करना चाहिए और आजादी का युद्ध छेड़ देना चाहिए।"

जगदीश तनिक जोर से बोला, "पर मुस्लिम जनता आपका साथ नहीं देगी।

"जरूर देगी," रियाज ने जवाब दिया, "मगर शर्त एक है। उनका साथ देने के लिए आपको हिन्दू सरमायादारों का विरोध करना होगा।"

बलवन्त ने उसका उन्मुक्त समर्थन किया। बोला, "हाँ, हम उनका विरोध करेंगे।"

"तब आपकी जीत है", रियाज ने उसी तरह कहा।

शर्मा ने बात का रुख पलटना चाहा, बोला, "और यह छूतछात भी मिटनी चाहिए।"

रियाज ने लापरवाही से कहा, "अरे भई, यह तो हो रहा है। वक्त सब कुछ करा लेता है।"

और फिर हबीब साहब की ओर देखते हुए बोला, "फरक तो इनके और मेरे नजरिये में भी है। ये मज़हब के नाम पर एकता चाहते हैं और मैं जिन्दगी के नाम पर चाहता हूँ। पर जैसा मिस्टर निशिकान्त ने अभी-अभी कहा था, पहिली बात एकता चाहने की है और दूसरी एक दूसरे के नजरिये को समझने की। इसके अलावा सबसे बड़ी बात है कि हम ईमानदारी से काम करें।"

कुमार ने कहा, "मैं काम चाहता हूँ।"

और तभी धर्मपाल ने आकर नाश्ते की सूचना दी।

कुमार और कान्त बाहर चले गये और शेष लोग समस्या को भूलकर मन के लड्डू फोड़ने लगे। रियाज ने जगदीश की ओर शरारत से देखा; पूछा, "क्यों जगदीश, क्या सोच रहे हो?"

जगदीश ने कहा, "सोच रहा हूँ कि आप लोगों में से खतरे को सबसे अधिक कौन प्रेम करता है?"

"क्यों?"

"क्यों क्या, मैं ऐसे साहसी आदमियों से प्रेम करता हूँ।"

"कैसे?"

"उनके जीवन का बीमा करके।"

समझकर सब अट्टहास कर उठे। रियाज ने खिलखिलाकर कहा, "तो आप बीमा कम्पनी के दूत हैं?"

"जी नहीं, अपने पेट का हूँ।"

कहकहा और भी तेज हुआ, परन्तु सहसा रियाज ने गम्भीर होकर कहा, "पेट, जनाब यही पेट समस्याओं की जड़ है। इसी के लिए इंसान पाप-पुण्य के पचड़े में पड़ा है।"

शर्मा ने बात काटकर कहा, "रियाज साहब, आप फिर गम्भीर राजनीति की चर्चा करने लगे। अब तो पेट भर लेने पर ही उस पर बातें करेंगे।"

तभी दरवाजा खुला और कई प्लेटें लिये कान्त तथा कुमार ने वहाँ प्रवेश किया। शर्मा ने आगे बढ़कर कुमार से प्लेट ले ली; कहा, "ब्राह्मण का आशीर्वाद है, तुम सदा सुखी रहो।"

रियाज बोला, "बहुत खूब! कुमार साहब आप तो बस..."

हबीब मुस्कुराये, "भई वाकई में आप तो बस..."

बलवन्त बैठता-बैठता बोला, "जी हाँ, बस..."

कुमार ने हँसकर कहा, "तो मैं बस हूँ यानी..."

"रखो भाई", जगदीश ने हँसते-हँसते प्लेट अपने आगे सरमाई और कहा, "तुम 'बस' का मतलब नहीं समझते, कुमार बाबू। यह लोग पूछ रहे हैं कि क्या बस इतना ही है?"

अट्टहास फिर गूँजा। हबीब ने किसी तरह कहा, "लाहौल विला कुव्वत आप तो जगदीश साहब बस..."

"फिर वही बस" शर्मा ने पुकारा, "आर्डर! मैं आज्ञा देता हूँ कि यह समय हँसने और बातें करने का नहीं है। हमें अपनी मानताओं को कार्य-रूप में परिणत करना चाहिए। हमें अलग प्लेटों की जरूरत नहीं है।"

और कहते-कहते उन्होंने हबीब, रियाज और अपनी प्लेट का सामान एक में मिला लिया। फिर देवदत्त की ओर बढ़े तो उसने रोककर कहा, "क्षमा करिये।"

"आप बलवन्त जी?"

"मैं!"

"मिस्टर जगदीश ?"

"सोच रहा हूँ ।"

"सोच लीजिये ।"

कुमार चुपचाप रियाज के पास जा बैठा । कान्त बलवन्त की ओर था। अनायास ही वे दो कैम्पों में बँट गये । उस समय क्षण भर के लिए लगा जैसे वर्षा के बाद फिर उमस हो चली हो । परन्तु तभी हबीब साहब बोले, "खाने-पीने का यह परहेज आप लोगों में ही नहीं, हम लोगों में भी है । सैयद लोग गैर मुसलमानों के हाथ का छुआ खाना नहीं खाते ।"

अचरज से देवदत्त ने कहा, "अच्छा जी ।"

जैसे बादल फिर उमड़े । बलवन्त बोला, "आग दोनों ओर बराबर लगी हुई है ।"

"जी हाँ," रियाज ने कहा, "जरूरत उसे बुझाने की है ।"

"और मै समझता हूँ", शर्मा ने दृढ़ता से कहा, "इस ओर हिन्दुओं को आगे बढ़ना चाहिए ।"

जगदीश बोला, "भेद मिटने चाहिएँ यह मैं मानता हूँ पर भेद से अधिक भेद के कारणों का मिटना आवश्यक है । खान-पान का भेद आज पहले जैसा नही है परन्तु पहले जो मुहब्बत हम लोगों में थी वह आज कहाँ है ? आज तो राजनीति का युग है.. "

बात काटकर शर्मा ने कहा, "राजनीति का युग तो सदा रहता है परन्तु प्रेम का कारण सामाजिक समानता है ! आप जब तक मुसलमानों के साथ खान-पान और विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं करेंगे तब तक आपका कल्याण नहीं है ।"

बात कुछ कठोरता के साथ कही गई थी । जगदीश ने उसी तलखी से जवाब दिया—"आप मुसलमान को अपनी लड़की दे सकते हैं, वह उसे दौड़कर स्वीकार करेगा, परन्तु उससे अपने लिए लड़की माँगिये तो..."

शर्मा और भी क्रुद्ध हुआ, "आप स्वीकार करेंगे ।"

"वे दें तो।"

"मैं कहता हूँ क्या आप और आपका समाज उसे स्वीकार करने को तैयार है?"

यह सभा की समाप्ति की सूचना थी। उसके बाद फिर उनके दिल नहीं खुले। लौटते समय देवदत्त ने कहा, "मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ। परन्तु शर्मा का व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगा।"

जगदीश बोला, "बनता था।"

"और कुमार वैसे तो ईमानदार है परन्तु मुसलमानो का अनुचित पक्षपात करता है।"

और फिर धीरे से कहा, "आज तो कान्त ने भी कुछ ऐसी ही बातें कही हैं। जैसे सब दोष हिन्दुओं का ही है।"

जगदीश मुस्कराया, "कान्त विद्वान् है और विद्वान् लोग वास्तविकता से दूर रहते हैं।"

कुछ भी हो कान्त के यह लिए अवसर आत्म-संघर्ष का अवसर बन गया वह जैसे ही घर लौटा पडितजी ने सदा की भाँति पास के जीने से सिर निकाला और मुस्कराकर पूछा, "कहो कान्त बाबू! हिन्दू मुसलमानों को एक कर आये?" कान्त मुस्कराकर रह गया।

"देखो कान्त", पंडित मेलाराम ने सदा की भाँति कहना शुरू किया, "तुम लोग अपने को बड़ा विद्वान समझते हो। पर क्या कहूँ, भगवान मेरा जाने असलियत को बिल्कुल नहीं समझते। मैं पूछता हूँ क्या तुम समझते हो कि तुम उनमें मेल करा सकते हो? कभी नहीं हिन्दू लोग पहले अपने में मेल तो कर लें। भगवान मेरा जाने हम लोग अछूतों को किसी बुरी तरह दुरदुराते हैं। हम जब तक उनको नही अपनाते तब तक मुसलमानो की बात करना अपने को धोखा देना है। अपना घर ठीक करो। हिन्दुओं को एक स्तर पर लाओ। उनके भीतर का डर निकालो। भगवान् मेरा जाने, कान्त बाबू! हम डरते हैं तभी पाप करते हैं। सुधार उधार सभी ढोंग है। एक बार तुम्हें क्या

बताऊँ, दो-तीन भंगियों को लेकर मैं समाज मंदिर में गया, पूछा, "क्या आप इनके हाथ का खा सकते हैं ?" सुनकर सब बगलें झाँकने लगे। सो कहने और करने में बड़ा अन्तर है। हाँ, वे तुम्हारे मित्र हैं...क्या नाम है उनका...?"

"जी, कुमार।"

"हाँ, कुमार। उन्होंने पहले भंगी को नौकर रखा था। अब भी एक शुद्ध किया हुआ मुसलमान उनकी रोटी बनाता है। शुद्धि वुद्धि मेरी समझ में नहीं आती। राम का नाम लिया और सब शुद्ध पर फिर भी यह एक बड़ा काम है। सच्ची सेवा है। जब तक सारा समाज इसी तरह नहीं करता तब तक देश का उद्धार नहीं हो सकता।" कान्त ने सहसा पंडितजी की ओर देखा आज वे उसे बहुत ऊँचे लगे। उसने कहा, "पंडितजी, आप सच कहते हैं।"

पंडितजी मुस्कराये, "भगवान् मेरा जाने ..."

तभी दफ्तर से गनेशी भागा हुआ आया, बोला, "बाबूजी, जल्दी चलो, साहब आ गया है।"

"चलता हूँ," कहकर कान्त ने पंडितजी की ओर देखा, बोला, "क्षमा करिये, मुझे अभी जाना है।" और वह तेजी से नीचे उतर गया।

दफ्तर जाने पर देखा—वहाँ भी यही समस्या सामने है। हिन्दू-मुसलमानों की नियुक्ति के बारे में धारा सभा के कुछ प्रश्न आ गये थे। उन्हीं का उत्तर देना था। उनमें यह आक्षेप था कि इस महकमे में मुसलमानों के साथ अन्याय हो रहा है। साहब ने बुलाकर उससे पूछा, "तुम जानते हो ये खबर बाहर कैसे जाती हैं ?"

"जी नहीं।"

"तुम्हारा सहयोगी कैसा है ?"

"जी वह काम वह खूब करता है परन्तु आप जानते हैं ..."

वाक्य पूरा किया साहब ने, "वह मुसलमान है। क्या तुम समझते हो कि उसी ने ये खबरें धारा-सभा के सदस्यों को भेजी हैं।"

"कह नहीं सकता। पर वैसे हो सकता है।"

"हूँ तो उन सबको बुला भेजो। मैं जानना चाहता हूँकि शरारती कौन है!"

कान्त ने बाहर आकर गनेशी को बाबू लोगों को बुलाने के लिए भेजा और स्वयं फाइल ढूँढने लगा। ढूँढ चुका तो उसने साहब को बताया, "जब से सरकार ने नई स्कीम चलाई है तब से हम उसी के अनुसार काम कर रहे हैं। उससे पहले जो कुछ था उसको हमने नहीं छेड़ा है।"

साहब बोला, "और वे चाहते हैं कि पहले लोगों को भी निकालकर नयी स्कीम के अनुसार भरती की जाये।"

शायद "पर यह कैसे हो सकता है?"

साहब ने कहा, "नहीं, यह नह हो सकता।" नई नियुक्तियों में साम्प्रदायिक अनुपात ठीक है ना?

"जीहाँ, वह ठीक है।"

"अच्छा, जवाब लिख दो।"

तभी गनेशी ने आकर कहा, "हुजूर, बाबू लोग आगये।"

"बुला लाओ।"

सबसे पहले झुके कंधे वाला कान्त का सहयोगी आया, फिर आये मजहर हुसेन मोटे और गोरे। पतलून ने उनके पेट को और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया था।

सबसे आखिर में आये शाह साहब। चेहरा दागो से भरा हुआ था और आँखें बडी-बडी थीं। साहब ने सबको देखा, मुस्कराये। फिर धारा-सभा के प्रश्नों वाला पत्र उठाकर उन्हें दिया। कहा, "पढ़ो।"

बारी बारी सबने उसे पढ़ा। कान्त का सहयोगी मुस्कराया। मजहर चुप रहा और शाह साहब बोले, "बड़े ताज्जुब की बात है।"

साहब ने कहा, "है तो।"

"मामूली बात वहाँ तक पहुँच गई।"

"जी हाँ, अब जानना यह है कि ऐसी खबर कौन भेजता है।"

बड़े बाबू जो अब तक चुपचाप लिख रहे थे। बोले, "बात साफ है।

भेजने वाला कोई हमी में से है।"

तीनों ने लगभग एक साथ उत्तर दिया, "हुजूर, हमने तो नहीं भेजी है। हमारा कोई वास्ता नहीं है।"

साहब कान्त की ओर मुड़े, "तुम क्या कहते हो, मिस्टर कान्त ?"

"जी, मेरे भेजने का सवाल ही नहीं उठता।"

"फिर किसने भेजी है ?" साहब मुस्कराया, "बड़े बाबू ने।"

बड़े बाबू हँसे, "जीहाँ, जब किसी ने नहीं भेजी तो मैंने ही भेजी है।"

साहब भी हँसे। बोले, "तुम भी मना कर सकते हो। फिर भेजने वाला मैं रह जाता हूँ।"

सब एक साथ बोले, "जी नहीं, आप क्यों भेजेंगे। यह कैसे हो सकता है ?"

साहब सहसा गम्भीर हो उठे। कहा, "खबर गयी है इसका सबूत आप के सामने है और यह भी सच है कि खबर दफ्तर से गयी है। दफ्तर में आप लोग हैं।"

"जी, मैंने नहीं भेजी," कान्त का सहयोगी बोला।

"मेरा कोई ताल्लुक ही नहीं," शाह साहब ने कहा।

"और मेरा भी," मोटे बाबू बोले।

साहब को क्रोध आ गया। उन्होंने तीव्रता से कहा, "किसी का कोई ताल्लुक नहीं है, परन्तु फिर भी बातें उन तक पहुँच गयी हैं। यह कैसे सम्भव हुआ ?"

"जीहाँ," शाह साहब बोले, "किसी ने तो भेजी हैं।"

"और वह तुम हो, तुम और तुम्हारे साथी......।"

"जी...," शाह साहब ने कहना चाहा।

"चुप रहो......।"

कान्त का सहयोगी आगे बढ़ा, "आप...।"

"चुप रहो। मैं सब कुछ जानता हूँ। इसलिए सावधान करता हूँ।

आगे ऐसा हुआ तो मैं जानता हूँ कि तुम लोगों से कैसा बर्ताव किया जाना चाहिए। अब तुम जा सकते हो।"

बिना कुछ कहे वे मुड़े। वे उत्तेजित हो रहे थे पर विवश थे। साहब भी विवश थे। मन मारकर वे फिर प्रश्नों का उत्तर लिखने लगे। लिख चुके तो कान्त की दृष्टि घड़ी पर पहुँची। आठ बज रहे थे। उसे ध्यान आया—कमला घर पर उसकी राह देखती बैठी होगी।

और सचमुच कमला व्यग्रता से कान्त के आने की राह देख रही थी। जैसे ही वह घर पहुँचा माँ ने कहा, "बड़ी देर कर दी, बेटा। इसे तो घड़ी-घड़ी भारी हो रही थी।"

कमला लजा गयी, कहा, "माँजी मैं तो जब कहो आ सकती हूँ पर आप जानती हैं कि अम्माजी अकेली होंगी, देर होने पर वे बुरा मानेंगी।"

"हाँ, सो तो है, बेटी! अच्छा कान्त! जल्दी से रोटी खाले फिर इसे छोड़ आना।"

कान्त ने कहा, "आकर खा लूँगा। आओ कमला, चलें।"

कमला तैयार थी। शीघ्रता से उठी और माँ के पैर छूकर बोली, "वहाँ खाना बन गया होगा तो मास्टरजी वहीं खा लेंगे।"

"माँ मुस्कराकर रह गयी। मार्ग में कमला ने बताया, "तुम्हारी माताजी ने बहुत कहने पर भी मुझे खाना नहीं बनाने दिया था।"

"क्या कहा?"

कहने लगी, "बेटी, मैं तो तुम लोगों के हाथ का नहीं खाती।"

मैंने कारण पूछा तो बोली, "अब क्या बताऊँ। सदा ही ऐसा देखा-सुना है। मन नहीं मानता।"

कान्त धीरे से बोला, "बात यह है कमला, हम लोग संस्कारों के गुलाम हैं और संस्कारों के गुलाम सोचने में बिल्कुल असमर्थ होते हैं।"

"पर आप तो ऐसा नहीं मानते।"

कान्त मुस्कराया, "बात एक यही नहीं है। एक बात में जितना दोष

माँ का है, दूसरी बहुत सी बातों में मैं और तुम उनसे भी अधिक दोषी हैं।"

कमला तब इस गम्भीर बहस में नहीं पड़ना चाहती थी, इसलिए बोली "आप ठीक कहते हैं। संस्कार की गुलामी ऐसी ही होती है पर आप तो उससे मुक्ति पाने के लिए विशेष आतुर हैं।" कहकर कमला मुस्करायी। कान्त भी हँस पड़ा, "तुमने कैसे जाना ?"

"माँ कह रही थी।"

"माँ कह रही थी कि मैं विवाह नहीं कर रहा हूँ।"

अचरज से कमला बोली; "तुम कैसे जानते हो ?"

"यह बात वह हर किसी से कहती है।"

"पर तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते ?"

"विवाह करना क्या जरूरी है ?"

"सभी करते हैं।"

"तो मैं भी कर लूँ। मैं भी औरों की तरह संस्कारों को चुपचाप स्वीकार कर लूँ।"

कमला लजा गई। कान्त ने उसे देखकर कहा, "कमला ! मैं विवाह करने से मना नहीं करता पर ऐसा विवाह करना चाहता हूँ जैसा आज तक न हुआ हो।"

"अर्थात्।"

"अर्थात् मैं मुसलमान लड़की से विवाह करना चाहता हूँ। कम से कम वह अछूत जाति की अवश्य हो।"

कमला ने एक बार कान्त को देखा, फिर बोली, "इतना साहस है आप में ! माँ से लड़ सकेंगे ?"

कान्त गम्भीरता से बोला, "माँ से लड़ूँगा ऐसी बात तो मैं नहीं सोच सकता परन्तु मरने से पहले मैं उन्हें इस योग्य अवश्य बना देना चाहता हूँ कि वे तुम्हारे हाथ की रोटी खा सकें।"

क्षण के छोटे से भाग में कमला का रंग सहसा धूमिल हो उठा। पर

तुरन्त ही मुस्कराकर उसने कहा, "मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूँगी।"

× × ×

इसी रात कान्त ने अपनी डायरी में लिखा—मनुष्य के अन्तर में न जाने क्या-क्या छिपा रहता है। वह स्वयं उसे नहीं जानता। परन्तु एक समय आता है जब अनायास ही वह विचार जेबुन्निसा के शरीर की तरह हजारों परदों को चीर कर प्रगट हो जाता है। यह ठीक भी है। जो अन्दर है वह बाहर आना ही चाहिए। यह सच है कि मैं कमला से विवाह करना चाहता हूँ। वह निम्न वर्ग की है, विधवा है, सुशिक्षिता है..."

कलम ठिठकी। मन में उठा—और सुन्दर भी है। उसने लिखा—और वह सुन्दर भी है। सौंदर्य कला है। कला सदा प्रेम है। मैं सौन्दर्य को प्रेम करता हूं। कुरूपता की उपासना उचित नहीं है। गुण-आत्मा और शरीर दोनों का आवश्यक है। यह बात दूसरी है कि आत्मा का गुण शरीर के गुण से ऊँचा है। जो सुन्दर है और बुद्धिमती भी, वह आदर्श है। कमला आदर्श है। मैं उससे विवाह करूँगा...।"

कलम फिर ठिठकी। उसने लिखा..... हाँ, माँ का प्रश्न है। वह इस विवाह की स्वीकृति नहीं देगी। वह कमला की प्रशंसक है, उससे प्रेम भी करती है। परन्तु उसे अपना नहीं बना सकती। यह उसकी कायरता है, परन्तु इसी कारण मैं कायर नहीं बनूँगा। मैं माँ को प्रेम करता हूँ, सदा करता रहूंगा। मैं कमला को भी प्रेम करता हूँ और करता रहूँगा। दुनिया कहती है कि दोनों प्रेम एक साथ नहीं हो सकते। मैं कहता हूँ, हो सकते हैं। किसी दिन कमला से बातें करूँगा। वह सब कुछ जानती है। वह नारी है। नारी-बुद्धि बड़ी भावुक होती है। ऊपर से वह जितनी शांत है अन्तर में वह उतनी ही सङ्घर्षमयी है।

उसने डायरी बन्द कर दी। वह शान्त था और दृढ़ भी। वह उस रात गहरी नींद सोया।

और सवेरे उठकर उसने एक कहानी शुरू की। लेकिन अभी पात्र जमे ही

थे कि गनेशी ने आवाज दी, "बाबूजी !"

मानो स्वप्न भंग हो गया।

चिल्लाकर उसने पूछा, "क्या है ?"

"आपको दफ्तर बुलाया है।"

"आजायेंगे।"

"अभी बुलाया है।"

कान्त क्रुद्ध हो उठा, "अभी नहीं आता।"

गनेशी जो अब तक आराम से खाट पर बैठ चुका था, बोला, "बाबूजी, आप आराम से चलिये। मैंने कह दिया था कि कान्त बाबू साढ़े नौ बजे आवेंगे।"

कान्त मुस्करा उठा, "कौन कौन आया है ?"

"बस बड़े बाबू आये हैं। उनका बस चले तो रात को भी वहीं रहें। सुना है कुछ नमाज के चबूतरे का झगड़ा है।"

"कौन कहता था ?"

"सबेरे डिप्टी हुसेन बक्स के घर जिक्र था। मुझे देखकर वे चुप हो गये। इतना ही सुना, 'हम मस्जिद बनाकर रहेंगे'।"

"बना लीं।"

"आखिर क्या बात है ? बड़े तेज हो रहे थे। कई बार बाबू दयाराम का नाम लिया था।"

"सच !"

"कह रहे थे कि बड़े बाबू बड़े दुष्ट हैं। किसी तरह उनका पत्ता कटना चाहिए।"

फिर एक क्षण रुककर बोला, "और कान्त बाबू, अब ये जाट भी बड़ा शोर मचाने लगे हैं। कहे हैं कि बनिये ब्राह्मणों को निकालकर सब नौकरियाँ हमें दो।"

"और बनिये-ब्राह्मण चूल्हे में जायँ।"

कान्त ने अब किसी बात का जवाब नहीं दिया। लेकिन जिस समय वे दफ्तर पहुँचे तो बड़े बाबू व्यग्रता से उसकी राह देख रहे थे। मुस्कराकर बोले, "लो मैंने सब बातों का जवाब लिख दिया है। तुम तनिक इसे पढ़ डालो।"

कान्त ने पत्र लेते हुए कहा, "आखिर, वे क्या चाहते हैं?"

बड़े बाबू पान खाते हुए बोले, "अजी बदमाश हैं। सरकारी जमीन पर मस्जिद बनाना चाहते थे। तुम जानते हो दयाराम मजबूत आदमी है। वह नहीं माना। जो चबूतरा उन्होंने बनवाया था उसे उसने गिरवा दिया। अब वे शोर मचाते हैं कि हिन्दुओं ने हमारी मस्जिद गिरा दी है।"

सुनकर कान्त को बड़ा बुरा लगा पर जब तक वह कुछ सोचे साहब ने पुकार लिया। बोला, "सब कुछ ठीक है। तुम पत्र लिखो।"

कान्त लिखने लगा। पहला पत्र डिप्टी कमिश्नर के नाम था।

महोदय,

आपको पत्र ता० अ/ट/ २१३२० ता० १९-४-३८ के उत्तर में निवेदन है कि यह मामला बिल्कुल स्पष्ट है।

सरकार ने सन् उन्तीस-तीस में पड़ताल की थी। उस समय जो चबूतरे अधिकृत माने गये थे उनकी पूरी सूची हमारे पास है। उस सूची में झगड़े वाला चबूतरा नहीं है। आपको जानकर अचरज होगा कि पड़ताल करने वाला अधिकारी स्वयं मुसलमान था। उसके बाद जो चबूतरे बने हैं वे सब अनधिकृत हैं और उन्हें गिरा देने की आज्ञा स्पष्ट है। ऐसी अवस्था में मेरे ओवरसीयर ने चबूतरा गिराकर कोई अनुचित काम नहीं किया।

एक बात और भी आश्चर्य-जनक है। यह चबूतरा गत वर्ष गिराया गया था परन्तु आन्दोलन किया जा रहा है अब साल भर बाद। इसका कारण भी स्पष्ट है। उस समय उस विभाग में सभी अफसर हिन्दू थे। आज वहाँ मुसलमान हैं। वे हिन्दुओं को—मैं भी हिन्दू हूँ—बदनाम करना चाहते हैं। कृपा कर राज्य-विभाग को उचित उत्तर दे दीजिये। सूची साथ भेज रहा हूँ।

मैं हूँ

आपका आज्ञाकारी सेवक

दूसरा पत्र अंजुमने इस्लामिया के मन्त्री के नाम था—

प्रिय शेख साहब,

आपका ४ अप्रैल, ३८ का पत्र मिला। मैंने आपकी बातों को ध्यानपूर्वक पढ़ा है और उनके बारे में छानबीन भी की है। मैं सभी सम्बन्धित पत्रों की प्रतिलिपि भेज रहा हूँ। उनसे आपको पता लगेगा कि मेरे सहकारियों ने कोई विद्वेषपूर्ण या अनुचित कार्य नहीं किया है।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे मुसलमानों से कोई द्वेष नहीं है। उनमें अनेक मेरे प्यारे मित्र हैं। मैं उनकी कदर करता हूँ। मै हिन्दू हूँ, परन्तु उससे पहले मनुष्य हूँ और इसी विश्वास के अनुसार मेरे जीवन की गति-विधि संचालित होती है।

मुझे दुःख है कि मैं इस केस में कुछ न कर सकूँगा, परन्तु यदि आप कहीं और मस्जिद बनाना चाहें तो मैं सहर्ष आपकी मदद करूँगा और स्वयं भी यथाशक्ति चन्दा दूँगा।

मुझे आशा है आप मेरी परिस्थितियो को ठीक-ठीक समझने की कोशिश करेंगे।

आपका सच्चा

....

गवर्नमेण्ट को जो विस्तृत पत्र लिखा गया था उसके अन्त में चेतावनी दी गई थी—"मुझे डर है कि यह बात विकराल रूप धारण करती जा रही है। जनता में उत्तेजना है। मुस्लिम नेता जिनमें अवसरप्राप्त सरकारी नौकर भी हैं, उसे भड़का रहे हैं। अगर उचित प्रबंध नहीं किया गया तो दंगा हो जाने का भय है।" पत्र लिखाकर साहब ने कहा, "देखो कान्त, ये पत्र गुप्त हैं।"

"जी, मैं जानता हूँ।"

"ठीक है। तुम मशीन यहीं लाकर टाइप कर सकते हो।"

कान्त उठा और फिर कुछ देर बाद वह अपने काम में व्यस्त हो गया। जब वे पत्र पूरे हुए तो पाँच बज चुके थे।

बदनसिंह ने पुकार कर कहा, "क्या सोचा है तुमने? दफ्तर खाली हो चुका है।"

उसने सब पत्र बक्स में रखकर ताला लगा दिया और फिर बाहर आकर देखा कि सचमुच दफ्तर में सन्नाटा छा रहा है। केवल बड़े बाबू सदा की भाँति सिर हिलाते हुए लिख रहे हैं। उन्होंने कान्त को जाते हुए देखा और पुकारा, "जरा ठहरो।"

वह मुड़ा। बोला, "मैं बहुत थक गया हूँ। अब नहीं रुक सकूँगा।"

जैसा कि अक्सर होता था यह युद्ध की चुनौती थी पर अचरज उस दिन बड़े बाबू मुस्कराये; कहा, "तुम जा सकते हो।"

मार्ग में जाटों की बातें चल पड़ी। बदनसिंह बोला, "चौ० छोटूराम के कारनामे सुनकर मेरा रक्त खौल उठता है परन्तु मैं उनको कोई दोष नहीं दे सकता। दोषी वे लोग हैं जिन्होंने छोटूराम को जन्म दिया।

सहसा कान्त हँस पड़ा, "जन्म तो माँ-बाप ने दिया है।"

बदनसिंह बोला, "माँ-बाप ने जिस छोटूराम को जन्म दिया था वह मात्र-मनुष्य था। कुछ लोगों ने अन्याय से उसका गला घोटकर मार डाला। उसके शव में से आज का छोटूराम जन्मा है। उसी को लोग घृणा, द्वेष और प्रतिहिंसा की मूर्ति कहते हैं।"

कान्त ने अचरज से अपने साथी की बातें सुनीं। वह इस कड़वे सत्य को अस्वीकार नही कर सका, परन्तु उसका घर आ गया था और वह बेहद थक रहा था। उसने हाथ जोड़कर बदनसिंह को नमस्कार किया और घर की ओर मुड़ गया। वहाँ पहुँचकर देखा—कुमार और हबीब साहब बैठक में बैठे हैं। मुस्कराकर उन लोगों ने कान्त का स्वागत किया।

हबीब साहब बोले, "बड़ी देर कर देते हो।"

कुमार हँसा, "इन्होंने अपना जीवन सरकार के लिए अर्पित कर दिया है।"

कान्त भी हँस पड़ा और बिना कुछ कहे कपड़े बदलने लगा। बदल चुका तो पुकारकर माँ से खाना भेजने को कहा। जब वह आ गया तो खाते-खाते

बोला, "कहिए हबीब साहब, आज आपका कैसे आना हुआ ?"

"एक विशेष काम से आया हूँ। सुना है कि तुम्हारे फार्म पर नमाज के चबूतरों को लेकर कुछ झगड़ा चल पड़ा है।"

बात काटकर किंचित अचरज से कान्त ने पूछा, "आपको क्या पता ?"

"आप पते की बात कहते हैं, उधर सत्याग्रह की तैयारी हो चुकी है।"

मुँह का ग्रास मुँह में रह गया, बोला, "सच !!"

"जी कमेटी बन चुकी है। चन्दा हो रहा है। सब हाली तथा चरवाहे हुक्म की बाट जोह रहे हैं।"

"पर वह बात तो बड़ी सीधी है।"

कुमार ने पूछा, "चबूतरा गिराया गया है, यह बात तो ठीक है।"

"हाँ।"

"तब आप सीधी बात कैसे कह सकते हैं। हिन्दुओं में शिव-मंदिर तथा मुसलमानों में मस्जिद जिस स्थान पर एक बार बन जाते हैं, फिर उस स्थान से स्वयं विधाता भी उन्हे नहीं हटा सकता।"

"सुनिये तो", कान्त ने कहा, "कहानी इस प्रकार है। सन् तीस में राज्य की ओर से भूमि और भवनों की पड़ताल की गई थी। उस समय जितने चबूतरे थे, उनको राज्य ने स्वीकार कर लिया था। और साथ ही यह निर्णय किया था कि भविष्य में कोई और चबूतरा राज्य की भूमि पर नहीं बन सकेगा।"

हबीब साहब ने टोककर पूछा, "माफ कीजिए, मैं जानना चाहूँगा कि क्या वे चबूतरे मुसलमानों के लिए काफी थे ?"

"जी हाँ। पर प्रश्न यह नहीं है। हुआ यह, न जाने कब कुछ लोगों ने कुछ और चबूतरे बना लिये। संभवतः वे लोग राज्य के आदेश से परिचित नही थे। गत वर्ष जब जाँच करने पर उनका पता लगा तो वहाँ के स्थानीय हिन्दू अधिकारी ने अपने मुस्लिम आफीसर से कहकर उन्हें गिरवा दिया।

बात समाप्त हो गई। किसी मुसलमान ने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। लेकिन अब जब हिन्दू अधिकारी के स्थान पर मुस्लिम अधिकारी नियुक्त होकर आया है तो अचानक यह प्रश्न पैदा हो गया है। स्पष्ट है कि जानबूझ कर ऐसा किया गया है।"

कुमार बोला, "निसंदेह ! बात कुछ ऐसी ही जान पड़ती है।"

"मुझे अफसोस है ये लोग ऐसा करते हैं", हबीब साहब ने कहा, "मैं उनसे अभी जाकर बात करता हूँ। क्यो कुमार साहब ?"

"जीहाँ, अभी चलने पर वे सब मिल सकते हैं।"

वे उठे। हबीब साहब ने कान्त की ओर मुड़कर कहा. "अरे भाई कभी हमारे गरीबखाने पर भी तशरीफ लाओ। हिन्दी का मुझे भी शौक है।"

"सच !"

"श्रीमान ! मैं मध्यप्रान्त का रहने वाला हूँ और सम्मेलन से विशारद पास कर चुका हूँ।"

कहकर हबीब साहब जोर से हँसे। फिर कहा, "और तुम्हें भी बहुत दिनों से जानता हूँ। मेरी बहन तुम्हारी कहानियाँ पढ़ती रही है। लेकिन अब चलूँ। कल शाम को आइये तब बात होगी। प्रणाम करूँ न तुम्हे। पर तुम तो आर्यसमाजी हो। सो नमस्कार !"

कान्त ने हाथ जोड़कर कहा, "सलाम !"

एक बार फिर उन लोगों ने एक दूसरे को स्नेह-भरी दृष्टि से देखा और फिर वे लोग चले गये। कान्त खाना खाता हुआ दूर बहुत दूर, जहाँ मात्र-कल्पना की गति है उस स्थान को बात सोचता बैठा रह गया।

: ४ :

धर्मपाल जिस समय दफ्तर पहुँचा, घड़ी छः बजा रही थी, और वह बुरी तरह हाँफ रहा था। कान्त ने उसे देखा तो किसी अज्ञात भय से सिहर उठा। बोला, "क्यों, क्या बात है ?"

"जल्दी चलो, उन्होंने कुमार बाबू को मार डाला।"

"क्या ?..." अविश्वास से वह बोला, "क्या कहता है तू! किसने मारा ? कैसे मारा ?"

किसी तरह धर्मपाल ने कहा, "जी, वे अंजुमन के सकत्तर हैं, पुलिस के पुराने डिप्टी।"

"हाँ हाँ, वे आगा साहब ?"

"तो उन्होंने पिटवाया है।"

तबतक वे दफ्तर से बाहर आ चुके थे। कान्त ने पूछा, "क्या बात हुई थी ?"

"वे हबीब साहब के घर जा रहे थे। रास्ते में पीछे से आकर कई आदमियों ने उन्हे लाठियों से पीटा और भाग गये। खून से लथपथ बहुत देर बाद हबीब साहब ही उन्हें अस्पताल ले गये।"

"बहुत चोट लगी है ?"

"जी, सिर फट गया है और गले की हड्डी ..."

"गले की हड्डी टूट गई, ओ यह क्या हुआ !"

कान्त पसीने से तर हो उठा। उसकी आँखों के आगे भयङ्कर दृश्य उभारने लगे। अस्पताल का बड़ा कमरा, स्प्रिंगदार पलँग और उस पर लेटा हुआ कुमार, रक्त से सिंचित श्वेत पट्टियाँ, सज्ञा-हीन था। धीरे-धीरे यंत्रवत आँखों को पुतलियाँ घुमाता हुआ —तभी देखा—सामने अस्पताल का मैदान है और फिर कमरे धवल और शान्त। धर्मपाल बोला, "तीन नम्बर कमरा है।"

कान्त मुड़ा। सामने कमला आ गई। एकदम पूछा, "क्या हाल है ?"

कमला ने वेदना-भरे स्वर में कहा, "अभी होश नहीं आया।"

तो क्या...?"

"जी नहीं।" शीघ्रता से कमला बोली, "डाक्टर कहते हैं, रात बीत जाने पर सब ठीक हो जाने की पूरी आशा है।"

"पर यह सब कैसे हुआ ?"—कान्त ने अन्दर जाते-जाते पूछा—और तभी उसकी दृष्टि कुमार पर पड़ी। देखा—कुमार चित्त लेटा है। उसके सिर पर जो श्वेत पट्टी बँधी है उस पर रक्त चमक आया है। एक हाथ स्प्रिंग में होकर छाती पर बँधा है, दूसरा करवट के पास रक्खा है। शान्त, निस्तब्ध, वह धीरे-धीरे मंथर गति से साँस ले रहा है और प्रति स्वाँस के साथ उसकी छाती धीरे-धीरे उठती है और गिरती है।"

कमला फुसफुसाई, "यही जीवन का चिन्ह है।"

कान्त का मन भीग रहा था। डाक्टर ने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया। पास ही हबीब साहब थे। कान्त के कंधे पर हाथ रख बाहर जाने का सकेत करते हुए वे बोले, "डाक्टर ने अभी इन्जेक्शन लगाया है। कहते हैं होश आने वाला है।"

"चोट गहरी है ?"

"हाँ, चोट गहरी है। समय लग सकता है। मैंने पुलिस को पूरी रिपोर्ट दे दी है। अचानक ही कई लोगों ने एक साथ इन पर आक्रमण किया है।"

कान्त ने पूछा "आखिर यह क्यों हुआ ?" तब हबीब साहब ने बताया—"कल आपके पास से हम लोग अन्जुमन के सकत्तर के पास गये थे। आपकी सब बातें उन्हें समझाईं परन्तु पुलिस का वह डिप्टी बड़ा घाघ निकला। बोला, 'आप जो कहते हैं वह ठीक तो है, परन्तु शरीयत के मुताबिक जो एक बार खुदा का घर बन जाता है वह फिर नहीं मिट सकता।' और उन लोगों ने हमारी एक भी बात नहीं सुनी। उल्टा हम से बोले—'आप बीच में

क्यों पड़ते हैं ? बात हमारे और सरकार के बीच में है।"

इस बात के जवाब में कुमार साहब ने कहा, "डिप्टी साहब ! बात आपकी और सरकार की नहीं है, हिन्दू-मुसलमान की है। कम-से-कम आपने उसे ऐसा ही बना दिया है।"

यह सुन करके वह भड़क उठे, "आपका मतलब ?"

"मतलब यही है—" कुमार ने शान्ति से कहा, "इससे पहले कि बात हमारे और आपके हाथ से निकल जाय हमें उसे सँभाल लेना चाहिए।" इस पर वह बूढा घाघ बडा हँसा। बोला, "अजीज़मन ! बात ऐसी नहीं है। आप डरें नहीं, कुछ झगड़ा नहीं होगा।"

आखिर हम लौट आये। पीछे सुना मुझे लेकर डिप्टी साहब ने बहुत गालियाँ सुनाईं। कहा, वह हिन्दुओं का गुलाम है। उनके टुकडों पर पलता है। आस्तीन का साँप, गद्दार, काफिर न जाने क्या-क्या कहा।" और फिर धीरे से बोले, "उन्होंने मुझे मार डालने का षड्यन्त्र भी रचा था। आज आपको आना था। कुमार साहब साढे चार बजे आ गये थे। साढे पाँच बजे तक भी जब आप नहीं आये तो वे आपको बुलाने के लिए चले। कुछ क्षण बीते थे कि मैंने उनकी चीख सुनी। जो आदमी मुझे मारने आये थे उन्होंने कुमार को मार डाला।"

× × ×

अप्रैल की रात निरंतर ठंडी होती गई और सुहावनी भी। चाँद निकल आया और धरती महक उठी। कभी-कभी दूर कोयल की कूक सुनाई दे जाती थी; परन्तु अस्पताल के एक कमरे मे पलँग पर लेटा हुआ कुमार धीर-गम्भीर गति से साँस खीच रहा था और उसके आसपास खड़े थे कान्त, कमला, हबीब और धर्मपाल। कभी उसे देखने लगते तो देखते ही रहते, कभी दूर हटकर चुपचाप टहलने लगते। डाक्टर फिर लौट आया। सुईं लगाई, आँखों की पुतली उठाकर देखा। और मुस्कराकर बोला, "मुझे खुशी है, इन्हें होश आने वाला है।"

कान्त का चेहरा खिल उठा ।

कमला शीघ्रता से आगे बढ़ी और हबीब ने दुआ में हाथ फैलाकर कहा, "खुदा, तेरा लाख-लाख शुक्र है ! तू रहीमुर्रहमान है ! तू करीम है !"

धर्मपाल अब भी बिना बोले एकटक देखता रहा । समय घड़ी की टिक-टिक की भाँति बीत रहा था, परन्तु उनके हृदयों की धड़कन धीरे-धीरे तीव्र होने लगी और उनकी आँखें अर्जुन की दृष्टि की तरह कुमार के मुख पर स्थिर हो गईं ।

चांद छिप गया, मुरगे की आवाज सुनाई देने लगी। हवा और भी शीतल हो चली और जाने से पहले अंधकार ने धरती का अचल दृढता से थाम लिया । ठीक इसी समय कुमार के पैर हिले । फिर दाहिने हाथ की उँगलियों ने गति की और अन्त में वे पलकें हिलीं, जिन्होंने प्रकाश को ढक लिया था । व्यग्र, उत्सुक, वे मौन खड़े थे । प्रत्येक परिवर्तन उनको अनिर्वचनीय सुख देने वाला था। उन्हें भय था क्या वे उस सुख को सँभाल सकेंगे कि कान्त फुसफुसाया—"डाक्टर !"

डाक्टर शान्त मन कुमार के सिरहाने खड़ा था । उसने चुपचाप अपना हाथ पलकों पर रख दिया । रखे रहा । क्षण बीते । कुमार का स्वर फूटा । उल्लास ने उन्हें पागल बना दिया । हाथ उठाने पर सबने देखा—कुमार के नयन खुले थे और पुतलियाँ घूम रही थीं । जीवन मौत पर विजयी हुआ था ।

× × ×

कान्त उस दिन बारह बजे के बाद दफ्तर पहुँचा ।

दफ्तरी बोला, "क्या बात है, आपने आज बड़ी देर कर दी ?"

"कोई पूछता था ?"

"वही बड़े बाबू आये थे । सुना है कल मुसलमानों ने किसी हिन्दू को पीट डाला । वे आपके मित्र थे क्या ?"

"तुमसे कौन कहता था ?"

"बाबू बदन सिंह ।"

तभी बडे बाबू तेजी से झपटते हुए आये, "कान्त बाबू, वह केस पूरा करके साहब की कोठी पर भिजवा दो। वे पुलिस कप्तान के पास जा रहे हैं। साले मूर्ख हैं, झगडा करके अपने पैरों पर आप कुल्हाडी मारी है। खान साहब कह रहे थे कि यह तो कोई पुरानी अदावट है। कुमार कांग्रेसी है, आचरण कुछ ऐसा ही है।"

फिर एकदम व्यग्रता मे पूछा, "पर कान्त ! यह कुमार है कौन ? और कोई कमला नाम की विधवा है क्या ?"

कान्त ने शान्ति से कहा, "पिछले झगड़ों में जो मोहन बाबू मारे गये थे, उन्हीं की पत्नी का नाम कमला है। वह कन्या पाठशाला मे अध्यापिका है।"

"ओ, यह वह है।" बड़े बाबू बोले, "मैं जानता हूँ, तुम उसे पढाया करते थे। वह तो बडी सुशीला है। बडे दुष्ट हैं। कहते थे कुमार कमला के घर जाता है।"

"घर तो मैं भी जाता हूँ।"

"तुम्हारी और बात है। समाज में तुम्हारी कितनी प्रतिष्ठा है ! तुम में तो बस एक कमी है।"

"जी।"

"तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते ? संसार न जाने क्या सोचता है ? अभी कुछ दिन हुए ठेकेदार कह रहे थे—कान्त बाबू ने मोहन कृष्ण की विधवा की बड़ी सहायता की है। सुनकर मुझे तो बुरा लगा। विधवा के पास जाना क्या अच्छा माना जाता है ?" अन्तिम बात उन्होंने बडे धीरे से और विश्वास के साथ कही कि उसने कान्त के मन को छुआ। वह तत्काल कोई उत्तर न दे सका। इसी बीच में बड़े बाबू फिर बोले—"सुना है, कुमार को उन्होंने बहुत मारा है।"

"जी !"

"बच तो गया ?"

"जीहाँ, किसी तरह बच गये है ।"

"बडे बदमाश हैं। मारते हैं और गुर्राते हैं। इसीलिए भाई, तुम्हे बच कर रहना चाहिए। बहुत न आना-जाना। जमाना खराब है। वे ही शिकायत कर देंगे। सरकारी नौकरी है। यह तुम्हारा साथी बडा घाघ है। देखो, उसे अधिक मुँह न लगाना।"

और फिर मुस्कराकर धीरे से बोले, "शेख न जाने कितनी बार कह चुका, मुझे रिकार्ड कीपर बना दो। पर जब तक मैं हूँ, वह रिकार्ड मे पैर नहीं रख सकता। कच्ची गोली नहीं खेला हूँ।"

इसी समय गनेशी भागा हुआ आया, "बाबूजी, साहब आ गये। सलाम देते है।"

बडे बाबू हडबड़ा उठे। बोले, "अरे भाई, वह फाइल निकालो।"

"कौन सी ?" कान्त ने पूछा।

"वह ही।"

"हाँ, हाँ, वह ही।"

"वह ही कौन सी ? क्या चबूतरे वाली ?"

बडे बाबू क्रुद्ध हो उठे। "हाँ, चबूतरे वाली। जल्दी करो, साहब जाने वाले हैं। तुम लोग कुछ नहीं समझते।"

बड़े बाबू अन्दर चले गये और कान्त फाइल ठीक करने लगा। कर चुका तो वह भी अन्दर पहुँचा। साहब बोले, "मिस्टर कान्त, मैं लाहौर जा रहा हूँ। तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।"

"मुझे !" कान्त हठात् चौंका। "जी मुझे तो यहाँ पर कुछ आवश्यक काम है।"

"क्या··?"

"जी, मेरे एक मित्र··।"

"ओह !"—बात काटकर साहब ने कहा, "मित्र की चिन्ता मत करो। पेट सबसे बडा मित्र है। तुम्हारे विरुद्ध उनकी शिकायतें हैं। मैं तुम्हे स्वयं वजीर के पास ले चलूँगा। बडा अच्छा अवसर है।"

कहकर साहब मुस्कराया, बड़े बाबू ने तत्परता से कहा, "निस्संदेह अच्छा अवसर है, तुम्हे जाना चाहिए।"

कान्त मना नहीं कर सका, परन्तु संध्या को घर लौटकर जब वह अस्पताल पहुँचा तो बहुत उद्विग्न हो रहा था। उसने कमला से सब बातें बताकर कहा, "अब क्या करूँ ?"

कमला बोली, "आप निश्चिन्त होकर जाओ। यहाँ तो मै हूँ।"

"तुम ! तुम क्या सदा यहाँ रह सकोगी ?"

"क्यो न रह सकूँगी ?"

"तुम्हारी सास नाराज न होगी ?"

कमला ने कहा, "वे नाराज होंगी यह मानकर क्या मैं अपना कर्तव्य भूल जाऊँगी ?"

कान्त ने सहसा कमला की ओर देखा। स्निग्ध स्वर में वह बोली, पर देखिए, शीघ्र लौट आइये।"

कान्त ने रूखे स्वर से उत्तर दिया—"यह भी क्या तुम्हारे कहने की बात है, कमला, मैं शीघ्र ही लौटूँगा। फिर भी आवश्यकता पड़ने पर मेरी माँ के पास तुम जा सकती हो, वे तुम्हे निराश नहीं करेंगी।"

कमला ने धीरे से कहा, "जानती हूँ।"

: ५ :

इस झमेले में कई दिन बीत गये। कमला स्कूल भी न जा सकी। उसकी सास ने यद्यपि स्पष्ट तो नहीं पर परोक्ष रूप में उसे कई बार चेतावनी दी।

कमला चेतावनी को समझ न सकी हो, ऐसी बात नहीं थी परन्तु जब तक कुमार के पिता, भाई तथा भाभी ने आकर उसका चार्ज नहीं ले लिया वह धर्मपाल के साथ अस्पताल में बनी रही। केवल कुछ घण्टों के लिए रात को वह घर जाती थी। उन लोगों के आ जाने पर उसका काम अवश्य हलका हो गया था परन्तु उत्तरदायित्व उसी तरह बना हुआ था। डाक्टर ने स्पष्ट कह दिया था, "रोगी का चार्ज तुम्हें सँभालना होगा, मिसेज कमला!"

कमला इस विश्वास से पुलकित भी हुई और दुखी भी। अनजाने ही उसके अंतर में एक अनमनापन भरने लगा और साथ हीं पड़ोस मे उसके नाम को लेकर कानाफूसी का वातावरण भी बन चला। इसी समय निशि-कान्त का एक पत्र उसे मिला। लिखा था—

"प्रिय कमलाजी!

मुझे दुःख है, इधर आकर इतना व्यस्त रहना पड़ा कि पत्र तक न लिख सका। बीच में समाचारपत्रों से यह पता लग ही गया था कि कुमार खतरे से बाहिर है और साम्प्रदायिक स्थिति शान्त है। वास्तव में उस बात मे कोई सार नहीं है। सरकार जो निर्णय कर चुकी है उससे पीछे नहीं हटेगी। मुझे विश्वास है शीघ्र ही सब कुछ ठीक हो जायेगा।

तुम आजकल बहुत व्यस्त रहती होगी। मुझे बड़ी लज्जा आती है, मैं यहाँ आ बैठा। यह लज्जा और भी बढ़ जाती है जब मैं देखता हूँ कि जल्दी छुटकारा मिलने की कोई आशा नहीं है। यहाँ न सुख है न शान्ति। चारों ओर षड्यंत्र का धुआँ भरा हुआ है। जी घुटता है। कभी-कभी तो इतना उत्तेजित हो उठता हूँ कि जी करता है कि इन सब फाइलों मे आग लगा दूँ, या उन लोगों के सिर से दे मारूँ। पर दूसरे ही क्षण सोचता हूँ—उत्तेजना कायरता है। मनुष्य कायर नही हो सकता। परिस्थितियों का सामना करके उन्हें अपने अनुकूल बना लेना उसका कर्त्तव्य है। मैं मनुष्य हूँ, इसीलिए अपना कर्त्तव्य पहचानता हूँ। मुझे आशा है तुम भी इस सत्य को पहचानती हो। पहचानती हो तभी तो इतना कर सकती हो।

इधर अखबारों से एक नई जानकारी तुम्हें मिली होगी। यूरोप के भाग्य पर युद्ध के बादल छाने लगे हैं। हिटलर की प्रगति तुम देखती रही हो। इंगलैण्ड से कुछ आशा नहीं है। रूस की राजनैतिक स्थिति स्पष्ट है भारत में कॉंग्रेस शक्तिशाली है, परन्तु मुस्लिम लीग की गति बढ़ रही है और दुख है वह स्वस्थ नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम-एकता हमारा स्वप्न है; पर कौन जानता है, यह स्वप्न कोरा स्वप्न ही रह जाये। हाँ, इतना विश्वास अवश्य दिलाता हूँ कि स्वप्न की विफलता को मानकर चुप नहीं बैठूँगा। अपनी रचनाओं से देश को जगाने का प्रयत्न करता रहूँगा।

यहाँ आकर जाटों की उत्तेजना को भी नंगे रूप में देखा। उसका मार्ग ठीक न हो पर हम उन्हें दोष भी कैसे दें? बनियों ने उनका शोषण करने में क्या कुछ उठा रखा है। अन्याय सहते-सहते उन्होंने जो अन्याय का मार्ग पकड़ा वह स्वाभाविक ही है। उनका दमन हम अपने अन्याय का दमन करके ही कर सकते हैं।

न जाने क्या-क्या लिख चला! यहाँ एक भाभी मुझे मिल गई है, जो मेरा चार्ज लेने को प्रस्तुत है। मेरे विवाह के लिए बड़ी व्यग्र है। मिलने पर उनकी बात सुनाऊँगा। नारी की स्वच्छन्दता मैंने यहीं देखी है।

तुम स्वस्थ प्रसन्न हो न। कम-से-कम प्रसन्न रहने की चेष्टा अवश्य करती होगी। हबीब साहब आते होंगे। कहना—कान्त तुम्हें याद करता था। पंडित मेलाराम भी आये होंगे। कुमार के प्रशंसक हैं, तुम्हारे भी, क्योंकि मैंने उनसे कहा था—तुम रामायण पढ़ती हो। कुमार को प्रणाम कहना। अम्माजी को भी। और घर जाओ तो माँ को नमस्ते कहना। एक बार हो आना। मिलने से वे बहुत प्रसन्न होती हैं; पर देखना भूलकर भी उनके बर्तन न छू देना।

अच्छा प्रणाम!

तुम्हारा
कान्त"

यह पत्र पाकर कमला का मन आह्लाद से भर आया। आत्म-विभोर-सी वह शून्य में ताकती वहीं बैठी रही। उस शून्य में मात्र-शून्य नहीं था, कुछ नाना रंग के चित्र भी थे। वे चित्र एक से बढ़कर एक मनोरम और मोहक थे। उन्हे देखती-देखती तन्मय-विह्वल, वह आप-ही-आप फुसफुसा उठी—आये तो कहना कान्त तुम्हे याद करता है। कान्त ''मास्टरजी कान्त''। उन्होंने एक दिन कहा था । मरने से पहले मैं उन्हें इस योग्य बनाना चाहता हूँ कि तुम्हारे हाथ की रोटी खा सके—। मेरे हाथ की रोटी!—कान्त!—कान्त!!—कान्त!!! जैसे लगा सारा वातावरण, सारा शून्य, सारा विश्व कान्त-मय हो उठा। कान्त जो स्वामी हैं, पति हैं, मधु ऋतु हैं जो स्वय स्वयम्भू हैं और कमला ·।

ठीक इसी समय अम्माजी ने पुकारा, "बहू, ओ बहू! कबकी पुकार रही हूं सुनती हो नहीं। कैसे लक्षण होते जाते हैं तेरे?"

कमला हठात् काँप उठी। पसीना छूटने लगा। सकपकाकर बोली, "क्या था, अम्माजी?"

"तेरा सिर था"—क्रुद्ध अम्माजी ने कहा, "घर-गिरस्ती की भी फिकर है। हाय राम कैसे होगा ऐसे!"

कमला सँभल चुकी थी। शान्त स्वर में बोली, "अम्माजी! मैं अभी आ रही हूँ। मास्टर साहब का पत्र आया था। तुम्हे प्रणाम लिखा है।"

अब अम्माजी हकलाकर बोलीं, "किसका पत्र?"

"मास्टर जी का।"

"क्या लिखा है?"

"कुमार भइया का हाल पूछा है। लिखा है मुझे आने में देर होगी। अम्माजी से कहना, जरा कुमार का ध्यान रखें। उसका अपना······"

बीच में अम्माजी बोलीं, "हाँ, हाँ! ध्यान क्यों न रखेंगे उसने क्या कम किया है? बेचारा कितना भला है! परमात्मा न जाने इतने भले आद-मियों पर इतनी विपदा क्यों डालता है?"

"अम्माजी, हबीब साहब कहते थे खुदा अपने बन्दों का इम्तहान लेते हैं।"

अम्माजी ने चकित स्वर में पूछा, "यह हबीब साहब कौन हैं?"

"मास्टरजी के दोस्त हैं।"

"अच्छा! पर देख, तू इन लोगों के सामने न आया कर। समझी!"

"जी!"—कमला ने यंत्रवत कहा, "मेरा उनसे क्या सम्बन्ध है?"

"हाँ बहू, दुनिया के कान बड़े लम्बे होते हैं। यह तो वही बात है—अपना मरण जगत की हाँसी। जरा-सी देर में मोती की-सी आब उतर जाती है। अच्छा चल, जरा जल्दी काम निबटा ले, फिर कान्त की माँ के पास जाना है। मुझे छोड़कर स्कूल चली जाना।"

कमला बिना कुछ कहे काम मे लग गई और जिस समय अम्माजी को कान्त की माँ के पास छोड़कर स्कूल पहुँची तो अध्यापिकाओं ने उसे घेर लिया। वे भाँति-भाँति के प्रश्न पूछने लगीं थीं। एक ने पूछा, "कहो बहन, कहाँ रही?"

दूसरी ने कहा, "क्या हाल है कुमार बाबू का? उन दुष्टों ने तो उनको मार ही डाला था।"

बिना झिझके कमला ने जवाब दिया, "हाँ बहन, भगवान ने बचा दिया। अब तो ठीक है।"

एक अध्यापिका अपेक्षाकृत नई थी। बोली, "क्यों बहन! वे तुम्हारे क्या लगते हैं?

क्षण भर के लिए कमला सकपका गई। पर दूसरे ही क्षण सहज भाव से उसने कहा, "दुनिया के नाते में तो वे मेरे कुछ नहीं लगते—पर जब अन्धकार में भटक रही थी तब कान्त बाबू के साथ इन्होंने मुझे जीने की प्रेरणा दी थी।"

सुनकर वे सब सकते में आ गईं। एकाएक कुछ कहते न बना। फिर

कुछ मन ही मन हँसीं। एक ने पूछा, "बहन, शादी नहीं की उन्होंने ?"

कमला ने शान्त मन से उत्तर दिया, "बहन, मैंने तो कभी पूछा नहीं और वे बातें बहुत कम करते हैं।"

अध्यापिकाएँ नारी थीं, मानव थीं, उनमे से दो ने एक-दूसरे को देखा, मुस्कराईं और अपनी-अपनी क्लासो में चली गईं। तीसरी कुछ देर और बातें करती रही। जब कमला कुछ और न बता सकी तो वह भी लौट गई। चौथी को मन में एकाएक कमला के प्रति सहानुभूति जाग आई। बोली—"बहन! दुनिया बड़ी विचित्र है। तुम्हारे पीछे तुम्हारी सब बुराई कर रही थीं।"

कमला ने कौतूहल-भरी दृष्टि से उसे देख भर लिया। वह एक गरीब युवती थी और केवल पन्द्रह रुपये मासिक पर बालिकाओं को पढ़ाती थी। उसका नाम भगवती था। वह फिर बोली, "कह रही थीं कमला विधवा है। उसे मर्दों के साथ नहीं रहना चाहिए।"

कमला ने अब भी कोई उत्तर नहीं दिया। बस, उसका मन कड़वा-कड़वा हो उठा। उसने चाहा वह भगवती को रोक दे; पर कहीं भीरुता थी। वह बेबस-सी भगवती को देखती रही और भगवती ने अपनी कथा जारी रक्खी, "बहन! आगे क्या कहूँ! ऐसी गंदी-गंदी बातें करती थीं कि सुनकर शंका से मेरा मन भी भर उठा। नन्दा यहाँ तक बोली, "भौंरा रस पर जाता है। कमला सुन्दर है, अनाथ है और कुमार एकाकी। इससे सुन्दर अवसर एक पुरुष के लिए और क्या हो सकता है? मैं तो मुख्याध्यापिका से साफ कह दूँगी, कमला को लड़कियों के स्कूल में रखना आग से खेलना है।"

यहाँ आकर भगवती ने दृष्टि उठाई। देखा, "कमला बेसुध-सी एक-टक शून्य में ताक रही है। मुख का रंग मुरझाये कमल की तरह पीला पड़ गया है और नयन भर आये हैं। देखकर वह स्वयं काँप उठी। बोली, "बहन!"

कमला हठात् हिल उठी। नयनों से जल टपक पड़ा। कहा—"हाँ।"

"तुम्हारा जी अच्छा नहीं है ?"

"तुम मुसीबत में थीं, तब उन्होंने तुम्हारी मदद की थी।"

"जोहाँ।"

"कान्त के मित्र हैं ?"

"जी।"

"कान्त को मैं जानती हूँ। चरित्रवान लड़का है।"

कमला ने कुछ जवाब नहीं दिया। वे ही कहती रहीं, "पर कमला ! कुमार ने विवाह क्यों नहीं किया ?"

"जी, मैंने तो कभी पूछा नहीं।"

"कान्त ने भी कभी कुछ नहीं बताया।"

"जी, मास्टरजी दूसरों के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बातें कभी नहीं करते। कहते थे—दूसरो की आलोचना करने से अच्छा यह है कि हम अपना जीवन परखें।"

बड़ी बहन जी ने प्रभावित होकर कहा, "बहुत बडी बात कही है उसने कमला, पर ऐसे आदमी हैं कहाँ, जो इस सत्य को पहचानें ? आज तो दूसरों की निन्दा करना हमने पेशा बना लिया है।"

फिर एक क्षण शान्त रहकर बोली, "मेरी बहन की लड़की ने इस वर्ष मैट्रिक की परीक्षा दी है। उसे वर चाहिए, सोचती थी ··"

हठात् कमला काँप उठी, मुख विवर्ण हो आया, पर सौभाग्य से बहनजी ने उसे नहीं देखा। वे कह रही थीं, "सोचती थी कान्त से बढ़कर वर कहाँ मिलेगा। तुम तो उनकी माँ को जानती हो। एक बार मेरे साथ चल सकोगी ?"

कमला के भीतर कहीं भ्रम था। वह सहसा तिरोहित हो गया। कहा, "जी, जब आप कहें, चली चलूँगी।"

बड़ी बहनजी मुस्करा पड़ी, पूछा, "तुम्हें और छुट्टी तो नहीं चाहिए।"

"जी नहीं।"

"कमला, तुम्हारा स्वभाव बहुत अच्छा है।"

मुस्कान की एक स्मित रेखा से कमला का मुख आलोकित हो उठा। उसने गद्‌गद्‌ होकर दृष्टि झुका ली। बड़ी बहनजी धीरे से बोलीं, "बहन, दुनिया क्या किसी का मन देखती है। उसने तो कुछ अपने माप-दण्ड बना लिये हैं, उन्हीं से सबको नापती है। तुम्हारे बारे में न जाने क्या-क्या कहा? मैंने तो कह दिया था—निशिकान्त को मैं जानती हूँ। कुमार उसी का मित्र है। उसके बारे में कुछ बातें सुनी जरूर हैं परन्तु ...."

सहसा बड़ी बहनजी ने रुककर कमला को देखा। ठगी-सी वह उन्हीं की ओर देख रही थी। दृष्टि फिर मिल गई। इस बार न कमला झिझकी, न वे मुस्करायीं। उसी सरलता से वे कहती रहीं—"परन्तु यदि कमला उससे प्रेम करती है तो इसमें बुरा क्या है?"

हठात्‌ भूकम्प के झटके से वहाँ सब कुछ हिल गया। कमला ने उस हतभागिनी नारी की तरह जो सहसा तप्त रेगिस्तान से नन्दन बन मे पहुँच जाती है, आँखें फाड़-फाड़कर देखा—यह कैसी मृग-मरीचिका है। परन्तु वे उसी तरह धीरे-धीरे, जैसे अपने से बातें करती हों, कह रही थीं—

"कमला! नारी सम्पत्ति चाहती है, नारी शासन चाहती है, अधिकार चाहती है, वह किसी को अपना बनाना चाहती है। उसके अधिकार और सम्पत्ति का आधार आत्म-समर्पण चाहने से मुक्त नहीं है। यह स्वाभाविक है! यदि इसे कोई पाप कहता है तो वह सत्य को झुठलाता है।" न जाने क्या हुआ? कमला ने अपना सिर मेज पर टिका दिया और आँसुओं को रोकने की चेष्टा में सिसकियाँ लेने लगी। बड़ी बहनजी ने उसे देखा, वे बोलीं नहीं, केवल अपना हाथ उसके सिर पर रख दिया। कमला का बाँध बिल्कुल टूट गया। उसके मस्तिष्क में तब मात्र शून्य था। कुछ ऐसा शून्य जैसा असख्य नक्षत्रों, ग्रहो, शिला-खण्डो और नाना रंग और जाति की हवाओ के बावजूद भी आकाश में रहता है। वह न सोच सकती थी, न बोल सकती थी। केवल रो सकती थी मानों शून्य का वेग उसे तरलता में पलट रहा था। कई

क्षण इसी प्रकार बीत गये। तब बड़ी बहनजी धीरे से बोलीं, "कमला!"

"जी!" उसने रुँधे कण्ठ से कहा।

"इतनी कच्ची धरती है?"

कमला ने धीरे से सिर उठाकर उन्हें देखा। फिर आँखे पोंछ डालीं। बड़ी बहनजी उसी तरह बोलीं, "मुँह धो डालो कमला, और अपना काम करो। मुझे तुमसे बहुत कुछ कहना है। किसी दिन कहूँगी तब तक इतना याद रक्खो तुम नारी हो और नारी के कुछ कर्त्तव्य हैं, कुछ अधिकार है। तुम्हे जितना कुछ जान सकी हूँ उससे मैं समझती हूँ तुम उन्हें पहचानती हो, फिर यह कायरता क्यों?"

कमला उठी। सुराही में से पानी लेकर मुँह धोया और फिर मेज के पास आई। मन मे कोई विचार उठा। परन्तु वाणी ने साथ नहीं दिया। कमला ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और लौट चली।

: ६ :

संध्या को स्कूल से लौटी तो कमला का मन बड़ा उद्विग्न हो रहा था। वह सीधी कुमार के पास चली गई। पूछा, "कैसा जी है?"

कुमार धीरे से मुस्कराकर बोला, "ठीक है?"

फिर कुछ कह सकने में असमर्थ कमला कई क्षण चुपचाप खड़ी रही। ध्यान आने पर देखा—चादर नीचे झुक गई है। उसे ठीक कर दिया। जाली में सामान अस्त-व्यस्त था उसे सजाने लगी।

कुमार ने धीरे से पूछा, "छुट्टी कब से होगी?"

"पन्द्रह तारीख से।"

"कान्त का पत्र आया?"

"जी, आज ही आया है। आपके लिए बड़े चिन्तित है।"

"कब आने को लिखा है?"

"लिखा है आने मे देर हो सकती है। बहुत झगड़े हैं ··।"

कुछ कहते-कहते रुक गई। कुमार मुस्कराया। फिर धीरे-धीरे अपना हाथ उठाकर छाती पर रक्खा और आँखे मीच लीं। कमला ने देखा—साँस की गति स्पष्ट हो चली है, और वक्षस्थल उठने-गिरने लगा है। लेकिन सदा मुस्कराता हुआ मुख इतना पीला पड़ गया है कि हृदय में भय पैदा करता है। शरीर इस तरह लगता है मानो जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है···।

एक हलका-सा कम्पन हुआ। जीवन जब साथ छोड़ देता है तो शरीर इसी प्रकार पडा रह जाता है। साँस की गति जीवन की साक्षी है ··। कुमार साँस ले रहा था। छाती उठती है, गिरती है, उठती है। पर न जाने क्या हुआ। डर ने उसे जकड़ लिया। उसने यंत्रवत धीरे से पुकारा, "सुनिये तो!"

कुमार ने नही सुना। वह मुडी। धर्मपाल से पूछा, "क्या आज नींद नहीं आई थी?"

धर्मपाल बोला, "जीहाँ! रात वे सोये नही। अब सो रहे हैं।"

"मैं बाहर बैठती हूँ। दवा का वक्त आने पर पुकार लेना।"

"अच्छा जी।"

जाते-जाते उसने कुमार को फिर देखा—कितना शान्त, कितना निर्दोष और कितना अशक्त! उसे याद आने लगा उसकी सास ने क्या कहा था और वे अध्यापिकायें! और वे बड़ी बहनजी। आशा के विपरीत उन्होंने उसे सहानुभूति दी। सहानुभूति जो विश्व मे अप्राप्य है, जो स्वर्ग की वस्तु है ··हाय रे! स्वर्ग ही क्या मनुष्य का लक्ष्य है? कान्त ने कहा था—मनुष्य का लक्ष्य मनुष्य की धरती है। देवता का स्वर्ग नही है। व्यास भगवान ने नही लिखा है— 'मनुष्य से बढ़कर और कुछ नहीं है।' मनुष्य

धरती पर रहता है। इसी धरती पर उसका स्वर्ग और नरक है। इससे परे केवल छलना है, न देवता है न भगवान…।

उसकी आँखें फिर उठीं। कुमार का मुख उसी तरह म्लान और पीतवर्ण था। कमला ने उस म्लानता के पीछे न जाने क्या देखा। उत्फुल्ल हो उठी। सोचा, "निस्सन्देह, न देवता है न भगवान। मनुष्य ही देवता है, मनुष्य ही भगवान है। गांधी भगवान ही तो है, दुनिया के लिए कुमार देवता है, न होता तो क्यों दूसरों के लिए प्राण देता ?

कमला की कृतज्ञता तरल से तरलतर होती चली गई। वह आत्म-विभोर प्रार्थना की मुद्रा में फुसफुसाई, "प्रभो ! इनका मंगल हो, इनके कष्ट…"

हठात् वह काँप उठी ! यह क्या ? देवता और भगवान की अवज्ञा करके उन्हीं का नाम लेने लगी। हाय रे, यह कैसी असमर्थता है, कैसा अज्ञान है ?

कमरे में पहुँचकर देखा—उसकी सास चली गई है। केवल कुमार की भाभी अपने बच्चे को लिए बैठी हैं। कमला को देखकर वह मुस्कराई, बोली, "आओ।"

कमला भी मुस्कराई, "क्या कर रही हो भाभी ?"

कुछ भी तो नहीं। वही रोज का काम है। अभी-अभी तुम्हारी सास और कान्त बाबू की माँ गई हैं। उनके जाने पर ये मचल पड़े हैं। कहते हैं 'भाभी उत्तो, सारी ओरो, सेन्डिल पेनो वज्जी……'

कमला हँस पड़ी, "आये बड़े नवाब साहब, सारी पेनो।"

भाभी भी हँसी—"धोती नहीं कहता, साड़ी कहता है। हमारे पड़ोस में एक बार एक डाक्टरनी आई थी। थी मेम साहब। बस, उन्हीं से सब बातें सीख आया है। चप्पल उठा लाता है…"

और फिर देर तक कमला उस बालक से उलझी रही। फिर एकाएक याद आया—कुमार को दवा देनी है। वह अस्पताल की ओर मुड़ी। देखा—

सामने से हबीब साहब चले आ रहे हैं। उनके साथ एक महिला भी है। कमला को देखकर उन्होंने कहा, "ये मेरी बहन हैं।"

कमला शिष्टता से बोली, "आइये न! मैं जरा दवा दे आऊँ।"

"क्या हाल है?"

"ठीक है।"

"शुक्र है, शुक्र है, वह बड़ा करीम है।"

फिर एक-दूसरे को देखते हुए वे चुपचाप चलते रहे। अन्दर जाकर कमला ने कुमार से कहा, "हबीब साहब की बहन आई हैं।"

कुमार अचरज से मुस्कराया, "शुक्रिया! उन्हें मेरा सलाम दो।"

कमला ने युवती को लक्ष्य करके कहा, "सलाम कहते हैं।"

बुरके के भीतर से धीमा स्वर आया, "कैसे मिजाज हैं?"

कमला मुस्करायी। कुमार से बोली, "पूछती हैं, कैसे मिजाज हैं?"

"शुक्र है, ठीक हो रहा हूँ।"

कमला ने वही वाक्य दोहरा दिये और हँस पड़ी। फिर जब कुमार दवा पी चुका तो युवती का हाथ पकड़ लिया। बोली, "आओ चलें, उधर इनकी भाभी हैं।"

बाहर आकर युवती ने पूछा, "आप मुझे यहाँ क्यों लाई थीं?"

कमला सहसा चौंकी, फिर धीरे-से बोली, "क्या यहाँ आना बुरा हुआ? मुझे दवा देनी थी। माफी चाहती हूँ।"

युवती ने सलज्ज मधुर स्वर में कहा, "नहीं नहीं, यह बात नहीं, पर हम लोगों को गैर मर्दों के सामने आने को मनाही है।"

कमला हँसकर बोली, "सामने कहाँ आये? बीच में बुरका जो था।"

फिर भाभी के पास पहुँचकर कहा, "अब जरा दर्शन दीजिये। यहाँ कोई गैर मर्द नहीं है।"

युवती ने खिलखिलाकर बुरका उठा दिया—मानो चाँद निकल आया।

दोनों चकित-विस्मित देखती ही रह गईं—रक्तिम, गौर वर्ण, लम्बे नेत्र, तुचर नासिका, छोटा-सा मुख, सब स्मित हास्य से जगमग जगमग।

युवती अब संकोच-रहित खाट पर जा बैठी। बोली, "मैं मामू के पास जबलपुर गई हुई थी। कल रात लौटी हूँ। सुनकर बड़ा अफसोस हुआ। खुदा का शुक्र है, बच गये। अल्लाह अब जल्दी ही इन्हें सेहत देगा।"

और फिर भाभी की ओर मुड़कर पूछा, "आप उनकी भाभी हैं?"

"जी!"

"और आप?"

कमला मुस्कराई, "कुछ नहीं।"

"यानी···"

"मेरा नाम कमला है।"

युवती ने उसे अचरज से देखा, "तो आप हैं! भइया कहते थे···"

कमला एकाएक बोली, "अरे हाँ, आपका नाम तो पूछा ही नहीं।"

"बन्दी को सुरैया कहते हैं।"

"सुरैया!" कमला फुसफुसायी, "बहुत प्यारा नाम है आपका।"

सुरैया शरारत से बोली, "प्यारा लगता है तो मैं नाम बदलने को हाजिर हूँ। कमला में प्यार के साथ अर्थ भी है, लक्ष्मी को कमला कहते हैं न?"

कमला फिर चकित हुई—"आप जानती हैं?"

"क्यों? अचरज होता है, मुसलमान होकर मैं आप लोगों की बात जानती हूँ। दसवीं तक हिन्दी पढ़ी है।"

"ओ बाप! आप दसवीं पास हैं?"

"जी नहीं, बन्दी ने तो बी० ए० तक पढ़ा है।"

विस्मय-विमुग्ध वे उसे देखती ही रह गईं। दो क्षण बाद कमला बोली, "आप खुशकिस्मत हैं। आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।"

"तो फिर,···" सुरैया बोली, "सुदामा को झोपड़ी में चावलों का

भोग स्वीकार कीजिए।"

कमला ने भाभी को देखा, भाभी ने कमला को। फिर दृष्टि नीचे करके मुस्कराने लगी। कमला बोली, "बड़ी लालची हो, बहन! सुदामा के चावल खाकर उसके बदले मे देने के लिए त्रिलोक की सम्पदा हम कहाँ से लावेंगी?"

सुरैया झिझकी नही। कहा, "त्रिलोक के स्वामी लक्ष्मी के बस में रहते है। उन्हे क्या कुछ कमी है?"

जो बात हँसाने के लिए कही गई थी, वही कमला को रुला गई। उसका मुख लाल हो उठा। पर उसने किसी तरह हँसने की चेष्टा करते हुए कहा, "बहन, लक्ष्मी आज कंगाल है। उसके पास क्या है?"

सुरैया ने उसी मुक्त-मन से जवाब दिया, "कमला, जब साहस बटोर लेती है, तब त्रिलोकी के भाग्य जाग जाते हैं, बहन! इसीलिए तो मैं तुम्हारे पास आई हूँ।"

कमला अचरज और करुणा से सुरैया को देखती रह गई। जितना देखती उतनी ही स्निग्ध होती थी। उसने मुस्कराकर कहा, "बहन, साहस क्या माँगे से मिलता है? उसका स्थान तो अपने भीतर ही है, चाहने पर उसकी कमी नहीं रहती।"

सुरैया अब भी नहीं झिझकी, बोली, "पढ़ा है हनुमान बडे बलशाली थे, पर जब तक जामवन्त ने उन्हे यह सत्य नही बता दिया, तब तक अपने को भूले ही रहे। कस्तूरी मृग अपनी सम्पदा से सदा ही अनभिज्ञ रहता है, क्योंकि उसे बताने वाला कोई नहीं है।"

कमला मुखरित हो उठी; पर जवाब देती इससे पहले उसने भाभी को देखा—वह चुपचाप एक ओर देख रही थी। एक क्षण ठिठकी फिर कहा, "सुरैया बहन! जान पडता है तुम्हारे वे वकील हैं।"

सुरैया हठात् लजा गई—"वे?"

"हाँ, वे जिनसे तुम्हारा निकाह हुआ है न।"

सुरैया मुँह फेरकर बैठ गई। कमला उठकर पास आई। धीरे से बोली, "कान में कह दो। हम किसी से नहीं कहेगी।"

कमला की इस अदा पर भाभी हँस पड़ी। सुरैया भी खिलखिला उठी। कमला हँसती-हँसती बोली, "समझ गये। तुम्हारा निकाह नहीं हुआ है। नहीं तो हमारी जाति के लोग बडे साहसी होते हैं। सब बातें स्पष्ट कह देते हैं।"

और कहकर कमला स्वयं अट्टहास कर उठी। भाभी ने किसी तरह अपने को सँभाला। सुरैया का मुख देखे बनता था। अरुणाभा रक्ताभा में परिवर्तित हो चुकी थी और नयनों मे जलज की भाँति तरल नीलिमा चमक आई थी। आषाढ़ की संध्या-सी वह बड़ी प्यारी लग रही थी। ठीक इसी समय बाहर से हबीब साहब ने पुकारा, "सुरैया, आओ चलें।"

सुरैया शीघ्रता से उठी। उसने बुरका डाल लिया; पर नकाब नही डाला। काले बुरके के सम्पर्क से रूप और भी निखर आया। उसे कौली में भरकर कमला बोली, "तुम बहुत अच्छी हो।"

सुरैया ने शरारत से कहा, "सावन के अन्धे को हरा-ही-हरा दिखाई देता है।"

कमला बोली, "यह उसका सौभाग्य है, बहन।"

"पर बहन..."—सुरैया ने प्रभावित होकर जवाब दिया, "सब कहीं हरा-ही-हरा तो नहीं है, फूलों के साथ काँटे भी होते हैं।"

कमला उसी तत्परता से बोली, "काँटे इसीलिए होते है कि फूलों के रस को गाढ़ा करें।"

सुरैया ने कमला को ध्यान से देखा, बोली, "ऐसा जान पडता है, तुमसे प्यार करना पड़ेगा।"

कमला ने जवाब दिया, "प्यार लेकर अपना दर्द ही दे सकूँगी और मेरे पास क्या है?"

सुरैया ने उसी तरह कहा, "दर्द क्या यूँ ही दिया जाता है, मुझे

अपना समझोगी तभी न ?"

कहकर सुरैया ने भाभी को सलाम किया और चली गई। कमला मूर्तिवत् स्थिर ठगी-सी उसे देखती ही रह गई। कई क्षण बाद भाभी बोली, "बड़ी अच्छी लड़की है। मुसलमान भी इतने भले होते हैं।"

कमला ने कहा, "भाभी ! मुसलमान भी आदमी होते हैं।"

और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह बाहर चली गई।

६

कान्त ने फाइलों को मेज पर रख दिया और मुड़कर अपने साथी से कहा, "जी चाहता है सेठी साहब, इनमें आग लगा दूँ। लेकिन सोचता हूँ कि विष-वृक्ष के पत्ते नोचने से क्या होता है?"

सेठी मुस्कराकर बोला, "एक बात बताओगे, कान्त।"

"क्या ?"

"तुमने नौकरी क्यो की ?"

"और क्या करूँ ?"

"करते क्या ? सोचते ! सोचते कि इतना नन्हा-सा बीज इतने विशाल वृक्ष में कैसे पलट जाता है। कैसे भोला-भाला प्यारा शिशु एक दिन राक्षस का रूप धारण कर लेता है ? कैसे यह आसमान, कैसे यह धरती ··?"

कान्त बड़े जोर से हँस पड़ा, "बस करिये, मिस्टर सेठी।"

"बस करूँ। अभी से, अभी तो मैं पत्ते गिना रहा था, मिस्टर कान्त ! जड़ की बात······"

"जड की बात ?"

"जीहाँ, जड़ की बात यह है कि···" वह अपनी बात पूरी कर पाता कि

उनकी पत्नी सरला ने वहाँ प्रवेश किया। मुस्कराकर बोली, "जड की बात यह है कि मिस्टर कान्त, आप बहुत सोचते हैं। विवाह कर लीजिये न।"

कान्त ने पूछा, "उससे क्या होगा?"

"होगा क्या, उसकी रस-भरी बाते तुम्हें खुराफात सोचने का अवसर नहीं देगी।"

सेठी एकबारगी बोल उठे, "तुमने बिल्कुल ठीक कहा सरला! औरतें बडी जल्दी जड की बात समझती हैं। कान्त, अब तुम्हे शीघ्र ही विवाह कर लेना चाहिए और देखो मेरी बात मानो, पंजाबी लड़की से विवाह करो। पंजाबी लडकी जीना और जिलाना दोनो जानती है।"

कहकर मिस्टर सेठी ने सरला की ओर देखा। सरला मुस्करा पडी। बोली, "कहो तो लडकी ढूँढूँ।"

"ढूँढ सकती हो, पर एक शर्त है।"

"क्या?"

"लडकी मुसलमान होनी चाहिए।"

सरला ने हठात् उसे देखा, "क्या मुसलमान से शादी करोगे?"

"हाँ।"

"क्यो?"

"विज्ञान-शास्त्रियों का कहना है, दो प्रकार का रक्त मिल जाने से सन्तान सुन्दर, स्वस्थ और मेधावी होती है।"

सेठी अट्टहास कर उठा। बोला, "भई कान्त! मानते हैं तुम तत्त्व-दर्शी हो। पशु-शाला में रहते-रहते तुम्हारी बुद्धि कुछ-कुछ ऐसी हो गई है। ऐसे प्रयोग वहाँ अकसर होते रहते हैं।"

"सच कहता हूँ," कान्त ने उसी तरह हँसते हुए कहा, "आस्ट्रेलिया और बीकानेर की भेड़ों के परस्पर विवाह से जो सन्तान पैदा हो गई है, उसकी ऊन बहुत मृदुल और मनोरम है।"

सरला विद्रूप से बोली, "बड़े शरारती हो, लेकिन यह सब खुराफातें एक

दिन मे बन्द हो सकती हैं और मै करके रहूँगी। पर उठो अभी सिनेमा चलना है।"

"सिनेमा ?"

"हाँ, 'अछूत कन्या' फिर आ गया है, तुम्हारे मन की चीज है।"

कान्त बोला, "भाभी! वही कन्या तुम्हारे घर आ जाय तो ·?"

बात काटकर सरला बोली, "कैसी बातें करते हो, जो सिनेमा में दिखाया जाता है वह क्या सभी सच्चा होता है? कहानी आखिर कहानी है। उसे मान ले तो जिन्दगी की गाडी कैसे चले?"

× × ×

बात इंटरवैल की है। प्रकाश होते ही कान्त की दृष्टि एक नारी पर पडी। तुरन्त पहचान गया—यह नारी तो कम्पाउन्डर की पत्नी है और इसके पास जो सुन्दर बालक है वह अक्षय है। बस, मिस्टर सेठी को अचरज में डालता हुआ वह उठा। और उनके पास जाकर उसने पुकारा, "अक्षय!" आवाज पहचानकर विस्मित-विमुग्ध उस नारी ने कान्त को देखा। फिर मुस्कराकर बोली, "आप! आप प्रसन्न हैं।"

"जी खूब प्रसन्न हूँ। आप···"

पास जो पुरुष बैठा था, वह युवक ही जान पडता था। वह अचरज से कान्त को देख रहा था। अचानक बोल उठा, "आप कहाँ से आये हैं?"

उसके जवाब देने से पहले ही कम्पाउन्डर की पत्नी बोली, "ये मेरे पति है। यहाँ कृषि-विभाग के दफ्तर में काम करते हैं।"

पति से कहा, "अक्षय का संस्कार इन्होने ही करवाया था। बडे अच्छे लेखक हैं।"

कान्त ने बरबस मुस्कराकर उन्हे प्रणाम किया। वे भी मुस्कराये? बोले, "घर आइये न! खाना वहीं खाइये। आपके बारे में इन्होंने मुझे सब कुछ बता दिया था। कई बार आपका जिकर आया। मैं जानता हूँ आपको कोई संकोच नहीं होगा।"

कान्त ने कहा, "विश्वास रखिये, मैं आऊँगा।"

"मै जानता हूँ।"—वह उसी भोलेपन से बोला, "आपकी कहानियाँ बड़े चाव से पढता हूँ। कोई पुस्तक लिखी है आपने ?"

"जी नहीं, पुस्तक तो नहीं लिखी। समय नहीं मिलता।"

"मै जानता हूँ। मै भी क्लर्क हूँ।"

कान्त हँस पडा, "बेशक हम एक ही जाति के लोग हैं।"

बातें आगे बढ़तीं पर तभी रोशनी बुझ गई। कान्त लौटकर अपने स्थान पर आ बैठा। सेठी ने पूछा, "कोई मित्र हैं ?

"जीहाँ, उनकी पत्नी को जानता हूँ।"

सेठी ने व्यंग किया, "यह पत्नियों से आप कबसे मित्रता करने लगे ?"

कान्त ने कहा, "मित्रता मित्रता है, वह वर्ग-भेद स्वीकार नहीं करती।"

"फिर भी कौन हैं ?"

"कभी पुरखे पडित थे, दादा मुसलमान हो गये। पर प्रेम में पडकर यह फिर हिन्दू बन गई। पति कम्पाउन्डर थे। पुत्र के नामकरण संस्कार में मैं गया था। फिर ये लोग कहीं बदल गये। आज अचानक इसे देख पाया है। जान पडता है कुछ गोलमाल है।"

"क्या ?"

"पति बदल गया है।"

सेठी ने रस लेकर कहा, "क्या कहते हो ?"

"हाँ, वह कम्पाउन्डर नहीं है, कोई कृषि-विभाग का क्लर्क है।"

"सच ?"

"हाँ, उसने स्वयं बताया है, पर एक बात है।"

"क्या ?"

"नये पति की सूरत कम्पाउन्डर से मिलती है।"

"कौन लोग हैं ?"

"जाट।"

"ओ !" सेठी ने हँसकर कहा, "जान पड़ता है कम्पाउन्डर की मृत्यु हो गई है और साल बीत जाने पर कुल की रीति के अनुसार उसके छोटे भाई ने भाभी को अपनी पत्नी बना लिया है।"

आश्चर्य का दुर्भेद्य किला जैसे बालू के किले की तरह भरभराकर गिर पड़ा। कान्त ने संतुष्ट स्वर में कहा, "निस्सन्देह यही बात है।"

× × ×

उसी रात कान्त ने कमला को पत्र लिखा।

"प्रिय कमलाजी,

तुम्हारा पत्र मिला। ऐसा लगता है तुम्हारे अन्तर में कोई पीड़ा है। तुम्हारा साहस तुम्हारे अन्दर से नहीं फूट रहा है। कहीं ऊपर से तुम पर लादा जा रहा है। तुम एक सच्ची और कर्तव्य-परायणा शिष्या की तरह उसे पचा जाने का पूरा प्रयत्न कर रही हो। परन्तु कमला, जब तक वह साहस तुम्हारे रक्त में लीन नहीं हो जाता तब तक तुम शांति नहीं पा सकतीं। मैं तुम्हारी पीड़ा का स्रोत जानता हूँ, विशेषकर आज की परिस्थिति में तुम्हारे दुख का बढना स्वाभाविक है। उसे स्वाभाविक मानकर ही उससे मुक्ति मिल सकती है। अस्वाभाविकता का अर्थ दमन है और दमन पीड़ा दूर नहीं करता, बढाता है।

आज अचानक एक नारी से मिलना हो गया। बहुत दिन हुए जब मैं तुम्हें पढ़ाता था, उससे भी पहले उसके पुत्र के नामकरण-संस्कार में मैं गया था। वह मुसलमान थी। हिन्दू के प्रेम में पड़कर उसने धर्म का त्याग कर दिया। वस्तुतः उसके लिए बाहरी धर्म कोई मूल्य नहीं रखता था। मनुष्य का जो धर्म है उसी को वह जानती-पहचानती रही। हिन्दू समाज का लांछन सह कर भी वह अडिग रही। दम्भ मैंने उसमे नही पाया, पर आज मैंने उसे दूसरे पति के साथ देखा। यह वह नहीं था जिसके पुत्र का नामकरण-संस्कार मैंने कराया था। जान पड़ता है उसके पति की मृत्यु हो गई है और चूँकि वे जाट हैं इसलिए जाति-प्रथा के अनुसार उसके देवर ने उससे विवाह कर

लिया है। शायद तुम इसे उचित न समझो। शायद तुम्हारी पवित्रता की भावना को भी ठेस पहुँचे, परन्तु मुझ पर जो प्रभाव पड़ा है, वह इतना मुक्त है कि उसमें अपवित्रता की छाया मैं कहीं नहीं देख पाता। नदी मुक्त है तभी उसमें पवित्रता है। तालाब बन्द है तभी वह सड़ता है। समय और काल में अन्तर है। नियम के प्रति विद्रोह अनियमता नहीं। अनाचार पाप है, पर आचार को जाने बिना उसके नियमों का पालन करना अनाचार से भी बुरा है। कल मैं उनके घर खाना खाने जा रहा हूँ। उसके बाद फिर लिखूँगा।

और क्या समाचार है? कुमार तो अब घर आने वाला होगा। हबीब साहब की बात सुनकर बड़ी खुशी हुई। उनकी बहन का तुमने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। मुझे आशा है तुम्हारी मित्रता गहरी होगी। उनसे सामाजिक तल पर मिलकर ही हम हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को हल कर सकते हैं। उन सबको मेरी याद दिलाना।

अपनी माताजी, मेरी माताजी, हबीब साहब, पंडित मेलाराम, कुमार, धर्मपाल, सुरैया सभी को मेरा प्रणाम कहना। मेरे आने का कुछ पता नहीं। वे ही प्रश्न हैं, सुलझेंगे तो वे हैं नहीं, क्योंकि सब अधिक उलझाने की होड़ में लगे हैं। उनके लिए तो क्रांति ही एक-मात्र साधन रह गया है।

पत्र लम्बा हो गया। मन में जो कुछ भर जाता है उसे समझाने के लिए मेरा कौन है। तुम कुछ समझती हो इसीलिए लिख बैठा हूँ। इसके लिए मैं क्षमा नहीं चाहता, न खेद प्रकट करता हूँ बल्कि तुम्हें धन्यवाद देता हूँ। तुम्हारे कारण इतने समय का सदुपयोग हो सका। प्रणाम करता हूँ।

तुम्हारा—

मास्टरजी"

तभी आ गई सरला। हाथ में दूध का गिलास था और मुख पर मुस्कान। कहने लगी, "हर वक्त पढ़ते-लिखते रहते हो!"

कान्त भी मुस्कराया, "और क्या करूँ?"

"करने को कुछ कमी है? कुछ खेलो-खाओ, हँसो-बोलो।"

"मैं क्या हँसता-बोलता नहीं ?"

"कहाँ ! हर वक्त ज्ञान बघारते रहते हो, मानो शुकदेव तुम ही हो। न जाने तुम्हारी माँ कैसी कठोर है ?"

कान्त ने दृष्टि उठाकर कहा, "कठोर नहीं भाभी ! मेरी माँ मोम की तरह कोमल है। वह तो मैं हूँ।"

"आखिर क्यों ? क्या विवाह न करने की प्रतिज्ञा की है ?"

"नहीं।"

"तो फिर क्यों नहीं करते ? एक-से-एक सुन्दर और सुघर लड़की तुमसे शादी करने को तैयार हो सकती है।"

दूध पीता-पीता कान्त हँस पड़ा। बोला, "सच भाभी !"

"तुम बस 'हाँ' कर दो।"

कान्त निश्वास खींचकर बोला, "बस भाभी, यहीं आकर अपनी गाड़ी अटक जाती है। शब्द गले से ऊपर आता ही नहीं। कभी-कभी इतनी झूँझल उठती है कि सोचता हूँ अब शादी नहीं करूँगा। पर जब किसी सुखी परिवार को देखता हूँ तो मन मचल उठता है। कई दिन से सोच रहा हूँ कि भाभी जैसी पति-परायणा, सन्तान को प्रेम करने वाली, सरलहृदया नारी मिल जाय तो · "

कान्त ने बात बीच में रोककर भाभी की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। वे मुस्करा रही थीं। बोलीं, "सच कहते हो ?"

"हाँ।"

"तो बताऊँ ?"

"क्या ?"

"मेरी बहन है।"

"आपकी बहन।"

"हाँ, आठवीं पास है। प्रभाकर में बैठ रही है, मुझ से सुन्दर है। जात-पात की न तुम परवा करते हो, न हम। मेरे पिता भी आर्यसमाजी हैं। माँ

नहीं है। घर का सब काम सुशीला ही करती है।"

कान्त ने अचरज से भाभी को देखा। हँसी में जो बात कही गई थी उसका परिणाम इतना स्पष्ट हो उठेगा, यह उसने नहीं सोचा था। कई क्षण गिलास हाथ में लिये स्तब्ध मौन बैठा रहा, फिर बोला, "भाभी, विवाह करते समय आपकी इस कृपा को भूलूँगा नहीं, पर अभी तो···"

सरला ने तुरन्त कहा—"वह तो मैं जानती हूँ। अपनी माँ से सलाह करनी होगी। मैं भी पिताजी को लिखूँगी। बात तो वे ही करेंगे।"

और फिर वह मुस्कराती हुई पति के पास पहुँची, बोली, "मैंने कान्त से सुशीला के विवाह के बारे में कहा था।"

"हाँ तो···"

"कहने लगा, माँ से सलाह करके लिखूँगा। लगता है वह राजी है। क्यों न सुशीला को बुला भेजूँ!"

"देख लो।"

"नहीं जी, तुम कल तार दे दो।"

मिस्टर सेठी को नींद आ रही थी, बोले, "अच्छी बात है; पर तुम सोच-समझ लो। ईसाई-मुसलमान से उसे कोई परहेज नहीं है।"

सरला ने कहा, "आजकल सभी ऐसे हैं। विवाह हो जाने पर शीला सब कुछ ठीक कर लेगी। उसमें कोई और ऐब तो है नहीं। न सिगरेट पीता है न चाय। शतरंज तक नहीं खेलता। ऐसे सीधे आदमी को राह पर लाना बहुत कठिन नहीं है।"

सेठी ने मुस्कराकर धीरे से इतना ही कहा, "मुझ में क्या कोई ऐब था, जो मैं आज तक राह पर नहीं आया हूँ।"

सरला हँस पड़ी, "तुम्हारी और बात है।"

और फिर बातें इतनी अस्पष्ट होती गईं कि कुछ ही क्षणों में वे दोनों शून्य में लीन हो गये।

: ६ :

अगले दिन कान्त और सेठी बहुत जल्दी दफ्तर पहुँच गये। उन्हें जाति और धर्म के अनुसार गोशवारे तैयार करने थे और वे लोग कुछ निर्णय कर लेना चाहते थे। कान्त के पास सब अङ्क तैयार थे। तो उसने शीघ्र ही गोशवारा बना डाला; पर सेठी को वह ठीक नहीं लगा। उसने कहा, "देखो मि० कान्त! अंको का प्रयोग एक विद्या है। सरकार की नीति के अनुसार मुसलमानों को पचास प्रतिशत, सिक्खों को बीस प्रतिशत तथा अन्य जातियों को तीस प्रतिशत नौकरियाँ मिलनी चाहिएँ। इनमे ६६ प्रतिशत कृषि करने वालों को, शेष दूसरों को जानी चाहिएँ·"

कान्त बोला, "मैंने भी तो यही दिखाया है।"

"ठीक है, परन्तु मि० कान्त! तुम्हारे अंक बताते हैं कि मुसलमान और कृषक लोग बहुत कम हैं।"

"वे हैं ही कम तो मैं क्या कर सकता हूँ?"

सेठी मुस्कराया, "पर वे सभी विभागो में तो नहीं हैं।"

"आपका मतलब?"

"मेरा मतलब साफ है। टेकनीकल विभाग में मुसलमान नब्बे प्रतिशत हैं और व्यवस्था-विभाग में भी वे बहुमत में हैं। मजदूर लोग प्रायः सभी कृषक जाति के हैं। इन सबको अलग-अलग दिखाना चाहिए और तुमने अस्थायी अधिकारियों की कोई चर्चा नहीं की है।"

"नहीं।"

"यही तो। उनमें मुसलमान और कृषक जाति का प्रबल बहुमत है। उनका दिखाना आवश्यक है। उन्हीं अंको से हम प्रमाणित कर सकेंगे कि हम सरकारी नीति को किस रीति से व्यवहार में ला रहे हैं।"

कान्त के मस्तिष्क में प्रकाश होता चला गया। मुस्कराकर बोला—"मि० सेठी, तुम अपने काम मे बड़े चतुर हो।"

सेठी हँस पड़ा, "किसान को सभी बुद्धू कहते हैं, परन्तु कृषि-विज्ञान

में वह हम सबको पाठ पढा सकता है।''

''निस्संदेह !'' कान्त ने कहा, ''मै अभी ठीक किये देता हूँ।''

वह फिर मेज पर झुक गया और दफ्तर में चहल-पहल बढने लगी। पर वे सबसे दूर थे। एक बार आफिसर का निजी मंत्री आया और सब पत्र ठीक रखने की चेतावनी देकर चला गया। फिर दफ्तर के अध्यक्ष मि० तनेजा आये। बोले, ''मि० कान्त, तुम तैयार हो।''

''जीहां।''

''देखो, मि० कान्त सरकार अब दृढ़ता से काम लेगी, तुम्हें सजग रहना चाहिए। और फिर धीरे से कहा, ''मै समझता हूँ। शीघ्र तुम लोगो का तबादला होने वाला है।''

कान्त मुस्कराया, ''मैं जानता हूँ। वे मुझे हटाना चाहते हैं।''

मि० तनेजा हँस पडे, ''तो तुम जानते हो। लेकिन प्रश्न मुसलमानों का ही नही है, जाट उनसे भी तेज हैं—। कैबिनेट मे जितनी उनके मंत्री की चलती है उतनी किसी और की नहीं। शीघ्र ही नये-नये कानून बनने वाले हैं; लेकिन कुछ भी हो, मेरे रहते तुम लोगो का कुछ नहीं हो सकता।''

कान्त के मन मे कहने को बहुत कुछ था; परन्तु बडे दफ्तर के बडे बाबू से बहस करने का साहस उसमें नहीं था। वह विनम्र स्वर में बोला, ''आपके रहते हम सब सुख की नींद सोते हैं।''

तनेजा ने गर्व से भरकर कहा, ''मि० कान्त, यह सब ठीक है, परन्तु अकेला चना कब तक भाड फोड़ता रहेगा ! मुझे तुम सब लोगों के सहयोग की आवश्यकता है और इस बात की भी आवश्यकता है कि उन लोगो में से कुछ लोग हमारे साथ रहें।''

मि० सेठी जो अब तक अंकगणित में व्यस्त थे, बोले, ''ऐसे लोग तो हमारी ओर ही हो सकते है। वे तो हमसे सामाजिक व्यवहार तक नहीं रखते !''

मि० तनेजा ने उसी दृढ़ता से कहा, ''तुम भूलते हो मि० सेठी ! मुसलमान

व्यवहार में बहुत कुशल होता है। यह तो हम हैं जो उनसे कतराते हैं।"

सेठी ने मुस्कराकर कान्त की ओर देखा, बोला, "इस विषय में मि० कान्त बहुत आगे हैं। यह तो मुसलमान, ईसाई, भंगी सभी के घर खाना खा लेते हैं।"

"ठीक है," तनेजा ने कान्त का समर्थन किया, "ऐसा न करेंगे तो हिन्दू जीवित न रह सकेंगे। शेर को माँद में आसानी से पछाड़ा जा सकता है। चाणक्य की नीति जिस दिन से हमने छोड़ी है, उसी दिन से देश का भाग्य सोया है।"

सहसा कान्त बोल उठा, "हाँजी वह शेख साहब का क्या हुआ?"

मि० तनेजा ने कहा, "उनसे कह दीजिये इस बार वे खाँसाहब बन जायेंगे।"

कान्त प्रसन्न होकर बोला, "वह आदमी कुछ भला है।"

"तभी तो," धीरे से तनेजा ने कहा, "मैंने कोशिश करके उन्हें उपाधि दिलवादी है। नहीं तो पाँच साल तक नाम दफ्तर मे अटकाये रखना मेरे बायें हाथ का काम है। और रही भले होने की बात। मतलब सबको भला बना देता है।"

तभी चपरासी ने आकर सलाम किया, "हुजूर! साहब सलाम देते हैं।"

मि० तनेजा शीघ्रता से उठे। बोले, "कहो, आता हूँ।"

और फिर सभी कागज सँभालकर अन्दर चले गये।

कान्त दोपहर तक गोशवारे बनाता रहा। बस खाने के लिए ही उठा, लेकिन जब वह टिफिन के कमरे मे गया तो सेठी वहाँ नहीं था। उसका साथी रहमान था, उसने मुस्कराकर कान्त से कहा, "खाइयेगा?"

"खिलाओगे तो क्यों नहीं खाऊँगा।"

और मुस्कराकर उसने रोटी का एक टुकड़ा तोड़ लिया, दो कौर खाया था कि भागा-भागा चपरासी आया, बोला, "साहब जा रहे हैं, जल्दी चलिये।"

और उसने देखा—कान्त मि० रहमान की रोटी खा रहा है।

उस दिन चपरासी ने बाबू लोगों से और बाबू लोगों ने अपनी पत्नियों से कहा—यह जो कान्त बाबू हैं, यह बड़े सरभंगी हैं। मुसलमान के घर का पका खाना खा लेते हैं। माना उनका छुआ खा लेने में पाप नहीं है पर उनके घर का पका हुआ खाना खाना तो भ्रष्टाचार है।

सरला ने सुनकर सेठी से कहा, "अभी तार न दीजिये। कान्त तो बहुत ही उच्छृंखल जान पड़ता है।"

सेठी बोला, "बनता बहुत है।"

"हाँ, कौन जाने कल को क्या हो? शीला को दुख पहुँचा तो मेरी बद्-नामी होगी।" और फिर साँस लेकर कहा, "वैसे तो बड़ा भला लगता है।"

सेठी ने धीरे से कहा, "मुझे तो अब सन्देह होता है।"

"कैसे?" सरला ने उत्सुक होकर पूछा।

"स्त्रियों से उसकी बड़ी दोस्ती है। आज जहाँ खाना खाने गया है वहाँ भी वह स्त्री को जानता है। घर पर वह किसी कमला नाम की नारी को पत्र लिखा करता है।"

सरला नारी थी, विश्वास से बोली, "आप ठीक कहते हैं। तभी वह विवाह करने से इन्कार करता है।"

सरला का मन खट्टा हो गया। उसने बड़ी आशायें बाँधी थीं। और नारी की आशायें जब भंग हो जाती हैं तो वह क्षमा करना नहीं जानती। क्षण भर में कान्त उसका शत्रु हो गया पर शुकर यही था कि वह सामने नहीं था। उस समय वह कम्पाउण्डर-पत्नी से उसके जीवन की कहानी सुन रहा था। सुनते-सुनते उसने पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"राजरानी।"

"नहीं, असली नाम।"

"असली नाम···" वह हठात् काँपी।

"हाँ, मैं वह नाम जानना चाहता हूँ, जो तुम्हारे माँ-बाप ने दिया था।"

उसकी मुख-मुद्रा सहसा फिर गम्भीर हो उठी, बोली, "वह नाम तो फातिमा था। परन्तु फातिमा तो कभी की मर चुकी।"

कान्त ने धीरे से कहा, "सच ?"

"देख नही रहे हो।"

"देखने में तो अक्सर धोखा हो जाता है।"

राजरानी ने गहरी दृष्टि से कान्त को देखा, फिर बोली, "आप क्या मानते हैं ?"

"मैं," कान्त ने दृढ़ता से कहा, "मैं मानता हूँ कि फातिमा राजरानी न होकर सदा फातिमा बनी रहती।"

"ऐसा कैसे हो सकता था ? तब तो उसका भाग्य फूट जाता और ..."

बात काटकर कान्त ने धीरे से कहा, "पहले मेरी बात का जवाब दो। मैं पूछता हूँ कि राजरानी बन जाने पर क्या तुम्हारे नारीत्व में कोई अन्तर पडा है ?"

"नहीं तो।"

"तो फिर ?"

"देखिये आप सामाजिक व्यवस्था की बात भूल जाते हैं।"

"नहीं, मैं उसे भूल नहीं रहा," कान्त ने धीरे से कहा, "मैं उसी को दृष्टि में रखकर कहता हूँ। कल्याण तभी होगा जब तुम फातिमा बनकर इस घर में रह सकोगी। मै ऐसा ही समाज चाहता हूँ।"

राजरानी के हृदय में श्रद्धा का गहरा उफान उमड़ उठा। बोली, "आप क्या कह रहे हैं ? आपके समाज मे मैं आज भी बहिष्कृत हूँ।"

"यह मैं जानता हूँ। पास-पड़ौस वाले तुम्हारे घर का पानी भी नहीं पीते होंगे।"

"नही पीते और सामाजिक उत्सवों में इस बात का ध्यान रखते हैं कि मैं अछूत को तरह दूर ही रहूँ।"

"और तुम सह लेती हो।"

राजरानी धीरे से बोली, "सहने को आदमी क्या नहीं सहता। उनकी मृत्यु के बाद क्या मै कल्पना कर सकी थी कि मैं फिर से विवाह करूंगी। मैंने उनसे औरो की तरह विवाह नहीं किया था। मैने स्वयं उनका हाथ पकडा था। फिर भी मै उन्हे भूल गई।"

उसके नयन जल से पूर्ण थे और लैम्प का प्रकाश उस जल पर तैरने लगा था। कान्त बोला, "मै इस बात को इतना महत्व नही देता। भावना क्षणिक होती है। वह आदमी को जीवित नही रख सकती। दूसरे पति का वरण तुम्हारा उचित अधिकार था।"

राजरानी ने कहा, "मै अधिकार की बात नहीं कहती। निमोनियाँ से जब उनकी मृत्यु हो गई तो उन लोगो ने मुझे घर से निकाल दिया था। गोद के बच्चे को लेकर कडाके की शीत मे मुझे कहाँ-कहाँ नहीं भटकना पड़ा। मैं पत्नी ही नहीं, माँ भी थी। और माँ अपने बच्चे को बचाना चाहती थी। जब कुछ नही बना तो मैंने अपने पिता का ध्यान किया। मै मानती हूँ कि मुझे हिन्दुओं से नफरत होने लगी थी यहाँ तक कि मै मुसलमान होने को तैयार हो गई। तभी आर्य-समाज वालो को मेरा पता लगा। वे मेरे पास आये। मैंने उनसे पूछा, 'क्या आपके समाज में मेरे लिए सम्मान से जीने का कोई मार्ग है?' उनमे एक सन्यासी थे। उनका शरीर विशाल था। गेरुए वस्त्रों में वह गौरीशंकर के समान सुन्दर लगते थे। वे बोले, 'बेटी, तुम्हे विवाह कर लेना चाहिए।"

"मैने उनकी आँखों मे देखा। वे करुणा से, ज्ञान से छलछला रही थीं। मैं साहस से भरती चली गई। उनके चरण पकडकर मैने कहा, "मै आपकी शरण हूँ।"

उन्होने धीरे-धीरे मेरे सिर पर दो-तीन बार अपना हाथ रखा, बोले, "चिन्ता मत करो। तुम्हारा कल्याण होगा।"

"कहते हैं कि सन्तों की वाणी में भविष्य बोलता है। उनका एक भाई जो

दक्षिण में रहता था, मुझे खोजता हुआ यहाँ आ निकला। उसने अपने पास रखने का विश्वास दिलाया। सन्यासी ने तब यही कहा, "अग्नि की प्रदक्षिणा करके तुम राजरानी को अपनी सहधर्मिणी स्वीकार कर लो। यही सबसे विश्वसनीय मार्ग है।"

"और वही हुआ जो उन्होंने कहा था। मुझे उनके शब्द आज भी अच्छी तरह याद हैं—'बेटी! दुनिया में बड़ी फिसलन है, और उसका कारण अवैज्ञानिक त्याग और संयम है। भोग के बाद त्याग आता है। जब तक भोग ही न हो पाये तो त्याग किसका करोगे। ब्रह्मचर्य एक महान् आदर्श है परन्तु जितना महान् है उतना ही दुष्प्राप्य भी है। वह हर एक के लिए नहीं है।"

यहीं आकर बात रुक गई। पिता के साथ बाजार से अक्षय लौट आया था। उसे देखकर राजरानी भी दुनिया में लौटी। बोली, "दही ले आये, राजा?"

"दही और···" अक्षय दौड़कर पास आ गया।

"और क्या रे?"

"कान में कहेंगे।" और कान के पास मुँह ले जाकर उसने धीरे से कहा, "रसगुल्ला!" फिर हँस पड़ा, "उठो माँ, हमको भूख लगी है।"

वह भी हँसी, "हाँ रे, मैं तो भूल गई। चल, अभी रोटी बनाती हूँ।"

वह चली गई। कान्त ने सहसा सोचा, देखने मे जो इतना साधारण है, उसके भीतर कितनी असाधारणता भरी पड़ी है। कोई नहीं जानता। जानना चाहता ही नहीं···"

तब उसका मन बहुत कुछ सोचने को करने लगा लेकिन राजरानी के पति पास बैठे थे।

इसीलिए दूसरे ही क्षण वह उनसे बातो में रम गया। तब तक रमा रहा जब तक अक्षय ने आकर खाना तैयार हो जाने की सूचना न दी।

× × ×

उस रात कान्त जब लौटकर मि० सेठी के घर आया तो बहुत देर हो चुकी थी। भाभी अन्यमनस्क भाव से उसकी राह देख रही थी। वह बहुत कुछ

कहना चाहती थी। पर न जाने क्यों उससे बोला नहीं गया। धीरे से इतना ही कहा, "दूध ले आऊँ ?"

"नहीं भाभी, इतना खाया है कि दूध के लिए जगह नहीं।"

भाभी मुडी और मुड़ते-मुड़ते पूछा, "कल जा रहे हो ?"

"हाँ भाभी।" फिर पूछा, "सेठी साहब सो गये क्या ?"

"हाँ वह तो कभी के सो गये।"

"ओहो, तब तो आज आपको बडा कष्ट हुआ।"

"कष्ट काहे का था ?"

"नहीं भाभी, आप लोगो को बड़ा कष्ट दिया। पर आप इतनी अच्छी हैं कि क्या धन्यवाद दूँ। सचमुच माँ की जाति की आप लोग न होतीं तो पुरुष कैसे जीता ?"

भाभी हठात् हँस पड़ी, "क्या इस बात का पता तुम्हे आज ही लगा है ? क्या नाम है उस कम्पाउण्डर पत्नी-का ?'

"राजरानी।"

"बडा सुन्दर नाम है। उसी ने तुम्हे यह सीख दी है शायद ?"

कान्त हँस पड़ा, "आप और उस जैसी नारियों से सीख पाना मेरे भाग्य मे नही लिखा भाभी। पर यह सब देख-सुनकर किसी से सीख पाने का लालच अवश्य हो आता है। अच्छा भाभी, आशीर्वाद दो कि भगवान मुझे सुमति दे।

भाभी हँसते-हँसते सहसा रुक गई। उसका मन कुछ भीग आया था। और उसे लग रहा था कि कुछ भी हो सुशीला के लिए कान्त से बढ़कर और कोई वर नही है।

: १० :

कुमार के घाव भर चले थे। वह उठ बैठ सकता था और बातें करने में भी विशेष पीड़ा नहीं होती थी। एक दिन स्कूल से लौटकर कमला बोली, "अब घर चलो।"

कुमार ने जवाब दिया, "हाँ, डाक्टर से कहूँगा। सोचता हूँ कि कुछ दिन अपने गाँव हो आऊँ।"

कमला बोली, "अभी गाँव नहीं। अभी मेरे घर चलो।"

"तुम्हारे घर, क्यों?"

"मास्टरजी ने लिखा है।"

"पर कमला, यह कैसे हो सकता है? मेरा अपना घर है।"

कमला ने धीरे से कहा, "मुझे कुछ पता नहीं। जहाँ तुम्हे आराम हो वहीं रहो। मेरे घर रहने का बस एक ही लाभ था कि दवा ठीक समय पर मिल जाती।

कुमार बोला, "जैसा तुम उचित समझो, करो। हाँ, किसी को कुछ कहने का अवसर नहीं मिलना चाहिए।"

"किसी से आपका क्या आशय है?"

"दुनिया।"

"दुनिया का काम तो कहना है," कमला ने धीरे से कहा, "उसकी चिन्ता सुरसा के मुँह की तरह सर्वग्रासनी है।"

और वह चली गई। शाम को कुमार ने डाक्टर से जाने के बारे में पूछा तो उन्होंने तुरन्त कहा, "आप आज जा सकते हैं। मिसेज कमला के रहते मुझे कोई चिन्ता नहीं।" कुमार बोला, "नहीं जानता उनकी कृपाओं का बदला चुकाया जा सकेगा या नहीं।"

डाक्टर ने कहा, "ट्रेन्ड नर्स से अच्छा काम करती हैं। एक दिन मुझसे ट्रेनिंग के लिए पूछ रही थीं। आवश्यकता हो तो मैं प्रबन्ध कर सकता

हूँ । वह बहुत निपुण नर्स बनेगी ।"

"मैं पूछ लूँगा पर इसके लिए उसके मास्टरजी की आज्ञा लेना आवश्यक होगा ।"

"यह मास्टरजी कौन हैं ?"

"मिस्टर कान्त को आप नहीं जानते ?"

"अच्छा, वह नवयुवक जो पहले दिन आया था ।"

"जी हाँ, बिना उनके कहे वह कुछ नही करती । देवता की तरह पूजती है ।"

डाक्टर मुकर्जी फिर हँसे, बोले, "मि० कुमार ! नारी का स्वभाव हो पूजा करने का है । वह किसी को अपना बनाना चाहती है । वह अधिकार चाहती है । पुरुष अधिकार चाहता है शासक बनकर, लेकिन नारी सेवक बनकर शासन करना चाहती है । वह पुरुष से अधिक खतरनाक है और इसीलिए प्रिय भी है ।"

कुमार ने प्रभावित होकर कहा, "डाक्टर ! तुम्हारी अनुभूति गहरी है । कान्त से बातें करके तुम्हे प्रसन्नता होगी । उसके आने पर तुमको बुलाऊँगा । आओगे न ?"

"क्यों नहीं आऊँगा ।"

तभी कमला फिर लौट आई । डाक्टर से बोली, "क्यों डाक्टर ! हम आज जा सकते हैं ?"

"आज नही, कल जाइये ।"

"कल सही, और डाक्टर, यह बाहर कब तक जा सकेंगे ?"

"अभी दो हफ्ते ठहर जाइये ।"

"मै कहती थी कि मेरी दो महीने की छुट्टियाँ हैं । मुझे बाहर जाना ही है । मास्टरजी ने इनको मंसूरी ले जाने को लिखा है ।"

डाक्टर मुस्कराया, "मास्टरजी यानी मि० कान्त !"

"जी हाँ ।"

"तो बडे शौक से जाइये । आपको भी फायदा होगा ।"

कमला ने गरदन उठाकर डाक्टर को देखा । वह मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे । कमला सहसा लजा उठी । परन्तु कुमार ने उस ओर ध्यान नहीं दिया । इसी समय बाहर से आवाज आई, "क्या हम आ सकते है ?"

"आइये-आइये," डाक्टर ने कहा ।

हबीब साहब और सुरैया आये थे । सुरैया वहीं ठिठक गई । हबीब साहब ने पास आकर कहा, "कुमार साहब, कैसे मिजाज हैं ?"

"कल घर जा रहा हूँ ।"

"सच ! खुदा का शुक्र है । तो लो फिर इसी बात पर मैं भी आपको एक खुशखबरी सुना दूँ ।"

"क्या '"

"उस झगड़े का फैसला हो गया ।"

"क्या हुआ ?"

"सरकार ने डिप्टी साहब को कह दिया है कि आइन्दा ऐसा करोगे तो तुम्हारी पेन्शन बन्द कर दी जायेगी और चबूतरे के लिए उन्होंने फैसला किया है कि जो चबूतरे सरकार की सूची में हैं वे ही रहेंगे । जो नये हैं वे गिरा दिये जायेंगे ।"

इस निर्णय से सब प्रसन्न हुए । डाक्टर चले गये थे । कमला भी सुरैया के साथ भाभी के पास चली । रास्ते में बोली, "तब से आज आई हो सुरैया बहन ! क्या बिल्कुल भूल गयी थीं ?"

सुरैया मुस्करायी, "भूलती तो आज कैसे आती । सोच रही थी इंतजार के बाद जाना अच्छा है । मुहब्बत गहरी होती है ।"

कमला हँस पड़ी, "तब तो कभी न आना अच्छा है ।"

"है तो, पर अभी हमारी मुहब्बत उस मयार तक नहीं पहुँची, जहाँ एक दूसरे को बिना देखे जी सकें ।"

कमला ने पूछा, "ऐसी मुहब्बत क्या दुनिया में होती है ?"

"क्यों नहीं ?"

"शायद तुम्हारे उनमें और तुम में ऐसी मुहब्बत हो चली है ।"

सुरैया शरारत से हँसी, "मेरे उनसे तुम्हे बड़ी हसद जान पड़ती है, पर तुम तो हिन्दू हो। तुम्हे उनसे क्या ?"

कमला कुछ जवाब दे कि कमरा आ गया। भाभी सुन्दर को लिये बैठी थी। देखकर उठी, बोली, "आओ बहन !" सुरैया ने अदब से सलाम झुकाया, फिर सुन्दर को पकड़कर बोली, "सुन्दर मियाँ ! क्या बना रहे हो ? बज्जी चलोगे ?"

लेकिन सुन्दर मुस्कराकर भाग गया। सुरैया बोली, "अब तो आपके देवर साहब अच्छे हो गये हैं ।"

भाभी ने कहा, "हाँ बहन, भगवान की कृपा से दूसरा जन्म हुआ है।"

"खुदा अपने बन्दों की हमेशा मदद करता है ।"

"जी, यह तो है ही ।"

"आज जा रही हो ?"

"हाँ बहन, आज जायेंगे। कमला बहन कहती है, मेरे घर चलो। मैं तो कुछ जानती नही। अपने घर गई तो इन्हें तकलीफ होगी। इन्हीं की वजह से आज का दिन देखा है, और सच तो यह है कि हमारा तो जीना ही इनके सहारे है ।"

सुरैया शरारत से हँसी, "इनके सहारे न जाने कौन-कौन जीता है ?"

कमला हँसी, "तुम अपनी कहो न। तुम्हारे सहारे कौन-कौन जीता है ?"

"कोई भी नहीं ।"

"झूठ ।"

सुरैया लजा गई, "हटो जी, तुम तो बड़ी शरारती हो ।"

"तुमसे कम ।"

भाभी सहसा बोली, "तुम बैठी हो, मैं कुमार को देख आऊँ ।"

"हाँ, हाँ देख आओ ।"

वे चली गईं तो कमला सुरैया के बिल्कुल पास आ बैठी। बोली, "सच बताओ तुम्हारे सहारे कोई नहीं जीता?"

"कोई नहीं।"

"वे भी नहीं।"

"वे कौन?"

"जैसे जानती हीं नहीं, वे, वे जी।"

"हटो भी।"

"क्या करते हैं? बताओ न, अब तो कोई नहीं है।"

सुरैया का मुख लाज से लाल हो उठा, बोली, "वकील हैं।"

"तुमने देखा है।"

"मेरे मामू के लड़के हैं।"

"अरे हाँ, तुम लोगो में तो सिर्फ मा का दूध छोड़ा जाता है।"

"हाँ बहन! हम लोगों में इसी तरह होता है पर मुझे तो तुम्हारा रिवाज अच्छा लगता है। तुम लोग दूर को कितना पास खींच लाती हो।"

कमला मुस्कराई, "तो क्या वे अच्छे नहीं लगते?

सुरैया बोली, "अच्छे क्यों न लगेंगे।"

"खूबसूरत हैं?"

"बहुत।"

"तुम्हारी नजरों में या असलियत में?"

"क्या मतलब?"

"मतलब पूछती हो जवानी की आँखे खूबसूरती का कुछ और मतलब लगाती हैं, सुरैया!"

सुरैया की दृष्टि उठी। उसके सुन्दर मुख पर रक्तिम आभा फैल रही थी। वह क्षण भर उसे देखती रही। फिर बोली, "ऐसी बात है तो मुझ से क्या पूछती हो? देखकर तुम खुद फैसला कर लेना।"

कमला का अन्तरमन सहसा काँप उठा, पर ऊपर से उसी तरह शान्त,

मुस्कराती हुई वह बोली, "मेरे फैसले से क्या होता है ? तुम्हें खूबसूरत लगते हैं, यही अच्छा है। पर शायद तुम मेरा मतलब नहीं समझीं।"

"क्या ?"

"मैं उनके स्वभाव के बारे में पूछना चाहती थी। मेरी दृष्टि मे शारीरिक सौन्दर्य से बढकर आत्मा का सौन्दर्य होता है। आत्मा अर्थात् रूह..."

"जानती हूँ बहन.... !"

"ओ !"—कमला लजा गई, "तुम तो हिन्दी जानती हो।"

"जीहाँ, भइया के एक गुरु थे। पहुँचे हुए आलिम थे। कहा करते थे हिन्दू लोगो का ज्ञान बड़ा गहरा है। उसकी थाह लेने के लिए उनके पास जाना होगा और यह हो सकता है उनकी भाषा पढ़ने से।"

"तो तुम्हारे वे भी हिन्दी जानते हैं ?"

"संस्कृत भी।"

"सच ?"

"हाँ बहन ! उन्होने संस्कृत में डाक्टर की पदवी ली है।"

"विश्वास नहीं होता।"

"ठीक कहती हो बहन। उनकी सारी बातें यकीन आने वाली नहीं है। वे तीन बार जेल हो आये हैं। उनकी पहली पत्नी जर्मन थी। वे धर्म-परिवर्तन में विश्वास नहीं रखते। और अब वे मार्क्सवादी होते जा रहे हैं।"

कमला का मन अचरज से भर आया। सुरैया की कमर में हाथ डाल कर उसे अपने पास खींचती हुई बोली, "तुम सौभाग्यवती हो, तुम्हें स्वर्ग मिला है।" फिर कहा, "जेल तो हबीब साहब भी हो आये हैं।"

"हाँ दो बार गये थे। गांधीजी के भक्त हैं।"

"और तुम।"

"ना बहन ! मै तो नहीं गई। भैया ने मना कर दिया। बड़ा जी करता था पर तड़पकर रह गई। भैया काफी उदार हैं, पर धर्म के बारे मे पुराने विचार रखते हैं।"

"मै जानती हूँ," कमला ने कहा, "पर अब तो तुम्हे बहुत मौके मिलेगे।"

"हाँ बहन ! मुझे इस बात की खुशी है कि अब खुलकर देश का काम करूँगी, परदे का झंझट नहीं रहेगा।"

कमला बोली, "पर बुरका तो तुम्हे अच्छा लगता है।"

"अच्छा लगता है तो तुम ले लेना। मुझे कोई एतराज नहीं है।"

और कहकर वह मुस्करा उठो। कमला भी हँसी।

तभी भाभी लौट आई। कमला ने देखा, वह दुखी हो रहो थीं जैसे कोई काली छाया बार-बार मुख पर आना चाहती हो। आते ही वह सँभलकर बोली, "बहन ! आपको बुलाते हैं।"

सुरैया ने कहा. "मुझे !"

"कमला को भी।"

दोनो उठीं। सुरैया ने एक बार फिर सुन्दर को थपथपाया, बोली, "मेरे साथ चलते हो ?"

सुन्दर ने उसी दृढता से कहा, "नहीं।"

"अच्छा भाई न चलो। हम तो जाते हैं। सलाम भाभी।"

भाभी मुस्कराईं, "नमस्ते !"

वे लौटी। हबीब राह देख रहे थे। सुरैया कमला को घर आने का निमंत्रण देकर उनके साथ चली गई।

कमला अकेली अन्दर पहुँची। धर्मपाल लौट आया था और फल छील रहा था। कमला को देखकर बोला, "आपको माँजी बुला रही थीं। कोई आया है।"

कमला का मुख विवर्ण हो उठा। कौन आया है यह वह जान गई पर तभी कुमार ने कहा, "कमला ! डाक्टर आये थे। मैं कल अपने घर जा रहा हूँ।

कमला चौंकी, "अपने घर ! क्यों ?"

"भाभी बहुत नाराज हैं। आज ही गाँव जाने को कहती हैं।"

कमला ने सहसा कोई जवाब नहीं दिया। कुमार कहता रहा, "चार-पाँच दिन ठहरकर भाभी के साथ गाँव चला जाऊँगा। कुछ दिन वहाँ रहूँगा। दिल्ली के पास मेरे मित्र का एक हरिजन आश्रम है। देखूँगा उसके द्वारा अपना काम आगे बढ़ा सकूँ। पर जाने से पहले एक बार कान्त से मिल लेना चाहता हूँ।"

"क्या लौटने की इच्छा नहीं है ?"

"शायद नहीं।"

"हूँ," कमला चुप हो गई। कुमार ने भी कुछ नहीं कहा। कई क्षण दोनों चुपचाप अन्तर्द्वन्द्व में उलझे रहे।

जाते समय कमला ने कहा, "क्या ये सब बातें निश्चित हैं ?"

"हाँ।"

"मसूरी नहीं जाओगे ?"

"नहीं कमला !"

"अच्छा," कमला ने किवाड़ खोले और बाहर निकल गई। किवाड़ जो खोला था उसे धीरे से बन्द नहीं किया। वह हाथ से छूटकर तेजी से टकराया। कुमार ने देखा और वह मुस्करा उठा। पर उस मुस्कराहट में व्यंग नहीं था, पराजय थी।

: ११ :

कमला की सास आज बहुत प्रसन्न थी। उनकी भतीजी तारा आई हुई थी। सो घर कोलाहल से भर उठा था। दो बच्चे थे। उन्होंने पहली बार शहर देखा था। वे अचरज और कौतूहल से प्रत्येक वस्तु को परख रहे थे।

वे ही क्यों उनके माँ-बाप के मन में भी कम कौतूहल नहीं था। तारा के पति ने कहा, "अब तक नहीं आई। आखिर वह कौन है?"

"कोई भइया का दोस्त है।"

"कैसी अजीब बात है। भइया चले गये पर उनके दोस्त बाकी हैं। मुझे तो लच्छन अच्छे नहीं दिखाई देते।"

तारा बोली, "लच्छन कैसे अच्छे हो सके हैं जी।"

पति ने कहा, "हाँ, अगर लच्छन अच्छे होते तो इतनी हिम्मत कैसे आती। बाप रे! मर्द की तरह घूमे है। भई, मैं तो अपना लड़का नहीं दूँगा।"

"क्यों?"

"क्यों क्या? औरत का कुछ पता है और उस औरत का जो दूसरे मर्दों के पीछे फिरे। लड़के को जहर देकर भाग गई तो··"

तारा कांप उठी। वह माँ थी। पर माँ भी औरत होती है। बुआ ने जो स्वर्ग दिखाया था, उसकी तस्वीर उसके दिल पर गहरी उतर चुकी थी। गरीब थी न। धीरे से बोली, "नहीं जी, बात इतनी बुरी नहीं है। और जब लड़का सामने होगा तो रंग पलट जायेगा। अब उसका घर में क्या मोह है? वह हमारी तरह थोडे हो है। स्कूल में पढ़ाती है। आदमियों से शर्म करेगी तो कैसे काम चलेगा"

उन्हें सहसा कोई जवाब नहीं सूझा। कई क्षण सोचकर बोले, "आदमियों से मिलना पड़ेगा यह क्या जरूरी है। मिलती है, तभी तो शहर की औरतें न जाने कितने घाट का पानी पीती हैं।"

तारा तिनक पड़ी, "जैसे गाँव की सभी सतवन्ती हैं।"

"अपने को देख लो।"

तारा ने मुस्कराकर कहा, "तो वह भी मेरी भाभी है।"

"भाभी भैया के रहते होती है।"

तभी सहसा बाहिर के दरवाजे पर आहट हुई। तारा चौंककर

बोली, "चुप-चुप, भाभी है।"

कहकर तारा अन्दर चली गई और रामपाल वहीं लेट गये। वहाँ से बाहर का सब दृश्य दिखाई देता था। यद्यपि अँधेरा बढ़ा आ रहा था, तो भी उन्होंने देखा—एक नारी दृढ़ कदम रखती हुई अन्दर चली गई है। उन्होंने पहचाना—कमला थी। पर क्या वह नहीं जानती कि मैं आया हूँ। शायद नहीं, शायद पहले का तरह लजीली है। उन्हें याद आया—कैसे वह उनके पास आते समय शर्माया करती थी, पर अब तो वह आजाद है। मर्दों से मिलती है फिर ··! त्रिया-चरित्र अजीब है।

इधर कमला ने देखा—सब कुछ बदल गया है। सामान इधर-उधर बिखरा है। अरगनी पर एक मरदानी धोती टँगी है। जूते बाहर पड़े हैं।

तभी दृष्टि उठी—बारजे में तारा बैठी थी। मुस्कराकर कमला बोली, "ओ तारा बहन, नमस्ते ! कब आईं आप !"

और पास जाकर उसकी कौली भर ली, "अच्छी हो बहन, तुम तो भूल ही गईं।"

फिर तो देर तक दुख-सुख की बातें चलती रहीं। तारा ने खुशी-खुशी बच्चों से परिचय कराया और देखा भाभी कितनी पलट गई है। न वह लजीलापन है न वे चुपचुप बातें। खुलकर बोलती है, लेकिन प्रेम उसी तरह जान पडता है। वहाँ से उठकर वह रामपाल से मिलने गई। बातों ही बातों में माँजी ने अचानक कहा, "बेटा, हम भी तेरे ही साथ चलेंगे। "कमला की छुट्टियाँ हैं।"

कमला ने दृष्टि उठाकर माँजी को देखा। फिर शान्त-मन बोली, "अभी तो पाँच-सात दिन ठहरिये। ऐसी क्या जल्दी है ?"

रामपाल ने कहा—"नहीं भाभी, मुझे काम है। मैं जाऊँगा।"

"अच्छा, आप चले जाइये पर बहिनजी को छोड़ जाइये।"

"भाभी, घर में जो ढोर-डंगर हैं उन्हें कौन देखेगा ?"

"हाँ बेटा," माँजी ने कहा, "बहू-बेटी की शोभा घर के काम से ही है।"

कमला ने फिर दृष्टि उठाई, आँखों से आँखें मिलीं, अम्मा जैसे काँपी। कमला ने धीरे से मुस्कराकर कहा, "जीहाँ। काम करने में ही आदमी की शोभा है।"

रामपाल ने कहा, "भाभी! तुम्हारी छुट्टियाँ हैं। हमारे साथ चलो, आमों का मौसम आ रहा है। इस बार इतना और आया है कि पेड़ लदे पड़े हैं। बड़ा आम होगा और जामुन तो होता ही है।"

कमला मुस्करायी, "तब तो जरूर चलूँगी।"

"हाँ, हाँ, जरूर चलो। बड़ा अच्छा रहेगा।"

और फिर इधर-उधर की बातें करके वह अन्दर लौट आई। माँजी ने कहा, "बहू, तैयारी कर लो। हम परसों जरूर चलेंगे।"

कमला बोली, "जरूर चलना है।"

"तू देख नहीं रही।"

"और मैं न जा सकूँ तो।"

"बहू!"

"माँजी मुझे काम है।"

माँजी सहसा उबल पड़ीं, "बहू! तेरे ये लच्छन मुझे अच्छे नहीं लगते। तू हाथों से निकलती जा रही है। तेरे लिए बाहर वाले सब कुछ हैं। तू उनके लिए मरी जाती है। तुझे कुल की लाज की जरा भी फिकर नहीं। तुझे·"

"अम्माजी!···"

"तुझे परसों चलना होगा।"

"माँजी! मैं नहीं जाऊँगी।"

"नहीं जायेगी!"

कमला साहस बटोर रही थी, उसका स्वर अभी शान्त था। उसने दृढ़ता से कहा, "जीहाँ मैं नहीं जा सकूँगी। आप जा सकती हैं।"

उसी दृढ़ता से माँजी बोलीं, "तुझे जाना पड़ेगा। तूने समझा

क्या है ?"

"मैंने जो कुछ समझा है ठीक समझा है, माँजी। आप इस प्रकार मेरी राह में रोड़े नहीं अटका सकतीं।"

कोई सीमा अगर थी तो वह यहाँ आकर टूट गई। माँजी नागिन की भाँति फुँकार उठीं, "कुलच्छनी, कुल बोरन ! मैं जानती थी तू एक दिन कुल में दाग लगाकर रहेगी। तूने हमारा मुँह काला कर दिया।"

"माँजी !"—कमला सहसा काँपी।

"तू यारों के पास फिरती है। मैं अपना समझकर ऐब दबाती रही नहीं तो, नहीं तो·· !"

"नहीं तो···!"

ठीक इसी समय किसी ने बाहर से पुकारा, "अम्मांजी !"

सास-बहू दोनों ने इस स्वर को सुना और सुनकर वे ठगी-सी रह गईं। तारा ने आकर कहा, "मास्टरजी आये हैं।"

माँजी ने सहसा तीव्रता से कहा, "यह भी छिपा रुस्तम है, इसी ने तेरा दिमाग बिगाड़ा है।"

"अम्मांजी ! चुप रहिये !"

तभी बाहर रामपाल ने तारा से कहा, "यहाँ तो खुला दरबार है। न बाबा, मैं तो कल चला जाऊँगा। बड़ी तेज जबान है भाभी की। यही भाभी है, जो एक दिन नजर तक नहीं उठाती थी।"

तारा बोली, "तब भइया थे।"

"सच है, औरत मर्द के साथ है।"

और तभी चौक में आकर सदा की भाँति कान्त ने मुक्त स्वर में कहा, "अम्मांजी, नमस्ते ! आप ठीक हैं न ? कमला कहाँ है ? और कुछ रौनक नजर आती है। कौन आया है ?"

माँजी अपने को समेट नहीं पा रही थीं। किसी तरह बोलीं, "तारा आई है, मेरी भतीजी।"

वह मुड़ा कि कमला ने आकर कहा, "नमस्ते मास्टरजी !"

कान्त ठिठक गया, "ओ कमला ! कैसी हो ?"

"अच्छी हूँ ।"

कान्त ने दृष्टि उठाकर कमला को देखा। सब कुछ बदल रहा था। उसका मुख शान्त था पर वह शान्ति श्मशान की शान्ति थी। आँखों में चमक थी पर भीतर कहीं जैसे चिता सुलग रही हो। वह समझ न सका। बोला, "कुमार प्रसन्न है न ? यहाँ नहीं आयेगा ?"

कमला ने दृष्टि उठाकर कहा, "यहाँ क्यों आयेंगे ? उनका अपना घर है ।"

"फिर भी तीमारदारी की बात थी। वहाँ दिक्कत थी तो मेरे घर ले जाती ।"

"उनकी भाभी हैं। तीन-चार दिन में वे लोग गाँव चले जायेंगे ।"

"कुमार भी ?"

"जीहाँ। और फिर इधर नहीं लौटेंगे ।"

कान्त की समझ में कुछ नहीं आया। फिर भी बोला, "लेकिन अभी तो उनका मुकदमा चलेगा ।"

"मुकदमे में उन्हें कुछ दिलचस्पी नहीं है और न उसमें कुछ जान है, फिर भी तारीख पर आ जाया करेंगे ।"

कान्त ने धीरे से कहा, "सवेरे उधर तो आओगी। मैं भी आऊँगा। फिर तो शायद तुम भी चली जाओगी ।"

कमला सिर उठाकर बोली, "जाने का विचार था पर अब नहीं जा रही। सवेरे आपके पास आऊँगी ।"

बातें करने को बहुत कुछ था, पर कान्त को लगा उसे चला जाना चाहिए, इसलिए उसने कहा, "अच्छा कमला, नमस्ते !"

कमला हाथ जोड़कर बोली, "नमस्ते !"

कान्त चला गया। कमला कई क्षण उसे जाते हुए देखती रही। फिर

जैसे बेहोश होने लगी। उसने जो मार्ग पकड़ा था, उस पर घोर अंधकार था। यद्यपि वह साहस प्रगट करना चाहती थी परन्तु उसका अन्तरमन धोखा दे जाता था। वह डूबने लगती थी पर डूबना चाहती नहीं थी। भांग का नशा जब बढ़ने लगता है तो मनुष्य दृढ़ होकर बार-बार कहता है—नहीं, मुझे नशा नहीं चढ़ रहा। इसी तरह कमला ने दृढ़ता से गरदन उठायी और अन्दर चली गई। तभी सुना रसोई में माजी कह रही थीं—'देखा तूने, कैसे कैंची की तरह जबान चल रही थी।'

"हाय बुआ! मैं तो दंग रह गई। तुमसे कैसे बोलती थी और मास्टरजी से कैसे? मुझे तो बुआ, लच्छन अच्छे नहीं दिखाई देते।"

माँजी भरे कण्ठ से बोली, "बेटी! अपना कीना खोटा तो परखने वाले का क्या दोष? अपने ही कुल की लाज जाती है। सो चुप हूँ, वरना ··"

"बुआ! तुम एक बार इसे गाँव ले चलो।"

"उसका जवाब क्या तूने नहीं सुना?"

"फिर भी माँ! प्यार से समझाओ।"

"इसी काल्ह से कहूँगी। इसने कह दिया तो चली जायगी।"

सुनकर कमला मुस्करायी, एक बार अन्दर झाँका। उस दृष्टि में दया थी, घृणा थी और थी एक भयंकर दृढ़ता। भयंकर इसलिए कि वह भय रहित नहीं थी। इसीलिए जब वह अन्दर जाकर लेटी तो उसका बाँध टूट गया। वह फफक फफक कर रो उठी। उसे लगा जैसे उसका कहीं कोई ठिकाना नहीं है। अथाह और अगम सागर के तट पर वह अकेली है और तूफान उठ रहा है। चारों ओर भयंकर दानवी जन्तु हैं जो मुँह फाड़े रौरव स्वर में चिंघाड़ रहे हैं और वह पत्ते की तरह काँपती हुई चारों ओर उड़ रही है। वह किसी भी क्षण किसी भी दानव की दाढ़ के नीचे दब सकती है! उसने दोनों हाथों से अपना मुँह छिपा लिया, पैरों को पेट में देने लगी मानो वह अपने को अपने में छिपाकर अभय प्राप्त करना चाहती हो। मौत को देखकर कबूतर आँखें मीच लेता है, शुतुरमुर्ग रेत में मुँह गड़ा लेता है और कंगारू का

बच्चा माँ की थैली में जा बैठता है। कमला भी अपनी अंग-रूपी सन्तान को अपने में समेटकर उसे भय-मुक्त करना चाहती थी। पर भय क्या अंगों मे था? वह तो मन में था। मन को अभयदान कहाँ से मिल सकता है? इसलिए कमला अशान्त ही रही। इसी अशान्ति में माँजी आकर बोलीं, "कमला!"

कमला ने सुना पर वह बोली नहीं।

"कमला!"

"जी।"

"खाना नहीं खायगी?"

"नहीं।"

"बहू उठ, तारा क्या कहेगी?"

तब सहसा कमला उठ बैठी और धीरे से बोली, "जो कहेगी, वह तो मैं सुन चुकी हूँ।"

मांजी के गाल पर किसी ने जोर से तमाचा मारा, तिलमिला उठीं। बोल नही निकला। कमला ही बोली, "और जो होगा वह भी आप जान चुकी है लेकिन फिर भी अम्मांजी! लड़ने से क्या होगा? हम सभी तो दुखी हैं। क्या ही अच्छा हो हम..."

अम्मां को जैसे अपने कानों पर विश्वास नहीं आ रहा था। उसने विस्फारित नेत्रों से कमला को देखा। वह कमला सदा विनम्र और आज्ञाकारिणी रही है। उनका मन एक अजीब उलझन में पड़ गया। वह कई क्षण चुपचाप खड़ी रहीं। फिर पास आकर कहा, "अच्छा! चल खाना खा ले। तारा बैठी है।"

"चलती हूँ।" कमला उठ खड़ी हुई।

: १२ :

कान्त रात को बहुत देर तक माँ से बातें करता रहा। इसलिए सवेरे जल्दी न उठ सका। सामने वाली चाची आकर चली गई। पंडित मेवाराम ने झाँककर देखा, बोले, "अरे भई बाबू निशिकान्त!"

बाबू निशिकान्त गहरी नींद में थे। पंडितजी भी लौट गये। आखिर जब कमला आई, तो माँ ने आकर जगाया, "अरे कान्त! कमला आई है। कुमार के पास नहीं जायेगा क्या? उठ।" कान्त चौंका, "क्या?"

"कमला कब की बैठी है?"

वह उठ बैठा, अँगड़ाई ली और देखा—धूप मुँडेर पर उतर आई है और सामने के आले में चिड़ियों ने जो घोंसला बनाया है उसके द्वार पर बैठी चिड़ियाएँ गरदन घुमा-घुमाकर चहक रही हैं।

तभी कमला ने आकर कहा, "मास्टरजी! आप तो अंग्रेज बन गये है।"

कान्त हँसा, "तब तो बड़ी अच्छी बात है, अँग्रेज राजा है।"

"और जालिम भी।"

"राजा जालिम तो होता ही है। पथ-भ्रष्ट प्रभुता न्याय की दुश्मन है, लेकिन कमला, क्या बात है? सब कहीं बदला-बदला नजर आता है।"

"आपकी दृष्टि का दोष है।"

"तुम्हारी दृष्टि तो ठीक है। मुझे तो लगता है..."

"मास्टरजी!"

"रात क्या बात थी?"

"वही तो बताने आई हूँ।"

"तो बताओ।"

कमला ने सब बातें कह सुनाईं। कुमार की बीमारी, तारा का आगमन, उसके लड़के को गोद लेने का प्रस्ताव और फिर दूसरी अनेक बातों के साथ गाँव जाने की बात कहते-कहते कमला कुछ द्रवित हो आई। कान्त ने सब

कुछ समझा फिर भी उसने कहा, "तो डरती क्यों हो ? तुम तो आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो।"

"लेकिन आर्थिक दृष्टि ही तो सब कुछ नहीं है। वे मुझ पर तरह-तरह के लाञ्छन लगाने लगी हैं। वे मुझे···"

कान्त ने दृष्टि उठाकर उसे देखा। वह सब कुछ जानता था।

सहसा उसका गला भर आया। आगे बोला नहीं गया। उसने कहा, "कोई क्या कहता है, उसकी इतनी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

कमला रुँधे कंठ से बोली, "लेकिन फिर भी दुख होता है।"

"दुख होना धर्म है और उस दुख को स्वीकार करके काम करने में ही हमारा कल्याण है। फिर भी दुख क्या आदमी की शक्ति से बढ़कर है?"

"पर मास्टरजी, क्या पुरुष की छाया पड़ते ही स्त्री दुश्चरित्र हो जाती है ? क्या विवाह की इच्छा के बिना विधवा युवती कभी किसी के साथ रह ही नहीं सकती ? क्या हृदय का माधुर्य वासना में जाकर ही लय होता है ? और पुरुष क्यों प्रत्येक नारी को पत्नी के रूप मे देखने को लालायित रहता है? क्यों दुनियाँ स्त्री के विषय में ऐसा ही सोचती है ? क्यों ·? क्या ·?"

कहते-कहते उसकी वाणी कठोर हो उठी। आवेश के मारे उससे बोला नहीं गया। कान्त चकित, विस्मित, चित्र-लिखित-सा उसे देखता रह गया। मुख रक्त-वर्ण है। आँखें जल से पूर्ण होकर भी जल रही हैं। कण्ठ उच्छ्वसित हो आया है और शरीर काँपने लगा है। कान्त का बुद्धिवादी मन इस प्रश्न का उत्तर जानता है पर इस वेदना-विक्षिप्त नारी के भग्न हृदय पर वह सहसा कोई ऐसी ठेस नहीं लगाना चाहता। इसलिए उसकी आँखे मुँदने लगीं। और कमला का वह चित्र मानस पर अंकित होने लगा। क्षण बीतने लगे और उसका मानस-पट चित्रो और विचारों से भरने लगा। पर सहसा वह बड़े जोर से काँप उठा। सहसा उसने पृथ्वी को डगमग-डगमग करते देखा। उसने आँखें खोल दीं। तब अपने प्रति किसी निदारुण क्रोध की ज्वाला से वह भर उठा था। देखा—वह इसी संसार मे है और कमला उसी तरह म्लान-मन,

कम्पित-तन उसे देख रही है। जैसे उन क्षणों में उसने युगों को देखा। वह सँभला और बोला, "कमला, तुम इतनी दुखी हो यह नहीं सोचा था। दुनियाँ क्या सोचती है, इसकी इतनी चिन्ता क्यों? यह डर क्यों, कहीं इसलिए तो नहीं कि तुम्हारे अन्दर पाप है।"

कमला काँपी। रक्त-वर्ण दृष्टि उठाकर मास्टरजी को देखा। वह उसी तरह गम्भीर स्वर में बोलते रहे, "कमला! पाप हमारे अन्दर है। नारी और पुरुष में एक दूसरे में समा जाने का आकर्षण है। फिर यह सहानुभूति विवाह के लिए भी हो तो बुरा क्या है। बुरी तो इन भावनाओं से डरना है। डर से आदमी अशक्त होता है, और फिर मात्र वासना का क्रीडा-कन्दु बनकर रह जाता है।"

कमला को सहसा कुछ जवाब न सूझा। उससे ऊपर भी नहीं देखा गया। बस काँपती रही। कान्त ने अब और भी शान्त होकर मुस्कराते हुए कहा, "कमला, तुम विवाह कर लो।"

कमला और भी तेजी से काँपी। कान्त ने पूर्वतः उसे भेदभरी दृष्टि से देखते हुए कहा, "मै जानता हूँ, तुम यही चाहती हो और यह चाह बुरी नहीं है। बुरी है केवल कायरता।"

तभी सहसा पास के मकान के जीने में खड़-खड हुई। रामायण की चौपाई गुनगुनाते हुए पंडितजी ऊपर आ गये। कान्त एक दम उठ खड़ा हुआ। कमला अन्दर चली गई। पंडितजी मुस्कराये, "बाबू निशिकान्त, आ गये। कहो भई, कहाँ रहे?"

"जी, सरकारी काम था। उसी में फँसा रहा। आप जानते हैं आजकल साम्प्रदायिक और जातिगत प्रश्न किस बुरी तरह खड़े होते आ रहे है।"

पंडितजी मानो तैयार होकर आये थे। तुरन्त बोले, "सच कहता हूँ। अभी तो जाति-जाति में झगड़ा है, जल्दी ही गोत्रों और कुटुम्बों में इसी तरह के झगड़े उठा करेंगे। और अब क्या नहीं उठते। हाय रे कम्बख्त हिन्दुस्तानियो! एक अंग्रेज का बच्चा इनको बन्दर की तरह नाच नचाता

है। और ये गांधी-नेहरू 'हाँ हजूर; हाँ हजूर' करते रहते हैं। घर में आग लगो है और ये पुकारकर कहते हैं, 'स्पेन वालो,हम तुम्हारी मदद करेंगे। चीनवाला, डरो मत, हम तुम्हारे साथ हैं'।"

कहते-कहते पंडित जी जोर से हँस पड़े, "देखा, कितना बड़ा मजाक है। भई, सच जानो—ब्रिटिश पोलिसी और डिप्लोमेसी बड़ी भयानक चीज़ हैं।"

कान्त का अन्तर्मन सहसा कड़ुवा हो आया। पर पंडितजी ने उसी तरह हँसते-हँसते पूछा, "तुम्हारा क्या ख्याल है, निशिकान्त ?"

"आप ठीक कहते हैं।"

"मैं जानता हूँ। हर समझदार आदमी ऐसा ही सोचता है। भगवान मेरा जाने, बात इतनी साफ है पर न जाने क्यों गांधी और नेहरू उसे नहीं समझते। दोनो बड़े योग्य हैं पर मन्थरा की तरह ब्रिटिश डिप्लोमेसी ने उनकी मति भ्रष्ट कर दी है। लेकिन एक बात है। जिस दिन इनकी बुद्धि जाग उठेगी, उस दिन ये जिन्दा नहीं रहेंगे।"

"जी।"

"भगवान् मेरा जाने यही तो नहीं समझते। जहाँ इन्होने देखा—अरे हम तो अब तक अंग्रेजों के जाल में फँसे हुए थे तो ये विद्रोह कर देंगे। जीवट वाले हैं। बस उसी दिन अंग्रेज इन्हे जहर देकर या और किसी तरह मरवा डालेंगे। स्वामी दयानन्द के साथ इन्होंने यही किया था। जब तक वह इनकी आज्ञा मानकर हिन्दू-धर्म को गंदा करता रहा, तो कोई उन्हें छू भी नहीं सका। परन्तु जैसे ही वह ब्रिटिश सरकार के जाल को समझकर राजस्थान की ओर मुड़ा, तो एक दिन जोधपुर में उसे जहर देकर मार डाला गया।"

कान्त ने अपने को किसी तरह सँभालकर कहा, "आप ठीक कहते हैं।"

और फिर नीचे जाने के लिए पैड़ियों की ओर बढ़ता हुआ बोला, "अच्छा जी चलूँ, मुझे कुमार के पास जाना है।"

"कुमार के पास जा रहे हो ? अब तो वह घर आ गया होगा !"

"जीहाँ। अब तो आ गये होंगे।"

"बड़ी खुशी की बात है। वह काँग्रेसमैन है। मैं भी काँग्रेसमैन हूँ। सभी हिन्दुस्तानी काँग्रेसी हैं पर वह गांधी-भक्त भी है। क्यों भाई, तुम भी गांधी-भक्त हो?"

"जी, मैं तो सरकार-परस्त हूँ।"

"मैं जानता हूँ, मैं जानता हूँ।" पंडितजी मुस्कराये, "बाबू निशिकान्त, तुम बड़े विद्वान् और समझदार हो। तुम्हें यह नौकरी छोड़ देनी चाहिए, और फिर कुमार की तरह ......"

कान्त ने नीचे झाँककर पूछा, "भाभी! गुसलखाने में पानी रख दिया है?"

नीचे से क्रुद्ध स्वर उठा, "तू आये भी, सब कुछ तैयार है।"

पंडितजी बोले, "अच्छा भाई मिल आओ। मेरी नमस्ते कहना और देखो कोई काम हो तो बता देना।"

"पंडितजी आपकी कृपा है। आपने बहुत किया है।" कान्त ने कहा और फिर वह हाथ जोड़कर नीचे भागा, मानो कैदी जेल से मुक्त हुआ।

× × ×

जब वे कुमार के पास पहुँचे तो दोपहर हो चली थी।

कान्त ने दूर से ही देखा—कुमार यद्यपि बीमार है पर जान नहीं पड़ता है। केवल माथे पर वह घटना अपना स्मृति-चिन्ह छोड़ गई है। देखते ही वह आत्म-विभोर हो उठा और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोला, "अच्छे हो?"

कुमार ने उसी प्रकार उत्तर दिया, "बिल्कुल।"

"कितनी अच्छी बात है...।"

"तुम कहाँ रहे! ऐसे भागे... ।"

कान्त हँस पड़ा, "डर लगता था कि कहीं लाठी मुझे भी न खानी पड़े।"

कुमार हँसा, पर जवाब दिया कमला ने; बोली, "जो बहुत सोचते हैं, वे डरपोक होते हैं।"

"तुम भी होशियार रहना, बुद्धि तुम्हें भी सताने लगी है ··।"

कान्त अपना वाक्य पूरा करता कि कमला जोर से काँप उठी। उस कम्पन को सबने देखा। कुमार की भाभी ने भी देखा लेकिन दूसरे ही क्षण कान्त ने बात को दूसरी ओर घुमा दिया, पूछा, "पहाड़ पर कब जा रहे हो?"

कुमार बोला, "पहाड़ पर नहीं।"

"क्यों?"

"अरे भाई, गाँव की जलवायु सुन्दर है। नहर का किनारा और आमों की ऋतु छोड़कर कौन पहाड़ों की महँगाई पसन्द करेगा?"

"तो मैं भी चलूँ?

"तुम कहीं चलो भी। कोल्हू के बैल की तरह यों ही चक्कर काटा करते हो। सच कहता हूँ। मेरे साथ चलो। जोशीजी बहुत दिनों से बुला रहे हैं।"

"जोशीजी कौन हैं?"

"वे ही हरिजन आश्रम के नीलरत्न जोशी। वे वर्धा जाकर रहना चाहते हैं। चाहते हैं, मैं आश्रम का भार सँभाल लूँ। मैं भी सोचता हूँ कि कुछ ठोस काम करने को मिलेगा। वहाँ बैठकर मैं हिन्दू-मुसलमानों के प्रश्न को भी सुलझाना चाहता हूँ।"

"कैसे?" कान्त ने पूछा।

कुमार बोला, "गाँव के गरीब मुसलमान लड़कों को आश्रम में रक्खूँगा। हिन्दुओं के तो रहेंगे ही। मास्टर लोग भी इसी प्रकार दोनों जातियों से लिये जावेंगे। इससे आपस में प्रेम बढ़ेगा। यह तो प्रारम्भिक बातें हैं, पर आगे चलकर कुछ और सोचूँगा।"

कान्त ने धीरे से कहा, "इन छोटे-छोटे परिवर्तनों से अब कुछ नहीं

होने वाला है।"

"तो।"

"अब तो आमूल-चूल परिवर्तन होना चाहिए।"

कुमार ने सहसा इस बात का कुछ जवाब नहीं दिया। बीच में व्यवधान आ पड़ा। कमला बाहर चली गई और डाक्टर के पास से आकर धर्मपाल ने सूचना दी कि सब कुछ पूर्ववत: चलेगा। इस पर कुछ क्षण बाद कुमार ने धीरे से कहा "कान्त, कमला नर्स बनना चाहती है।"

"कौन कहता था?"

"डा० जोसेफ।"

कान्त को लगा वह इस बात को सुनने के लिए तैयार नहीं था, पर प्रकाश में उसने इतना ही कहा, "विचार बुरा नहीं है।"

"हां, विचार तो बुरा नहीं है। सेवा करने का अवसर मिलता है। डा० जोसेफ कहते थे—कमला एक सफल नर्स बन सकती है। और वह ठीक कहते थे। जिस प्रकार उसने मेरी सेवा की है, वह सचमुच आश्चर्य मे डालने वाली है।"

कान्त ने इस बात का एकाएक कुछ जवाब नहीं दिया। कुमार भी चुप हो गया, जैसे दोनो का उस बात से सम्बन्ध नहीं था। इसी समय कमला ने आकर कहा, "मास्टरजी, भाभी कहती हैं कि आप खाना यहीं खाइये।"

"मैं?"

"जी, मैं भी।"

"तो हम क्यों नहीं कहतीं," कान्त बोला, "कुछ आपत्ति है।"

और कहकर वह स्वयं चौंक पड़ा पर कमला हँसी, "तो हम ही सही लेकिन बताइये आप क्या खायेंगे!"

कान्त बोला, "माँ से डर लगता है। फिर किसी दिन।"

कमला ने दृढ़ता से कहा, "लेकिन मुझे किसी का डर नहीं है, मैं खाऊँगी।" और वह अन्दर चली गई। कान्त ने सहसा देखा, कुमार

की दृष्टि उसी के पीछे लगी है। वह एक दम यंत्रवत् उठा, बोला, "कुमार, अब मैं चलूँ। तुम अभी तो कुछ दिन रहोगे ही ?"

कुमार समझकर बोला, "नहीं कान्त ! मैं कल-परसों तक चला जाना चाहता हूँ। केवल तुम्हारे लिए रुका था।"

"इतना दृढ़ निश्चय है।"

कुमार ने कहा, "समय निर्णय के लिए नहीं होता। वह कार्य के लिए होता है।"

"निस्सन्देह !" कान्त बोला, "मैं चलता हूँ। हो सकता है समाज-मंदिर से लौटती बार फिर आऊँ !"

कान्त चला गया। कुमार को लगा जैसे उसका मन भारी हो रहा है और जैसे उसने आज कान्त से बहुत कुछ छिपाया है। बस उसने दोनों हाथों से मुँह ढक लिया और चुपचाप पड़ गया। तब तक पड़ा रहा जब तक धर्मपाल ने आकर नहीं कहा, "उठिये, दवा का वक्त हो गया है।"

: १३ :

उस दिन अंतरंग सभा के सामने जो विचारणीय प्रश्न थे उनमें अन्तिम था कन्या पाठशाला का। मन्त्रीजी ने सूचना दी कि बहुत दिनों से वहाँ पर कुछ अध्यापिकाओं के प्रति असंतोष बढ़ रहा है।

"किन-किन अध्यापिकाओं के प्रति ?" एक सदस्य ने पूछा।

"असंतोष तो मुख्याध्यापिका तथा प्राइमरी की अध्यापिका शीला के प्रति भी है। परन्तु सबसे अधिक और गम्भीर दोषारोपण कमला देवी पर लगाये गये हैं।"

"क्या दोष हैं वे ?"

"कि वह चरित्रहीन है।"

जैसे सभा में जीवन उमड़ आया। सभी सतर्क हो उठे। एक वृद्ध सज्जन ने पूछा, "कौन कहता है?"

मन्त्री के जवाब देने से पहले ही स्कूल मास्टर रामजीलाल बोल उठे, "अध्यापिकाये और लड़कियाँ सभी कहती हैं।"

"कोई प्रमाण है?"

"प्रमाण तो स्पष्ट है। कुमार को लेकर उनके चरित्र की चर्चा सब कहीं होती है?"

"बेशक!"—लालाजी बोले, "इतना लगाव बिना मुहब्बत के नहीं हो सकता।"

बाबूजी ने धीरे से कहा, "कुमार कितना भला लगता है।"

एक अध्यापिका के पति वहाँ बैठे थे। वे बोले, "दुराचारी के सिर पर सींग नहीं होते। कुमार का उससे पुराना सम्बन्ध है!"

"जीहाँ। वह बहुत दिनों से उसके घर जाता रहा है।"

"भला विधवा के पास पुरुष का क्या काम?"

कान्त ने, जो अब तक मौन था, साहस करके पूछा, "क्या मन्त्रीजी कमलादेवी के बारे में मुख्याध्यापिका की रिपोर्ट सुना सकेंगे?"

मन्त्रीजी ने फाइल से एक पत्र निकालकर पढ़ा, "कमला देवी की पढ़ाई का रिकार्ड बहुत शानदार है। परीक्षा-परिणाम ९५ प्रतिशत रहा है। उनका व्यवहार मधुर है, वह विनयी है और अपना दायित्व समझती है।"

क्षण भर के लिए सभा में सन्नाटा उमड़-घुमड़ आया। कान्त ने गर्व से सबको देखा—लेकिन वह सब क्षणिक था। दूसरे ही क्षण मास्टरजी बोले, "यह ठीक है परन्तु चरित्रहीन व्यक्ति कन्या पाठशाला में नहीं रह सकता। योग्यता और चरित्र दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। चरित्र सर्वोपरि है।"

"बेशक" एक वयोवृद्ध सज्जन ने उनका समर्थन किया, "अयोग्य व्यक्ति चरित्रवान् होने पर भी पूज्य है।"

"इसलिए लोग अपनी लड़कियों को वहाँ से हटा रहे हैं," तीसरे बन्धु बोले।

"वे कौन है," कान्त ने पूछा।

"मैं ही हूँ," ये सज्जन बोले।

"और मैं भी," स्कूल मास्टर ने कहा।

कान्त क्रुद्ध स्वर में बोला, "तब सोचना क्या है? निकाल दीजिये।"

मैनेजर ने कहा, "स्कूल जनता का है। आप जन-प्रतिनिधि है। जैसी आज्ञा होगी करूँगा।"

वयोवृद्ध सज्जन बोले, "ठीक है, बैठक निर्णय करती है कि कमला देवी को नोटिस दिया जाय।"

एक दूसरे वकील ने जो अब तक चुप बैठे थे, कहा, "इस प्रकार जल्दी करना ठीक नही है। एक बार कमला देवी से मिलकर बातें करना आवश्यक है। आखिर वह दुखिया है और समाज दुखिया नारियों की मदद करने वाला है।"

मास्टरजी ने तर्क किया, "पर चरित्रहीन दुखिया के लिए नहीं।"

वकील साहब मुस्कराये, बोले "सुनिये! कमलादेवी को मिस्टर निशिकान्त के कहने पर रखा गया था। उनका रिकार्ड और व्यवहार सुन्दर है, परन्तु साथ ही उन पर कुछ दोष भी लगाये है। इन परिस्थितियों में क्या यह आवश्यक नही हो जाता है कि आप मि० निशिकान्त की राय लें।"

मन्त्री ने कान्त की ओर देखा, पूछा "आप कुछ कहना चाहेंगे?"

"जी नही।"

"आप उन्हे जानते हैं?"

"जानता तो हूँ। सवेरे से वह मेरे साथ थी और अभी मैं उन्हें कुमार के

घर छोड़ कर आया हूँ।" सभा में सहसा सन्नाटा छा गया। उसी सन्नाटे में कान्त उठा और बोला, "अच्छा, मुझे आज्ञा दीजिये।"

मंत्री ने कहा, "निशिकान्त जी ! आप अप्रसन्न हैं, पर देखिए ऐसे कामों में अप्रसन्नता से काम नहीं चलता। आर्य-समाज का उद्देश्य आचार की रक्षा करना है। वह ऐसा नहीं करेगा तो दूसरे स्कूलों और हमारे स्कूलों में क्या अंतर रहेगा।"

वृद्ध सज्जन बोले, "वहाँ तो खुलेआम व्यभिचार होता है। हम ऐसा नहीं होने देंगे।"

कान्त ने गम्भीर पर क्रुद्ध स्वर में कहा, "कौन कहता है कि आप ऐसा होने दें ?"

"तुम कहते हो।"

"पूज्यवर ! आप मेरे पिता-तुल्य हैं। आप मुझ पर दोषारोपण कर रहे हैं। मैं भी कुछ कहने लगा तो..."

यह हलचल की सूचना थी कई व्यक्ति एक साथ बोल उठे, "हैं, हैं, निशिकान्त जी ! अरे लाला ज्ञानप्रकाश जी, क्या करने लगे ?"

वकील साहब बोले, "निशिकान्त जी ! आप इतने योग्य होकर भी ऐसी बात करते हैं ?"

"और लाला जी..."

लालाजी तीव्रता से बोले, "लालाजी क्या करें ? ये कल के छोकरे दो अक्षर पढ़कर बड़ों का अपमान करते हैं।"

वकील साहब ने उन्हें किसी तरह शान्त किया और फिर बोले, "देखिये मेरा प्रस्ताव है कि कमलादेवी के प्रति जो शिकायतें हैं मंत्री जी उनके सम्बन्ध में कमलाजी से उत्तर माँगें और यह प्रश्न छुट्टियों के बाद स्कूल खुलने पर फिर उपस्थित किया जाये।"

विरोध मे कोई नहीं बोला। प्रस्ताव पास हो गया।

मंत्रीजी ने अन्तिम बार पूछा, "कोई और बात है ?"

कान्त बोला, "जी हाँ, है।"

"क्या ?"

"मेरा त्याग-पत्र।"

सभासदों की सम्मिलित आँखें फिर कान्त की ओर उठीं। मंत्री ने कहा, "यह आवश्यक विषय नही है। अगली बैठक मे देखेगे।"

"हाँ, हाँ यह ठीक है।" कई व्यक्ति एक साथ बोल उठे।

कान्त ने कहा, "मेरा काम त्याग-पत्र देना है। आप उसे स्वीकार करते हैं या नहीं। इसकी मैं चिन्ता नहीं करता।"

मार्ग में मंत्रीजी ने बताया कि कमला देवी के विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा गया है। मास्टरजी की पत्नी और लालाजी की पुत्री दोनों अपना मार्ग साफ करना चाहती हैं। मुख्याध्यापिकाजी ने मुझे सब बातें बता दी हैं। पर कान्त बाबू, एक बात तुमसे कहूँगा। तुम कमला को समझा दो कि वह यदि कुमार से प्रेम करती है तो उससे विवाह करले। दोनों योग्य हैं, सुशिक्षित हैं और स्वतन्त्र हैं।"

कान्त का मुँह सहसा श्वेत हो आया। लगा मानो वह गिर पड़ेगा पर उसने अपने को सँभाल लिया और यथा-शक्ति शान्त स्वर में कहा, "मै नहीं जानता था कि बात इतनी बढ़ चुकी है।"

बात काटकर मन्त्री बोले, "पर मैं जानता हूँ। मुख्याध्यापिकाजी ने कमला से भी कह दिया है।"

कान्त तब न होश में था और न बेहोश। वह देखता भी था और नहीं भी देखता था, वह सुनता भी था और नही भी सुनता था। भाँग के नशे की तरह उसे चेतनता के दौरे आते थे। उसी ने दृढ़ होकर कहा, "मै उन दोनों से बातें करूँगा।"

मंत्री बोले, "धन्यवाद कान्त! और देखो तुम्हारा त्याग-पत्र मैं फाड़ दूँगा।"

"आपको अधिकार है।"

घर पहुँचा तो माँ ने बताया कि पीछे एक दिन बड़ी मास्टरनी आयी थी।"

"क्यों ?"

माँ बोली, "बेचारी बड़ी भली है। गर्व गुमान छू नहीं गया है। तेरी बड़ी तारीफ करे थी।"

"तब तो तुझे बड़ी खुशी हुई होगी।"

"और क्या रोती ? सुनो रे इसकी बात। तेरी बड़ाई होगी तो मैं खुश न हूँगी तो और कौन होगा ?"

कान्त भी हँसा, पूछा, "तो क्या वे मेरी बड़ाई करने ही आयी थीं।"

धीरे से माँ बोली, "उनकी भानजी है।"

"तब ?"

"तब क्या तेरी मँगनी को कह रही थीं। दसवीं में पढ़े है। खूबसूरत है। बाप नहीं है, वैसे काम-काज मे होशियार है।"

"माँ, लाहौर में भी एक लड़की है। दसवीं मे पढे है। पंजाबी खूब-सूरत होवें ही हैं। उसकी माँ नहीं है। खूब काम करती है। उसकी बहिन को मैंने देखा है। उसी के पास ठहरा था।"

माँ ने मुँह बनाकर कहा, "भई कुछ कर, पंजाबी-वंजाबी से मैं विवाह नहीं करने दूँगी।"

कान्त रस ले रहा था, बोला, "माँ मेरा तो मन करता है। सबको हाँ कर दूँ।"

"दुत, पगले।"

"क्यों ? क्या हर्ज है। कई बहुयें होंगी और तुम्हारी खूब सेवा करेंगी।"

"ना बेटा ! ये तो ना करने के बहाने हैं। मुझे तो एक बहू चाहिये। वे तेरा इन्तजार करके गई हैं। छुट्टी है न। पता छोड़ गई हैं। जवाब माँगा है।"

कान्त कुछ जवाब दे कि बाहर से आवाज आई, "बाबू निशिकान्त साहब !"

जाकर देखा तो हबीब साहब आये थे। हँसते-हँसते बोले, "अमां! कहाँ चले गये थे ?"

"आप जानते हैं, गुलामी है।"

"फिर भी बडी देर लगा दी।"

"जीहाँ, लाहौर, शिमला फिर दिल्ली जाना पड़ा। यही सवाल थे। बस जीना दूभर कर दिया है।"

"हाँ भई। यह झगड़ा तो बढ़ता ही जाता है। बेचारा कुमार बच गया। खुदा का लाख-लाख शुक्र है। कमला बीबी ने उन लोगों की बहुत मदद की है। फरिश्ता है। और आपके ये पडोसी पंडितजी हैं न। बड़े अजीबोगरीब इन्सान हैं। गांधीजी को बड़ी गालियाँ देते हैं। मालूम होता है वे कभी टैरेरिस्ट थे।"

"जी नहीं, सिर्फ हमदर्दी हैं। बात यह है कि बेचारे अपने को बहुत समझते हैं। पर आप जानते हैं—दुनियाँ दुनियाँ है। बड़े-बड़े को उठाकर फेंक देती है। उसी का सब झगड़ा है। वैसे आदमी अच्छा है।"

"मै जानता हूँ। मुझसे कह रहे थे, 'हबीब साहब, तुम हमारी गल-तियो का नतीजा हो। तुममें और हममे फरक क्या है। हम तुम्हें अपनाते अपनाते रह गये। अल्लोपनिषद् तो हमने बना लिया है।' मैंने कहा, 'मैंने पढा है, तो बोले, आप संस्कृत जानते हैं ? जब मैंने कहा,'हाँ जानता हूँ।' तो बड़े खुश हुए और लगे रामायण सुनाने। मेरे यार ने याद कर ली है।"

"जी रोज पाठ करते हैं।"

"हाँ, मुझसे कह रहे थे—कभी आया करो।"

"बस हबीब साहब ! यही तक ठीक है। सत्य और आचार की उनकी अपनी कसौटी है। पूरे न उतरे तो बस खैर नहीं।"

हबीब साहब हँसे, 'मैं जानता हूँ। मैं यहाँ रहूँगा ही कब। अब जाते'

वाला हूँ ।"

"कहाँ ?" कान्त ने अचकचाकर पूछा ।

"दिल्ली जा रहा हूँ । सुरैया की शादी करनी है । तुम्हे आना होगा ।"

"जरूर आऊँगा ।"

सुरैया ने तुम्हारी कहानियाँ पढ़ी हैं । बड़ी तारीफ कर रही थी । एक दिन घर आओ ।"

"जब कहो ।"

"कल ही सही ।"

"बहुत अच्छा । मंजूर है ।"

: १४ :

कान्त को बैठक में बिठाकर हबीब साहब बाजार चले गये तो कमला ने वहाँ प्रवेश किया । उसके पीछे सुरैया थी । उसने बुरका डाला था पर नकाब उठी हुई थी । मानो अमावस्या की रात्रि में पूर्णिमा का चाँद चमक उठा हो । कान्त देखता ही रह गया—इतना सौंदर्य ! सुरैया ने दृष्टि नीचे करके सलाम कहा और फिर बातें चलने पर बोली, "कमला बहिन आपकी बड़ी प्रशंसा करती थी । मैंने सोचा, गुरु हैं शायद .."

शीघ्रता से कान्त ने कहा, "प्रशंसा करना एक कला है, और नारी उसमें पटु है ।"

सुरैया बोली, "कला जीवन है । मुझे आपकी कहानियाँ प्रिय लगीं, मैं उनकी प्रशंसा करूँ तो क्या यह अनुचित होगा ।"

कान्त ने अप्रतिभ होकर कहा, "कला की प्रशंसा अनुचित नहीं है ।"

सुरैया बोली, "तब आप मुझे दोष न दीजिये । आपकी कहानियाँ

पढ़कर मुझे लगा कि आपके पास सिर ही नहीं, सिर में मस्तिष्क भी है। मस्तिष्क भी वह जो हृदय का तिरस्कार नहीं करता। इसी कारण आप जीवन की गहराई में जाकर सत्य खोज लेते हैं।"

"सच ?" कान्त ने पूछा।

कान्त इतनी शीघ्रता से बोला कि कमला हँस पड़ी परन्तु सुरैया बोली, "क्या आपको अपनी शक्ति मे विश्वास नहीं है ?"

अप्रतिभ कान्त एक क्षण ठिठका फिर उसने भी कहा, "अपनी शक्ति में विश्वास होकर भी न जाने क्यों दूसरे के मुँह से ऐसा सुनकर मेरा अविश्वास जाग उठता है।"

"तब आप कायर हैं," कमला ने हँसकर कहा, "सुरैया बहिन को अपनी शक्ति में अमित विश्वास है।"

"होना ही चाहिए। नारी स्वयं शक्ति है।"

"जीहाँ। वही पुरुष का सृजन करती है। यह भी अब इस कारा को तोड़कर दुनिया में जाने वाली हैं। यह बुरके को भी फेंक रही हैं।"

सुरैया ने धीरे से कहा, "मुझे खुशी है कि मुसलमान के घर आज एक हिन्दू खाना खाने आया है। क्या आपको कुछ अटपटा नहीं लगता ?"

"लगता तो है," कान्त बोला, "पर इसके बिना देश का कल्याण होने वाला नहीं है।"

सुरैया ने कहा, "जीहाँ। आज कैसी घृणा फैली है ?"

तभी अन्दर से आवाज उठी, "सुरैया !"

तभी हबीब साहब लपके हुए आये, बोले, "दही ले आया हूँ। बड़ी दूर जाना पड़ा।"

और फिर सब अन्दर चले गये। लौटे तो बोले, "कितनी गरमी है और इधर बिजली का पंखा भी नहीं है।"

कान्त कुछ जवाब दे कि फिर बोल उठे, "मैंने और किसी को नहीं बुलाया। क्योंकि आपको मेरे साथ खाते देखकर लोग यही कहेंगे कि कान्त

साहब मुसलमान होने वाले हैं ।"

कान्त हँस पड़ा, "कहेंगे तो कहें मुझे डर नहीं है। मैं छूतछात को पाप मानता हूँ । खान-पान, विवाह-शादी के बन्धन टूटे बिना हिन्दू-मुस्लिम मेल नहीं होने वाला । वैसे तो भाई से भाई लड़ता है।"

हबीब साहब ने पूछा, "क्या आप जाति से बाहर शादी कर सकते हैं ?"

"कर सकता हूँ । और मैं कहूँ—करना चाहता हूँ ।"

"किसी ईसाई अथवा मुसलमान से ?"

"जी हाँ ।"

"लेकिन यह नामुमकिन है ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि बिना ईसाई या मुसलमान हुए आपकी शादी नहीं हो सकेगी। हुई भी तो आप हिन्दू नहीं रहेंगे ।"

"यही तो बात है," कान्त मुस्कराया, "मैं मुसलमान लड़की से विवाह करके हिन्दू बना रहना चाहता हूँ ।"

"तो फिर उस लड़की को हिन्दू बनाना होगा ।"

"यह भी नहीं, वह मुसलमान रहेगी ।"

हबीब साहब ने अचरज से कान्त को देखा, और धीरे से ऐसे कहा मानो भविष्यवाणी करते हों, "तब यही होगा कि एक दिन आप चुपचाप किसी हिन्दू लड़की से शादी कर लोगे ।"

कान्त काँपा, पर तभी अन्दर से शब्द उठा। हबीब साहब ने उठकर कहा, "खाना तैयार है ?"

और फिर खाना हुआ । न जाने क्या हुआ खाते समय दोनों मौन हो गये । बोलने को उनके पास बहुत था पर मस्तिष्क वाणी को अवसर नहीं दे रहा था। वे सोचने लगते थे, विशेषतया कान्त रह-रहकर चौंक उठता था। वह कहाँ बैठा है, वह किसके घर खा रहा है ? क्या यह सत्य है ? क्या

उसकी माँ यह बात सुनकर प्रसन्न होगी ? क्या समाज वाले उसे बधाई देंगे ? क्या हम दोनों में सच्ची मुहब्बत है ? और क्या...

उसका मस्तिष्क सहसा चकरा उठा। तीव्रता से एक विचार उठा, "क्या सुरैया की शादी मुझसे हो सकती है ?"

"मूर्ख ! क्या सोचता है ? यह असम्भव है। यह पाप है।"

क्षण भर के लिए उसका हाथ रुक गया। वह हठात् कंपित-चकित शून्य में पागल की भाँति ताकने लगा। तभी हबीब साहब ने कहा, "अरे तुम रुक क्यों गये ?"

मस्तिष्क को झटका दिया। बोला, "खाना इतना स्वादिष्ट बना है कि सोच में पड़ जाता हूँ—क्या खाऊँ।"

हबीब साहब ने कहा, "और यह नहीं सोचते कि किसी ने सुन लिया तो क्या कहेगा ?"

कान्त हँस पड़ा, "सोचता तो हूँ पर डरता नहीं।"

हबीब साहब भी हँसे, बोले, "सोचना स्वयं एक बहुत बड़ा डर है। मैं भी इस डर से बरी नहीं हूँ।"

कान्त ने मुस्कराकर कहा, "मजहब डरना ही तो सिखाता है। उसे निकाल दिया जाय तो शायद वह बहुत बुरी चीज न रहे..."

तभी अन्दर से झाँककर कमला ने पूछा, "कुछ चाहिए ?"

"जी नहीं।"

"तो हम खाते हैं।"

"जी, शौक से।"

फिर कान्त की ओर मुड़कर बोली, "मैं आपके साथ चलूँगी। बहुत देर नहीं होगी।"

वह चली गई परन्तु बहुत जल्दी करने पर भी जब वे दोनों लौटे तो रात पड़ गई थी। कुछ दूर तक वे चुपचाप चलते रहे। सहसा कान्त ने कहा, "कितने भले लोग हैं।"

"जीहाँ," कमला बोली, "दुनिया में भले लोग भी हैं।"

फिर कई क्षण वे चुप रहे। इस बार कमला ने मौन तोड़कर कहा, "मैं गाँव चली जाऊँ ?"

"मुझे बताना होगा।"

"कोई हर्ज हो तो न बतायें।"

"कमला !"

"जी।"

"तुम्हे क्या होता जा रहा है ?"

"जो आप चाहते हैं।"

"मैं !"

"क्या आप नहीं चाहते कि कमला जीना सीखे।"

कान्त ने दृष्टि उठाकर कमला को देखा। गर्व उसकी आँखों में झलक उठा। बोला, "मै जानता हूँ पर कभी-कभी डर लगने लगता है।"

"जीने से," कमला ने शरारत से कहा।

"कमला, डर जीने से ही लगता है। मौत से कोई नहीं डरता।"

कमला अप्रतिभ नहीं हुई। बोली, "मैं अब किसी से नही डरती। मैं केवल इतना जानती हूँ कि मुझे जीना है और जीने के लिए जो भी रास्ता मुझे दिखाई देगा, उस पर चलूँगी।"

कान्त बोला, "फिर मुझसे क्यों पूछा ?"

"मैं मानती हूँ", कमला ने कहा, "यह मेरी कमजोरी है। पर मैं पूछती हूँ कि क्या इतने बड़े संसार में कोई किसी को अपना न समझे।"

कान्त के अस्तित्व को जैसे एक बार फिर किसी ने झनझना दिया हो। उसने गर्व से कमला की ओर देखा पर उसका घर आ गया था। मुड़ने से पहले वह बोली, "कल वे सब लोग जा रहे हैं।"

"अच्छा।"

"मैं नहीं जा रही।"

"ठीक है।"

कमला ठिठकी। पास आकर कहा, "मास्टर जी!"

"हाँ।"

"नहीं पूछियेगा कि मैं क्या करूँगी?"

"जानता हूँ, नर्स बनोगी!"

"मास्टरजी!"

"कुमार ने मुझे बताया था। अच्छा है, इस लाञ्छन से बचने के लिए वह राह ठीक है। और तुम्हारी मुख्याध्यापिका जो कहती थीं..."

कमला ने पूरी बात नहीं सुनी। वह तीव्रता से मुड़ी और घर में चली गई। कान्त ने उसे देखा—हृदय में एक गहरी टीस उठी। पर वह रुका नहीं। कमला की भाँति अपने मार्ग पर बढ़ गया।

: १५ :

उस रात कान्त ने तन्मय होकर डायरी में लिखा, "जीवन क्या है? कौन जानता है, कब कोई क्या बन जायगा। कमला कहाँ से कहाँ पहुँच गई। वह विधवा है, सुन्दरी है। उसे अपनी राह चलने का अधिकार नहीं है। दुनिया मानती है कि वह चल ही नहीं सकती। इसलिए दया करके सब उसे अपनी बनाना चाहते हैं। उनमें मैं भी हूँ। आज से नहीं उसी दिन से जब वह पहली बार पढने के लिए मेरे सामने आई थी। यह कैसी तृष्णा है? यह कैसी वासना है? वासना! वासना क्या बुरी है? वह अनहाया है। उसका हृदय घायल है। उसे मरहम चाहिए। वह मेरी बनेगी तो उसे नव जीवन मिलेगा। मुझे शक्ति मिलेगी। कमला शक्ति है..."

उसकी कलम काँपी। उसने अपना सिर मेज पर टिका दिया। कई क्षण

सोचता रहा। फिर लिखा, "कमला देश की सेवा करना चाहती है। वह पूर्ण स्वतन्त्रता से रहना चाहती है। और मैं भी स्वतन्त्रता चाहता हूँ। पर मेरा परिवार, मेरी माँ .."

वह फिर रुका और फुसफुसाया, "नहीं मैं किसी की चिन्ता नहीं करूँगा। मैं देश-सेवा के लिए सब कुछ त्याग दूँगा। मैं अब तक प्रेरणा देता रहा हूँ। मुझे स्वयं भी कुछ करना चाहिए पर..."

तभी माँ ने आकर कहा, "बेटे! अब तक क्या कर रहा है। देख तो यहाँ कितनी गरमी है। पसीने में नहा रहा है।"

"अभी उठता हूँ।"

"उठ भी, सवेरे कर लेना।"

"बस अभी।"

"ऐसा भी क्या लिखना है?"

कान्त को क्रोध आगया, बोला, "माँ, तुम सो जाओ। मैं काम खत्म करके उठूँगा।"

माँ निरुत्तर चली गई। कान्त ने कलम उठाई पर तार टूट चुका था वह बहुत देर तक मूर्त्तिवत् बैठा सोचता रहा। लिख कुछ न सका। तब मन मारकर उठा। सामान समेटा और ऊपर चला गया। देखा, माँ उसी का बिस्तरा ठीक कर रही थी। उसका मन भर आया। कुछ देर उससे बातें करता रहा। माँ ने जब विवाह की चर्चा चलाई तो उसने भी उसमें रस लिया और फिर रात को स्वप्न देखा। उसका विवाह सुरैया से हो गया है। और उस विवाह से उसके परिवार, उसकी जाति, उसके संसार में एक हलचल मच गई है। माँ का दिल टूट रहा है। वह रोती रहती है। पर कान्त अपनी माँ को जानता है। विरोध की शक्ति ने उसे भावना पर विजय पाना सिखा दिया है। उसने सुरैया से कहा, "प्रिये! माँ को तुम जानती हो। वह प्रेम करती है। उसके विरोध को प्रेम से जीतना होगा।"

सुरैया बोली, "मैं जानती हूँ मेरे सरताज, मैं उन्हें मना लूँगी।"

कान्त ने धीरे-धीरे देखा, कि सुरैया अपने प्रयत्नों में सफल होती जा रही है। वह माँ से माँ की भाषा में बात करती है। उनके चौके-बासन पूजा-पाठ की किसी वस्तु को नहीं छूती। उन्हे दूर से झुककर प्रणाम करती है। और फिर उन कामों में लग जाती है जो छूतछात की परिभाषा से बाहिर माने जाते है। एक दिन उसने माँ से कहा. "मां! अब तो आप ही मेरी माँ हैं। मेरी जननी मुझे नन्ही-सी बच्ची छोड गई थी। तब से मै बिना माँ के रही हूँ। अब तो आप ही मुझे अपनी गोद में स्थान दें।"

कान्त देख रहा था—माँ की लाल आँखो में आँसू बहने लगे है।

सुरैया कहती रही, "माँ, विश्वास रक्खो मै आपकी भावनाओ का आदर करूँगी। मै ऐसा कोई काम नहीं करूँगी जिससे कोई आपके परिवार आचरण पर उँगली उठा सके।"

माँ ने दृष्टि उठाकर सुरैया को देखा बोली नहीं। सुरैया एक क्षण भर रुककर फिर बोली—"माँ! आप उन्हें मना लें तो मै शुद्ध हो सकती हूँ।" अब माँ से नही रहा गया। उसने सुरैया को छाती से लगा लिया। बार-बार उसका मुँह देखने लगी। शायद तब वह सोच रही थी—मेरी बहू, इतनी सुन्दर, इतनी प्यारी!

उसी संध्या को माँ उसके पास आई। धीरे से बोली, "क्यो रे, एक बात कहूँ?"

"क्या बात माँ?"

"तू बहू को शुद्ध कर ले।"

कान्त ने गरदन उठाकर माँ को देखा, "तब तुम्हे कोई शंका नहीं होगी?"

"शंका की क्या बात है", माँ ने कहा, "अब तो शुद्ध होवे ही है।"

"तुम उसे अपनी रसोई में आने दोगी?"

"हाँ।"

"तुम उसके हाथ का खाना खाओगी ?"

"सब खायेंगे तो मैं क्या मना करूँगी ?"

कान्त सोचने लगा, यह वही माँ है जिसने कहा था कि मैं विष खाकर प्राण दे दूँगी। और अब वह कह रही थी कि सुरैया यदि अग्नि को साक्षी करके सरला या सुमित्रा बन जाय तो मैं अपना लूँगी।

समाज के मन्त्री ने भी उससे कहा था, "कान्त ! तुम्हारा साहस धन्य है। मैं तुम्हे बधाई देता हूँ। पर कान्त, अब तुम उसको शुद्ध कर लो।"

"क्या ?"

"अब तो वह तुम्हारी है। तुम हिन्दू हो। उसे भी हिन्दू होना चाहिए।"

"क्या यह आवश्यक है ?"

"हाँ, पति का धर्म स्त्री का धर्म है।"

"वह शुद्ध न हो तो..."

"तो उसके मन में पाप है। वह तुम पर जादू करना चाहती है।"

"मन्त्रीजी।"

"कान्त ! मैं ठीक कहता हूँ। तुम उसे हिन्दू बनाओ। नहीं तो तुम एक दिन मुसलमान बनोगे ?"

कान्त सहसा क्रोध से भर उठा पर ऊपर से वह मुस्कराया, बोला, "मन्त्री जी मैं अपने को जानता हूँ और सुरैया को भी। वह मेरी पत्नी है।"

मन्त्री विद्रूप से बोले, "मैंने तुम्हें चेतावनी दे दी है। यह असंभव है कि वह मुसलमान रहे और तुम हिन्दू। वह तुम्हारी सन्तान को तुमसे छीन लेगी।"

कान्त ने उसी दृढ़ता से कहा, "सन्तान की चिन्ता संतान होने तक छोड़ी जा सकती है। मेरे मन में क्या है इसका तुम विश्वास नहीं करोगे। पर एक बात निश्चित है, सुरैया सुरैया रहकर मेरी पत्नी होगी अन्यथा नहीं। सुमित्रा और सावित्री मेरी जाति में कम नहीं हैं। शुद्धि को मैं प्रेम का अपमान समझता हूँ।"

यही बात उसने माँ से कही पर दूसरी रीति से, "माँ ! तुम सुरैया को

चाहो तो सावित्री कह सकती हो पर मैं समाज में जाकर प्रदर्शन नहीं करूँगा।" पर बात माँ के गले से नहीं उतरी। और यहीं आकर उसका स्वप्न भंग हो गया। चौंककर देखा, वह अपनी चारपाई पर लेटा है। विश्व शान्त है। आसमान मे तारे जगमगा रहे हैं और माँ गहरी निद्रा में रह रहकर ठोर उठती है।

तो वह स्वप्न देख रहा था, उसे लज्जा आने लगी—उसने आँखे मीचकर सो जाना चाहा, पर नींद नहीं आई। विचार फिर मस्तिष्क मे भरने लगे। इस बार वह शान्त था और सोच रहा था कि ये स्वप्न मेरी मानसिक दुर्बलता के प्रतीक हैं। मेरे पास विचार हैं पर कार्य नहीं है। बिना कार्य के विचार गर्भपात के समान है। मुझे अब निश्चय कर लेना चाहिए। क्या मैं सचमुच विवाह करना चाहता हूँ? क्या मुझे नौकरी छोड़ देनी चाहिए। क्या भूखे मरने का भय उचित है। मनुष्य, मनुष्य है तो उसे कोई भय नहीं है और फिर काम करते-करते वह मर भी गया तो क्या दुनियाँ में तूफान आने वाला है। आकाश की उल्का की तरह संसार में प्रतिक्षण असंख्य मानव मरते रहते हैं। उनसे क्या संसार में अन्तर पड़ता है। आज भारत गांधी है और गांधी भारत। परन्तु एक दिन गांधी मर जायगा और भारतवर्ष उसी तरह चलता रहेगा।

उसका मन शान्त होने लगा। उसमें शक्ति भरने लगी—'ईमानदारी की बात यह है कि मुझे विवाह कर लेना चाहिए। केवल लड़की सुशिक्षित हो और ऐसी हो जो मेरा साथ दे सके। जो सम्बल हो। फिर चाहे वह किसी जाति की हो, किसी धर्म की हो।'

उसे लगा जैसे चारों ओर शान्ति है। मीठी-मीठी वायु मधुर गंध बहा रही है। और तारो की दुनियाँ से लोरियो का कोमल प्रिय शब्द धीरे-धीरे उसे स्वप्न-लोक में ले जा रहा है।

इसके बाद जब उसने आँखें खोलीं तो देखा—तारों के प्रकाश को परे हटाकर उषा की मधुरिमा विश्व पर छा चली है। केवल पूर्व मे शुक्र तारा

अपने उज्ज्वल प्रकाश से अभी भी जगमगा रहा है। शुक्र दैत्य-गुरु हैं। परम तेजस्वी हैं, और सबसे बढ़कर संजीवनी विद्या के जानने वाले है। सूर्य की प्रियतमा उषा उनका आदर करती है। तभी वह अमर है। यही सोचता हुआ प्रसन्न-मन वह उठा और सैर करने के लिए जंगल की ओर चला गया। माँ अभी सो रही थी। और बाहिर सड़क पर उसी की भाँति कुछ व्यक्ति जा रहे थे। वह उन्हे जानता था। वह उन्ही में जा मिला। एक बन्धु बोले, "क्या आप समझते हैं कि युद्ध होकर रहेगा?"

"निस्संदेह। हिटलर का विश्व-राज का स्वप्न विश्व-युद्ध बिना पूरा नहीं होगा।"

दूसरे सज्जन बोले, "हिटलर निस्सदेह महान् पुरुष है। उसने अंग्रेजो की शक्ति को चुनौती दी है।"

कान्त बोला, "जीहाँ, उसने विश्व की ईमानदारी को चुनौती दी है। वरसाई की सन्धि में विश्व-शक्तियों ने जो बेईमानी की थी, उसी का परिणाम हिटलर है।"

पहले सज्जन बोले, "तो क्या तुम समझते हो कि वह ससार को जीत लेगा?"

"नहीं।"

"इतना शक्तिशाली होकर भी?"

"जीहाँ, उसके पास शक्ति है, पर वह शक्ति बदले की भावना से उपजी है। वह जिस पाप का विरोध करने उठा है, वही पाप वह स्वयं कर रहा है। उसने आर्य जाति की शुद्धता के नाम पर आर्येतर जातियो के ऊपर कितने अत्याचार किये हैं। वह बदला लेने के लिए बर्बर बन रहा है। बर्बर का पतन अनिवार्य है।"

प्रश्न करने वाले सज्जन बडे प्रभावित हुए, परन्तु उन्हे लौटना था। आगे एक और सज्जन मिल गये। वे बोले, "हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न का निपटारा एक ही प्रकार हो सकता है। या तो सब हिन्दू मुसलमान हो जायें

या मुसलमान हिन्दू ।"

कान्त मुस्कराया, "आप ठीक कहते हैं ।"

"हिन्दू तो मुसलमानों को अपना नही सकते । इसलिए सब हिन्दुओं को मुसलमान हो जाना उचित है ।"

"आप गलत नहीं कह रहे हैं । जिसकी दृष्टि जितनी तेज है आकाश उसके लिए उतना ही ऊँचा है ।"

"क्या मतलब !"

"मतलब यह है कि सब अपने दृष्टिकोण से देखते और सोचते हैं ।"

"तो फिर आप कोई हल बताइये," उन्होंने किंचित क्रुद्ध होकर कहा ।

कान्त बोला, "क्यों न सब इन्सान बनें ?"

"क्या वे अब इंसान नहीं हैं ?"

"अब तो हिन्दू मुसलमान हैं ।"

"आपका मतलब है कि धर्म आदमी को इंसानियत से गिराता है । आप रूस के भक्त हैं ?"

"जी नहीं । मैं रूस का भक्त नहीं हूँ । और मैं यह भी नहीं जानता हूँ कि धर्म क्या करता है, पर आज के हिन्दू मुसलमान इन्सान नहीं हैं, हिन्दू मुसलमान हैं ।"

"आपकी बात कुछ-कुछ समझ में आती है पर इसमें धर्म का क्या दोष है । वे लोग धर्म को समझते नहीं ।"

"नहीं समझते तो फिर चिपटे क्यों हैं ? कैसे कहते हैं कि वह खतरे में हैं । बात यह है पंडितजी, हम धर्म को जान ही नहीं सकते ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि वह हमारी कमाई नहीं है । विरासत में मिला है ।"

इस बात का अर्थ समझने में पंडितजी को कई क्षण लगे पर समझ गये तो प्रभावित हुए, बोले, "बात को तुमने पकड़ा है लेकिन कान्त

इसका हल क्या है।"

"सब फिर कंगाल बनें।"

"यानी धर्म-हीन।"

"बेशक सीधे-सीधे इन्सान बनें और स्वयं अपने धर्म को प्राप्त करें।"

तभी कुछ और लोग आ गये, और बात का रुख अनायास ही बदल गया। नये मित्र आर्यसमाजी थे। बोले, "कान्त! आर्यसमाज तो अब बड़ा शिथिल हो गया है।"

कान्त बोला, "शिथिलता कार्य के अभाव से पैदा होती है। कार्य का अभाव या तो कार्य की समाप्ति के कारण होता है या श्रद्धा के अभाव के कारण।"

मित्र बोले, "काम का अभाव तो नहीं है।"

"फिर श्रद्धा का अभाव है।"

"जीहो, वह तो है, और उसका कारण है काँग्रेस।"

"क्यों ?"

"क्योंकि हमारे सारे कार्य-कर्त्ता उधर चले गये।"

"क्यों चले गये ?"

"क्योंकि उन्हें आजादी का प्रश्न अधिक आवश्यक लगा।"

"तो फिर ठीक है। आर्यसमाज के किवाड़ बन्द करके उसे इतिहास की सामग्री बना दीजिये।"

उसके बाद जो सज्जन मिले वह चींटियों को आटा खिला रहे थे। कान्त बोला, "क्या बना रहे हो, चौधरी साहब ?"

"जी चींटियों को आटा खिला रहा हूँ। कोई इनकी बात नहीं पूछता, बेजबान हैं।"

कान्त ने कहा, "चौधरी साहब! इनकी जबान बहुत लम्बी है। भगवान् से भी लम्बी है। आदमी की फिकर कीजिये।"

"वह तो सभी करते हैं। अपनी फिकर आदमी की फिकर है।"

कान्त जोर से हँसा, चौधरी भी हँसे और दोनो दो राहो पर बढ गये। वह तब तक बहुत दूर आ गया था। उसके दोनो तरफ दूर-दूर तक खेत फैले पड़े थे। दूर कहीं माली गा रहा था और उसके पीछे नाले से रहँट खींचते हुए बैलो की घंटियाँ बज उठी थी। तब पूर्व में सूर्य की लाली धीरे-धीरे सफेद धुन्ध मे पलटने लगी। गर्मी का आकाश सदा एक धुन्ध से भरा रहता है, और उसके पीछे प्रचण्ड सूर्य एक बच्चे की गेंद के समान दिखाई देता है। उसने सोचा, क्या हमारे देश की यही दशा नहीं है। क्या हमारे भाग्याकाश पर गुलामी और साम्प्रदायिकता की धुन्ध नही चढ़ रही है। और क्या प्रतापी और उदार भारतवासी उस धुन्ध के पीछे निकम्मे और असहाय नहीं पड़ रहे हैं।

इन्ही विचारो मे उलझा हुआ वह कब लौट पड़ा यह स्वय उसे भी पता नहीं था। लेकिन मार्ग में उसे याद आया— घर जाने से पहले उसे कुमार और कमला से मिलना है। वह आज उनसे स्पष्ट और बेलाग बात करना चाहता था। इसलिए पहले वह कुमार के कमरे पर पहुँचा। लेकिन वहाँ ताला लगा था। वह चौंका, उसने नीचे जो व्यक्ति रहता था उसे पुकारकर पूछा, "कुमार बाबू कहाँ हैं?"

"वे तो गाँव चले गये।"

सुनकर वह ठगा-सा देखता रह गया। फिर चुपचाप कुछ सोच सकने में असमर्थ कमला के घर की ओर बढ़ गया परन्तु वहाँ भी ताला लगा हुआ था।

साहस करके एक पड़ोसी से पूछा, "क्या वे लोग चले गये?"

"जीहाँ, गाँव गये हैं।"

उसने एक बार फिर ताले को देखा, फिर पड़ोसी को। वे सज्जन न जाने क्यों मुस्करा उठे। कान्त को वह मुस्कान युवा पुत्र की मृत्यु पर श्मशान में संगीत-नृत्य के समान लगी। ऊपर से शान्त पर हृदय में ज्वालामुखी समेटे वह चुपचाप लौट पड़ा। जब घर पहुँचा तो पता लगा वह पसीने से तर है। वह असल में भाग रहा था। विचारों के प्रवाह के साथ भाग रहा था।

चौथा खण्ड

: १ :

कुमार का पत्र कान्त के नाम—

प्यारे कान्त !

जब वहाँ से चला था तो तुमसे मिलना नहीं हो सका। सहसा जी में उठा कि चलो किस तृष्णा में फँसे हो। कान्त कान्त है, तुम तुम। दोनों की दो राहें हैं। तुम उसे भी क्यों अपने बंधन में फँसाना चाहते हो। इसलिए प्रेम के उस कच्चे धागे को, जिसमें हम कई वर्षों से बँधते जा रहे हैं, मैंने अपनी समझ में एक झटके से तोड़ डाला। अब तुमसे कभी मिलूँगा यह आशा नहीं है। चाहता भी नहीं। अस्पताल मे पडा-पडा अपने को टटोलता रहा हूँ। वहाँ मैं अकेला था, निपट अकेला, फिर भी एक व्यक्ति न होता तो क्या मै इतना बुद्धिमान बन पाता। अकेला रहा हूँ। कष्ट मेरे जीवन के अंग बन गये थे। उस नये कष्ट को भी मैं पी जाता, पर होना तो कुछ और था। न जाने कहाँ से आकर कमला ने मेरी सेवा की। नारी सेवा का स्वरूप है, पुरुष सेवा का पात्र। नारी के सामने वह नितान्त असहाय है। नारी उसकी कठोर हड्डियों पर रक्त और मांस का आवरण चढ़ाती है, नारी उसके हृदय में स्पन्दन पैदा करती है। नहीं तो वह मस्तिष्क के बवडर में फँसकर समाप्त हो जाता। मंगल ग्रह में बसने वाले काल्पनिक प्राणियों के चित्र मैंने देखे हैं। उनका सिर हाथी के समान तथा शरीर साँप के समान दिखाया गया था। मैं

अब उसका रहस्य समझने लगा हूँ। वहाँ सम्भवतः नारी नहीं है। नारी होती तो क्या पुरुष इतना सोच-सोच कर मस्तिष्क को सुजा लेता। नारी अपने कोमल स्वरों से, मधुर चितवन से, रसमयी वाणी से, सँवार-सँवार कर उसके सारे शरीर को एक समान बना देती है।

कान्त! तुम सोचते होगे कि मैं कवि बनने चला हूँ। पर सुनो तो, जिस दिन आया था उसके दूसरे दिन से पत्र लिखना शुरू किया था। न जाने कितने अधूरे पत्र सुन्दर की नाव बनकर रह गये। बुद्धि मुझे नहीं मिली। शब्द ढूँढने मे मुझे कठिनता होती है, पर साथ ही यह भी सत्य है कि भावना भाषा को आप ही ढूँढ लेती है। मैं क्या हूँ, इस बारे में मुझे कभी शंका नहीं होती। देश के लिए मर मिटने की साध यद्यपि आज भी सदा की भाँति हरी है, तो भी मैं कोई नेता नहीं हूँ, न कोई आध्यात्मिक व्यक्ति हूँ। पहली पत्नी जब मुझे छोड़कर चली गई, तब से मै ब्रह्मचारी हूँ, ऐसा कहना अपने को धोखा देना है। मै अपने को अभी तक बेईमान नही समझता था, पर आज लगता है जैसे मैं बेईमान भी हूँ। नहीं तो इतनी जल्दी तुमसे छिपकर भागने की क्या जरूरत थी। भाग आया तब कहीं जाकर मुझे पता लगा कि मै भूचाल से बचकर भागना चाह रहा हूँ।

कमला के हृदय को तुमने इतना स्वच्छ बना दिया है कि वह जीवन की बड़ी से बड़ी जटिलता को बड़ी सरलता से पार कर जाती है। उसके मस्तिष्क में यह प्रश्न ही नहीं उठता कि जटिलता मनुष्य को उलझन मे फँसाती है। वह गीता के निर्द्वन्द्व की भाँति मुक्त न होती तो उसका जीवन दूभर हो जाता। वैसे मेरी भाभी ने उस पर क्या लांछन नहीं लगाये। यहाँ आकर भी वह उसे क्षमा नही कर पाई है। कहती है कि नारी निःस्वार्थ और निर्द्वन्द्व हो ही नहीं सकती। वह अपने बच्चे से स्नेह करती है, दूसरे के बच्चे से नहीं। वह अपने पति से प्रेम करती है, दूसरे से नहीं। कमला के न पति है, न पुत्र! पर इसी कारण वह और भी खतरनाक है।

कान्त! नारी बड़ी ईर्षालु होती है। मुझे भाभी पर दया आती है। वही

क्यों, गाँव का सारा वातावरण बुद्धिहीनता और अज्ञान से भरा पड़ा है। कवियों ने जिस ग्रामीण जीवन के गीत गाये हैं वे न जाने किस लोक के गाँव हैं। आज तो दरिद्रता, मूढ़ता और गंदगी का दूसरा नाम गाँव है। निस्सदेह वे सरल है, वे मनुष्य से डरते नहीं, आतिथ्य अभी मिट नहीं गया है, परन्तु वासना, ईर्षा, द्वेष और हिंसा उनमें शहर से कम नहीं है। इन क्षेत्रों मे उनकी बुद्धि खुलकर खेलती है। देश के प्रति उनका अज्ञान दर्द पैदा करता है। देश के बाहिर क्या है? विज्ञान क्या कर चुका है। ये बातें उनके लिए पौराणिक अवतारो की कहानियो के समान हैं। आज भी ऐसे लोग हैं, जिन्होने रेल नही देखी।

कार्य करने का कितना विशाल क्षेत्र हमारे सामने पड़ा है। गांधीजी की बात आज मुझे कितनी सत्य मालूम होती है—"भारत को गाँवों मे जाकर देखो।" मैंने तो अब निश्चय कर लिया है कि गाँव मे रहूँगा। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न की गुत्थी यही सुलझ सकती है। छूत-छात होने पर भी यहां प्रेम का अभाव नही है। मुझे पंडित मेलाराम की याद भी आती है। उनके दिमाग का कोई पेच ढीला है, पर वे बात पते की कहते हैं। हिन्दू-मुसलमान को मिलाने से पहले वे अछूतों को मिलाने पर जोर देते है। बात साधारण लगती है, पर उसकी गहराई नापो तो थाह नहीं है। मुझे तो लगता है कि इसके बिना हिन्दू-मुस्लिम एका नही हो सकेगा।

बहुत बात लिख गया, कान्त। याद नही पड़ता कभी इतना लम्बा पत्र लिखा होगा। लिखने को था भी कौन? लगता है कि एक दुनिया पीछे छोड़ आया हूँ। एक क्या. ... न जाने कितनी दुनिया मैंने पीछे छोड़ दी हैं? कितनी और छोड़ूँगा, यह मैं नहीं जानता। कमला का उपकार स्वय एक दुनिया है। उसका पावना कौन चुका सकेगा। मुझे विश्वास है कि बिना चुकाये ही वह अधिक आश्वस्त रहेगी। उसका सुख ही उसका भुगतान है।

पत्र का उत्तर तो दोगे न? हबीब साहब की बहिन सुरैया की शादी दिल्ली से होगी। आ रहे हो क्या? और सब कुशल है। इस बार आम

बहुत खाये हैं। स्वस्थ हूँ। वर्षा अच्छी है। हल चल रहे हैं। बैठकर देखना बड़ा प्यारा लगता है। पगडंडियों पर जामुनें भरी पड़ी हैं। टपका आम हर कहीं बिखरा पड़ा है। शरीर के लिये यह सबसे अधिक गुणकारी है। कभी-कभी जी में उठता है कि तुम होते, कमला होती, कितना अच्छा रहता। नदी के किनारे घूमते, आम चूसते और दूध पीते। लेकिन मन मे सोचा क्या कभी पूरा होता है।

अब भी जब पत्र समाप्त करने चला हूँ, बहुत सी बाते याद आ रही हैं। लेकिन अब नहीं लिखूँगा। सबको मेरी याद दिलाना। माँ को प्रणाम कहना और पत्र डालना।

तुम्हारा भाई
कुमार

× × ×

कमला का पत्र कान्त के नाम

मास्टरजी,

जब से आई हूँ बराबर आपको पत्र लिखने की बात सोचती रही हूँ। पर लिख नहीं पाई। मन में पाप था तभी तो। सोचती हूँ कि आपका और मेरा सम्बन्ध ही क्या था? अचानक कैसे हम मिले और फिर कुदरत ने क्या नहीं किया? मेरा भार बराबर आप पर बढ़ता चला गया। जैसे-जैसे आपने कहा—जीवन जीने के लिए है। अनन्त आत्माओं में हम सब एक कड़ी के समान हैं। हम मर सकते हैं पर मनुष्य नहीं मरता। भय मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। जो अकेला है, वही निर्भय है। इसीलिए वह जीना जानता है—तैसे-तैसे ही मैं आप पर निर्भर करती गई। अपने स्वर्गीय स्वामी को सब कुछ देकर भी समझती हूँ, मैंने अपने पास बहुत कुछ बचा लिया है। वही मैने आपको दिया। आपके सामने आने पर मुझे लगता था कि मैं एक क्षुद्राति-क्षुद्र कण के समान पर्वतराज हिमालय के सामने खड़ी हूँ। पर आज वह हीन भाव आपने मुझ से छीन लिया है। आज तो कृष्ण

सखा अर्जुन की तरह मैं आपको पहचानती हूँ। पर यहाँ आकर मेरी दुर्बलता मुझ पर फिर हावी हो जाती है। मैं न आपकी माता हूँ, न बहिन, न वधू, न पुत्री। फिर मै आपकी क्या हूँ ? मैं नहीं जानती। पर इतना अवश्य जानती हूँ कि आपके बिना मैं कुछ नहीं हूँ। यह कैसी विडम्बना है। कोई भी कैसे इस परिस्थिति को स्वीकार करे। दुनिया को कोसना सरल है, पर दुनिया की आँखों से सत्य को परखना कठिन है। मैंने स्वयं उस सत्य को देखा और मै उससे मुक्ति पाने की बात सोचने लगी। प्रेम क्या पूँजी सहेजता है। वह तो चिरदाता है। मैंने सोचा, क्या मै आपके बिना जी नही सकती। क्या किसी पर निर्भर रहना उचित है ? क्या आपने ही नहीं बताया था— निर्भरता मौत है। इसीलिए मै बार-बार आपके पास से भागी। अकेले खड़े होने की चेष्टा की, पैर लड़खड़ाया, पर आपका सहारा तो लेना नहीं था। परिणाम यह हुआ कि दूसरी ओर झुकी। देखा, हर कोई मुझे सहारा देने को आतुर है।

मास्टरजी ! नारी का क्या यही मूल्य है ? नारी को क्यों हर कोई अपनी बनाना चाहता है ? क्यो वे उसे किसो और रूप में नहीं देख सकते ? आपसे मैंने उस दिन भी यही प्रश्न पूछा था। आपका उत्तर कितना ठीक था, यह मैंने आज जाना है। मै क्यों उनकी चिन्ता करती रही ? मै क्यो डरी, क्योंकि पाप मेरे अन्दर था।

मैंने कुमार की सेवा की। मैने न चाहकर भी उसमें लय हो जाने की चेष्टा की। उन्हीं दिनों नर्स बनने का प्रस्ताव लेकर डाक्टर जोसेफ ने मेरे जीवन में प्रवेश किया। मुझे लगा—इस सलाह के पीछे पुरुष की वही भावना काम कर रही है। मै डरी तो, पर न जाने किस अन्तर में सुख की एक क्षीण रेखा अंकित हो गई। मुझे अपना भविष्य सुखप्रद लगा। फिर हबीब साहब के घर से आते हुए उस रात आपसे जो बातें हुईं, आपने जो अचानक जोसेफ का नाम लिया, तो जैसे मुझ पर वज्र टूटा। आपको इतना समीप जानकर आपसे मैंने सब कुछ छिपाया, वही लज्जा मुझे खा गई और

मैंने घर आते ही अम्माजी से कहा, मैं गाँव चलूँगी।

मैं एक बात कह दूँ। मैंने जो बातें आपसे छिपाईं वे इसलिए नहीं कि मैं उन्हें आपसे छिपाना चाहती थी पर वह इसलिये था कि मैं अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती थी। यही आपकी शिक्षा थी और ठीक भी थी। मैं आप पर कब तक निर्भर रहूँगी और फिर नारी की क्या कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है ? क्या वह बिना सहारे के खड़ी नहीं हो सकती, ये ही बातें मुझे आपसे दूर हटाती थीं। पर हर कहीं मैं यही देखती हूँ कि वे लोग मानते हैं—नारी स्वतन्त्र नहीं खड़ी हो सकती। उसे पुरुष पर निर्भर रहना चाहिए। इसीलिए मैं भाग आई। मैंने जब अम्माजी से कहा तो सच मानना, वे बड़ी खुश हुईं, लेकिन रोना वही है—तारा के लड़के को गोद ले लो। कुल का नाम चलेगा।

मास्टरजी ! कुल का नाम न भी चले तो क्या दुनिया नष्ट हो जायेगी ? लेकिन फिर अन्दर से कोई कहता है कि यह भावना तो मुझमें भी है—मेरे पीछे मुझे अपना कहने वाला कोई हो। यह बात तो आपके मन में भी उठती होगी। नहीं क्या ?

एक बात और मन में उठती है। कुमार आश्रम में जा रहे हैं। आप भी नौकरी छोड़ दीजिए। फिर हम तीनों पैदल विश्व-भ्रमण के लिए निकलें और उसी में जीवन खपा दें। हूँ न पागल। आपने मुझे क्या बना दिया। क्या ही अच्छा होता कि गाँव में पड़ी रहकर जीवन बिता देती। अब तो जीवन उछलता है। उधर सुरैया के विवाह की तारीख पास आ रही है। कैसे जाना होगा ? सोचती हूँ—सुरैया की शादी तुमसे हो पाती। क्या कभी ऐसी शादियाँ सम्भव हो सकेंगी ? जिस दिन होंगी, उस दिन भारत का मान-चित्र पलट जाएगा। कहने में यह बात कितनी आसान है। आसमान भी कितना स्वच्छ है। पर उसके रहस्य को जो कुछ-कुछ जानते हैं, वे समझते हैं जटिलता क्या होती है ?

और क्या लिखूँ। कोई अन्त नहीं है और पत्र भी अंतिम नहीं है। न

: २ :

उस दिन दफ्तर पहुँचने में कुछ देर हो गई। वार्षिक पड़ताल के दिन थे, इसलिये सब ओर हलचल थी। बड़े बाबू ने उसे देखा तो पुकार लिया, "अरे भाई! अकेले होकर भी इतनी देर कर देते हो।"

"जी, तभी तो सब काम करना पड़ता है।"

"तो विवाह कर डालो?"

कान्त मुस्कराया, "जी, सोचता तो हूँ।"

तभी छोटे बाबू ने पुकारा, "बाबू निशिकान्त! स्टाफ का फाइल भेजो।"

जवाब दिया बड़े बाबू ने, "अरे भाई! आकर दफ्तरी से ले लो।"

और कान्त से कहा, "बैठो भाई! तुमसे एक बात कहनी है।"

कान्त को बड़ा अचरज हुआ। बड़े बाबू दफ्तर में और जाँच के दिनों में ऐसी बातें बहुत कम करते थे। वह चुपचाप उनके पास बैठ गया। बड़े बाबू ने मेज पर झुककर धीरे से कहा, "वजीर साहब का जवाब आ गया है। उसमें तुम्हारा जिक्र नहीं है।"

"तो इसका मतलब है कि मैं यहीं रहूँगा।"

"और क्या? भाई बड़े दुष्ट है ये लोग। वह तो मैं बैठा हूँ। कोई और होता तो .."

"जीहाँ। कोई और होता तो यदि निकलना नहीं तो बदली अवश्य होती।"

"वह तो हो ही जाती, पर तुम जानते हो यह क्यों हुआ?"

"क्यों?"

"बड़े साहब स्वयं वजीर से मिले थे। वजीर उनसे बहुत प्रसन्न है। वैसे तो भाई उनका राज्य है अपना प्रभुत्व जमावेंगे ही। बनिये, ब्राह्मण, जैनी सभी यही करते रहे हैं। फिर भी ये लोग पुराने आदमियों को नहीं छेड़ेंगे।"

"जीहाँ, सो तो है।"

"भई वह बटाई—काश्त वाला फाइल नहीं मिल रहा है। देखना, कहीं मेरे पास तो नहीं है। ढूँढते वक्त कुछ और जरूरी केस मिलें तो बतला देना। इतना काम है कि बस .."

कान्त की अब समझ मे आया। वह बडे बाबू को जानता है। कभी नियम से काम नहीं करते। काम लेना नहीं जानते। जो काम करता है, उसी को दबाते है।

लेकिन यह ज्ञान उसकी रक्षा न कर सका। वह चुपचाप उनके फाइल देखने लगा। बटाई का केस उसी में था। उसे निकालकर बडे बाबू के आगे रखा। देखकर बोले, "ओ, यह यहाँ था। मै जानता था, तभी तो तुम्हें कहा था। अब भाई, इस केस का सारा पत्र-व्यवहार अंकित कर दो..."

तभी वेतन-बाबू ने आकर कहा, "कान्त बाबू! आडीटर ने आपको बुलाया है। कर्मचारियो की नियुक्ति की मंजूरी देखना चाहते हैं।"

"वह तो तुम दिखा सकते हो।"

"मुझे कुछ पता नहीं है।"

"कैसे पता नही। लिस्ट लो और ढूँढो।"

वेतन-बाबू ने ध्यान नहीं दिया और मुड़ चला। कान्त को क्रोध आ गया। उसने कहा, "मै नहीं जाऊँगा। मै चपरासी नही हूँ। मै केवल फाइल भिजवा सकता हूँ।"

वह मुड़ा तो छोटे बाबू आये, "अरे भाई कान्त! रिसर्च आफीसर की स्कीम तो समझाना।"

"मै समझाऊँ।"

छोटे बाबू विनम्र थे, बोले, "अरे भाई! क्रोध क्यो करते हो ? तुम्हें सब पता है। आडीटर प्रश्न पूछते है।"

वे गये। स्टोर-बाबू ने धीरे से आकर कहा, "कान्त बाबू! भई, दया करके क्रय-विक्रय के फाइल तो निकलवा दो।"

"अभी लो।"

"और सरकार के स्वीकृति के पत्र भी।"

"सब तैयार हैं।"

"धन्यवाद कान्त ! धन्यवाद ! तुम बहुत अच्छे हो।"

कान्त मुस्कराया। चपरासी ने शीघ्रता से आकर कहा, "बडे साहब सलाम देते हैं। मेम साहब आई हैं।"

कान्त तुरन्त अन्दर चला गया। साहब बोले, "जरा बंक चले जाओ। मेम साहब का ड्राफ्ट है। पाँच हजार रुपया लाना है। तुम्हारे नाम लिखे देता हूँ।"

"जी, लिख दीजिये।"

साहब हँसकर बोले, "भाग तो नहीं जाओगे ?"

कान्त भी मुस्कराया, "साहब ! यह तो रुपये की जात पर निर्भर है।

मेम साहब हँस पड़ीं। साहब ने कान्त के नाम प्रमाण-पत्र लिख दिया। वह मुड़ा। मेम साहब फिर बोलीं, "देखो कान्त बाबू। रास्ते में जनरल स्टोर्स की बड़ी दुकान है। उनसे पूछते आना कि ज़िन आई या नहीं ? और ह्विस्की भी।" साहब ने कहा, "आगई हो तो लेते आना।" कान्त ने आकर सब बातें बड़े बाबू से कहीं, वे बोले, "जाना ही पड़ेगा।"

तब बारह बज रहे थे। सारी डाक उसी तरह पड़ी थी। वह समझ गया कि आज रात को देर तक बैठना पडेगा। तभी पोस्टमैन ने आकर उसे एक कार्ड दिया। लिखा था—"मैं कहीं नहीं जा रही, वहीं लौटूँगी—कमला।" वह स्तब्ध रह गया। वह जानता था कि इस बार कमला का आना आसान नहीं है। वातावरण विक्षुब्ध है। वह समाज के लिए दुराचारिणी है। ऐसी अवस्था में क्या वह यहाँ आकर समाज के सामने खड़ी हो सकेगी। लेकिन मनुष्य की वास्तविकता का रहस्य भी तो इसी प्रकार के वातावरण में खुलता है। उसकी शक्ति, उसका सत्य, कितने गहरे हैं, यह वह यहीं तो जान सकता है। तब कमला आकर इस वितण्डावाद का सामना करती है, तो

उसका साहस ठीक ही है।

सोचकर अनायास ही उसका मन प्रसन्न हो उठा। तभी देखा, सामने बैंक का विशाल भवन है। विचारों का तार टूट गया। पत्र एक बार फिर पढा। "मैं कहीं नहीं जा रही, वहीं लौटूँगी।—कमला।" ठीक उसे लौटना ही चाहिए और वह शीघ्रता से अन्दर चला गया।

और जब एक घण्टे बाद वह फिर उस रास्ते से लौटा तो उसकी जेब में पाँच हजार के नोट पडे हुए थे। और उसकी बगल मे दो ह्विस्की की बोतले थीं। तब सहसा मस्तिष्क में उठा कि क्यो न वह कमला को लेकर भाग चले। वहाँ जहाँ न जनता हो, न अपवाद, न रहस्य। लेकिन दूसरा क्षण आया, वह ग्लानि से भर उठा। कायर, संसार से भाग जाना चाहता है। तुमसे तो कमला जो असहाय है कितनी शक्तिशालिनी है। वह निडर और निर्भीक बनकर कर्म-भूमि मे लौट रही है और तू सशक्त होकर भी डरता है। उसने स्वयं तर्क किया, 'लेकिन मै भी तो कमला के लिए भाग जाना चाहता हूँ।'

'यानी आप उसकी रही-सही प्रतिष्ठा को नष्ट कर देना चाहते हैं।'

इस विचार के आते ही वह स्वयं अपने पर लज्जित हो उठा और तेजी से दफ्तर की ओर बढ चला। मेम साहब उसकी राह देख रहीं थी। रुपये और शराब पाकर बड़ी कृतज्ञ हुईं और फिर चपरासी को बुलाकर उसके लिए मंगल का प्रसाद मँगवाया। दस लड्डू थे। उन्हे अपने रूमाल में बाँधता-बाँधता कान्त सोचने लगा—ह्विस्की के पेग और मंगल के प्रसाद मे ज्यामिति का कौन सा नियम एकता स्थापित करता है। तभी मन में उठा, भय। भय से भागने के लिए मनुष्य आनन्द की खोज करता है और भय ही उसे भगवान की शरण में ले जाता है।

वह दफ्तर में प्रवेश कर चुका था और अनायस ही एक लड्डू खाने लगा था, परन्तु उसके सामने खड़े हुए नाटे एकाउण्टेण्ट क्रोध से तमतमा रहे थे। तेजी से पूछा, "कहाँ गये थे?"

"लड्डू खाने गया था। आप भी खाइये।"

"कान्त बाबू, यह दफ्तर है ? आपको अपने स्थान पर रहना चाहिए। आप सरकारी नौकर हैं।"

कान्त उसी तरह बोला, "सरकारी नौकरी लड्डू खाने को मना नहीं करती।"

नाटे बाबू तमतमा उठे, "मिस्टर कान्त! होश से बातें करिये।"

कान्त ने कहा, "आप व्यर्थ में नाराज हो रहे हैं। लीजिये पहले लड्डू खाइये।"

"शट अप !"

बात इतनी तेजी से कही गई थी कि सबका ध्यान उधर ही खिंच गया। बड़े बाबू ने पूछा, "क्या बात है, कान्त ?"

कान्त बोला, "जी मैं इनको लड्डू खिला रहा हूँ। और ये कहते हैं कि सरकारी नौकर लड्डू नहीं खा सकता।"

बड़े बाबू ने पूछा, "लड्डू कहाँ से लाये हो ?"

कान्त ने जवाब दिया, "मेम साहब ने मंगल का प्रसाद बाँटा है।"

"ओ, तो आप बड़े साहब की कोठी पर गये थे।"

"जीहाँ, और बैंक भी।"

नाटे एकाउण्टेण्ट ने क्रुद्ध आँखों से कान्त को देखा, "तो तुमने मुझे बताया क्यों नहीं ?"

"बता रहा था श्रीमान्, पर आप तो आगे सुने बिना क्रुद्ध हो उठे।"

"आपको पहले यह कहना था कि आप साहब के काम से गये थे।"

"ऊँ हूँ," कान्त गम्भीर स्वर में बोला, "उस समय मैं लड्डू खा रहा था। इसलिए वही पहला काम था।"

इतना कहकर वह अपने कमरे की ओर बढ़ गया। बड़े बाबू ने सहसा मुड़कर तेजी से कहा, "अरे अरे ! लड्डू कहाँ ले चले ?"

"सरकारी नौकर लड्डू नहीं खा सकते।"

"ऐसी की तैसी में गये सरकारी नौकर। इधर ला।"

और फिर रूमाल उसके हाथ में से लेकर उन्होंने सबसे पहले एक लड्डू स्वयं खाया और फिर नाटे बाबू की ओर मुड़े, "खाइये।"

नाटे बाबू हँस पड़े। कान्त ने ताली पीटी, "हीयर! हीयर!"

फिर उनके पास आकर कहा—"आओ दोस्त! अब बताओ मुझे क्या करना होगा? घर पर कोई नहीं है। रात भर बैठ सकता हूँ। इतना क्रोध न किया करो। साली नौकरी हमारी मालिका थोड़े ही है।"

एकाउण्टेण्ट ने प्रसन्न और लज्जित होकर कहा, "क्या बताऊँ, कान्त! इस नौकरी ने निकम्मा कर दिया है।"

कान्त बोला, "सच कहते हो, जी मे उठता है कि इसे लात मारदूँ।"

"लात तो मैं भी मार दूँ, पर उसके बाद?"

कान्त ने धीरे से कहा, "क्या अपने ऊपर तुम्हें इतना भी विश्वास नहीं, और अगर कुछ भी नहीं बनता है तो क्या दुनिया नष्ट हो जायगी।"

"मैं तो हो जाऊँगा।" एकाउण्टेण्ट ने कहा।

कान्त मुस्कराया, "पर भाई साहब आपके नष्ट होने पर दुनिया का क्या बिगड़ेगा? वह तो इसी तरह जिन्दा रहेगी। हाँ, आपके साहस से उसे लाभ ही रहेगा।"

एकाउण्टेण्ट दफ्तर का प्रतिभा-सम्पन्न आदमी था। परन्तु जीवन में वह दूसरो से भिन्न नही था। वह कान्त की बात नहीं समझ सका। उसने कहा, "दुनिया मुझ से है। मैं मर गया तो मुझे दुनिया से क्या? मुझे पहले अपना सुख चाहिए। अपने जीने के लिए साधन चाहिएँ।"

"हाय रे! अज्ञान कितना गहरा है! कान्त ने सोचा और वह चुपचाप काम में लग गया। उसके सामने बहुत से फाइल पड़े थे, और डाक का ढेर लगा हुआ था। उसने उन्हे छाँटा फिर सदा की भाँति टिप्पणी लिखने लगा। धीरे-धीरे वह तन्मय हो उठा, इतना कि उसे समय का ज्ञान भी भूल गया। उसे जब होश आया तो देखा—सामने वेतन-बाबू

खड़े हैं। कह रहे हैं, "कान्त! क्या घर नहीं चलोगे? सात बज चुके हैं।"

"सात!" कान्त ने चकित होकर दृष्टि उठाई। घडी मे सात बजे थे।

वह उठा! अँगड़ाई ली। अपने कागज सँभाले, और दफ्तरी को पुकारा, "रामसिंह! कमरा बन्द करो। मै जा रहा हूँ।"

एकाउण्टेण्ट ने कहा "मैं भी चलता हूँ, ठहरो।"

बडे बाबू बोले, "और मै भी चलता हूँ। काम क्या समाप्त हो सकता है?"

"वह समाप्त हो जाये तो फिर हमारी क्या आवश्यकता है?"

"कहते तो ठीक हो। व्यर्थ ही हमे इतना मोह है।"

एकाउण्टेण्ट ने कहा, "बिल्कुल व्यर्थ है। एक दिन चले जायँगे। कोई पूछेगा भी नहीं। कान्त ठीक कहा करता है कि हम अपने को यों ही इतना महत्व देते हैं।"

बडे बाबू दराज को ताला लगा रहे थे, बोले, "यह हमारी कमजोरी ही है, और कमजोरी कानखजूरे को तरह होती है। पैर गडा देती है, तो उतरती नहीं।"

यह ज्ञान सत्य था, पर सत्य को पी जाने की शक्ति उनमें नहीं थी। उनका सत्य थकान की भित्ति पर पनपता था, इसीलिए कच्ची दार्शनिकता की तरह सवेरा होते-होते ढह जाता था।

: ३ :

कमला लौट आयी है, यह जानकर उसके पड़ोसियों को अचरज नहीं हुआ। वे जानते हैं कि कमला साधारण नारी नहीं है। वह अध्यापिका है।

समाज में अध्यापिका के विशेष अधिकार होते हैं। कमला उससे भी आगे है। कुमार की कहानी को लेकर उसकी सास ने जिस भाषा का उपयोग किया था उसके कारण वह काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। जनमत जंगल की आग की तरह फैलता है, और उसका प्रभाव भूकम्प के धक्के की तरह होता है। इसलिए जहाँ भी दो स्त्रियाँ मिलती वहाँ अनायस ही कमला की कहानी शुरू हो जाती। पडोस की युवती-बहू ने अपनी ननद से कहा, "जीजी! अध्यापिकाजी लौट आई हैं।"

"कौन कमला?" राधा बोली।

"हाँ," बहू ने मुस्कराकर कहा, "पीली पड रही है।"

राधा ने अचरज से भाभी को देखा, देखती रह गई कुछ क्षण बाद जब वह पडोस में ताराचन्द बाबू के घर गयी तो वह बहुत गम्भीर थी। वह बोली, "भाभी! तुमने सुना कमलादेवी आ गई हैं।"

"कौन कमला, वह कलालनी क्या?" अधेड भाभी ने घृणा भरे स्वर में कहा।

"जी हाँ, अकेली है। पीली पड़ रही है।"

जैसे आकाश फटा हो। भाभी ने विस्फारित-नयन राधा को देखा, कहा, "हाय मेरे राम! बात यहाँ तक बढ़ गई है।"

राधा बोली, "मैं तो पहले ही जानती थी। यह रूप, यह यौवन और इतनी आजादी।"

"आग लगे इस रूप को," भाभी ने तुनककर कहा, "मैं तो उनसे कह दूँगी कि अपनी लड़कियों को स्कूल से उठा लो। हमें तो विवाह-शादी सभी कुछ करना है।"

उनकी देवरानी भी आ गई। बोली, "सच जीजी! विधवा भी कहीं इस प्रकार मर्दों से मिला करे है।"

"हाँ, भाभी! न जाने कौन-कौन आवे था। मास्टरजी, कुमार बाबू और वह गोरा गोरा दबंग छोकरा।"

"वह धर्मपाल, जो पहले मुसलमान था।"

"अजी पूछो मत, मुसलमान बड़े वो हो हैं।"

राधा हँस पड़ी, "सच भाभी। डर लगता है, मर जाऊँगी, पर मुसलमानों के मुहल्ले से होकर नहीं जाऊँगी।"

"और हिन्दू हो जाने से क्या स्वभाव बदल जाता है?"

बड़ी भाभी ने गम्भीरता से कहा, "पर एक बात है, कान्त मुझे भला लड़का लगता है। कई बार उनके पास आया है। धर्म में बुद्धि है।

छोटी भाभी बोली, "हाँजी। एक दिन मैंने भी उसका व्याख्यान सुना है। क्या बताऊँ जीजी। वाणी दिल को चीरती चली जाती थी। कोयटे के भूचाल के बाद की बात है। लोग रो पड़े। औरतें तो मैंने देखा—सुबक-सुबक कर रोने रही थीं।"

राधा प्रभावित होकर बोली, "जीजी। उसने अब तक विवाह क्यों नहीं किया।"

"कहता है कि पच्चीस वर्ष का होकर करूँगा।"

राधा मुस्करायी। उसको लेकर एक बार कान्त से चर्चा चली थी। छोटी भाभी ने पूछा, "अजी वह तो सोना है, पर यह कुमार कौन है?"

"ना जाने कौन है। कांग्रेसी है। भइया कह रहे थे, मुसलमानों का पक्षपाती है।"

"इस कॉंग्रेस ने देश का नाश कर दिया। देख लेना एक दिन वह सारे हिन्दुस्तान को मुसलमानों के हाथ बेच देगी।"

छोटी भाभी ने कहा, "सारे कॉंग्रेसी एक-से नहीं हैं।"

"अजी सब एक हैं। गांधीजी भी मुसलमानो का पक्ष लेते है।"

लाला गोवर्धनदास के घर पहुँचकर राधा ने और भी विश्वास से कहा, "धर्मपाल बड़ा बदमाश आदमी था।"

गोवर्धनदास की पत्नी की भी यही राय थी। बोली, "हाँ राधा!

कुमार कुछ भी हो, यहाँ बहुत कम आता था। आता भी था, तो ऊपर कभी नहीं चढ़ता था। अस्पताल में बेचारा घायल पड़ा था।"

"जीहाँ", उनकी देवरानी ने कहा, "अब तो वह चला भी गया।"

"शायद इसी लिए गया हो।"

"अजी ऐसा होता तो कमला भी जाती।"

"चाची", राधा बोली, "कमला बड़ी दबंग है। वह किसी से नहीं डरती।"

"बाप रे बाप, कैसा हिया है। औरत न होकर उसे तो मर्द होना चाहिए था।"

तभी आ गई कमला। उनके प्राण होंठो में ही रह गये। पर कमला हँस रही थी। हाथ जोड़कर बोली, "नमस्ते चाचाजी! नमस्ते बहिन! नमस्ते भाभी!"

भाभी बोली, "आओ कमला! कब आई?"

"रात, भाभी।"

"और ताई जी?"

"वे तो अभी रुक गई है। वर्षा के बाद आएँगी। मेरे स्कूल खुलने वाले है।"

"अच्छा, पर वे ठीक हैं?"

"जीहाँ।"

फिर एक क्षण रुककर बोली, "चाचीजी! एक काम करवा दोगी?"

तीनो ने एक दूसरे को देखा, चाची बोली, "क्या बहू?"

"पाँच रुपये के गेहूँ मँगवा दीजिये।"

चाची ने कहा, "मँगवा दूँगी।"

कमला के हाथ मे रुपये थे। उन्हे चाची को देकर उसने कहा, "कुछ काम मेरे लिए है क्या?"

चाची हँस पड़ीं, "हाँ बहू! छोटी भाभी के ब्लाउज पड़े हैं। वक्त

हो तो . ”

कमला ने शीघ्रता से कहा, “वे मुझे दे दो। मैं स्कूल खुलने से पहले उन्हें ठीक कर दूँगी।”

× × ×

संध्या को जब वह ये ब्लाउज सी रही थी तो ममता ने आकर उसे प्रणाम किया। वह विवाह के बाद पहली बार लौटी थी। यद्यपि वे लोग पूरब से बदलकर अभी आये थे तो भी इन्हीं कुछ दिनों मे ममता ने कमला से काफी स्नेह बढ़ा लिया था। उसके पिता उग्र विचारों के काँग्रेसी थे। वकील थे। साधारणत: वे समाजवादी माने जाते थे। उन्होने ममता को कालिज में पढ़ाया था, बोली, “भाभी! तुमसे मुझे ईर्षा होती है।”

“कैसे, ममता!”

“कैसे क्या, तुम जीना जानती हो। तुम्हे भय नहीं है। मुक्त पक्षी की भाँति जो ठीक समझती हो, करती हो। तुम्हारा साहस क्या कहीं देखने को मिलता है।”

“तुम इसे अच्छा समझती हो।”

“क्यों नहीं, भाभी। यह जीने की शर्त है।”

“तुम बड़ी अच्छी हो ममता।”

ममता हँस पडी, “अच्छी तो तुम हो। रात को लौटी हो, और सवेरे से घर-घर तुम्हारे नाम की माला जपी जा रही है।”

“वह तो मै जानती हूँ।”

“जानती हो। वे तुम्हारी निन्दा करती है।”

“वे कहती है कि मै चरित्र-हीन हूँ। बिना चरित्र-हीन हुए नारी साहसी नहीं हो सकती।”

“तुम इतना जानती हो, फिर भी...”

बात काटकर कमला बोली, “फिर भी मेरे आँसू नहीं आते। आते तो हैं। यह उनका स्वभाव है। पर ममता! आँसू मेरे हैं। उनको रोकने की

शक्ति मुझ में हैं।"

"तभी तो तुमसे ईर्षा होती है।"

कमला हँस पड़ी, "अच्छा ममता, मेरी बातें छोड़ो। इन्हें इतना महत्व क्यों देती हो? तुम अपनी सुनाओ।"

"क्या सुनाऊँ?"

"जीजा कैसे है?"

"अच्छे हैं।"

"यानी बुरे।"

"बुरे ही समझ लो।"

"मैं क्यों समझूँ। समझो तुम। मैंने तो यही सुना है कि किसी को अच्छा कहने का मतलब होता है कि वह बुरा है। जरा ठीक-ठीक बताओ। रूप कैसा है, रंग कैसा है? बातें कैसी करते हैं?"

ममता ने किंचित लजाकर कहा, "अभी वे दिन कहाँ आये हैं कि इतना बता सकूँ। अभी तो सब कुछ अच्छा ही अच्छा लगता है।"

"सच?"

"हाँ।"

"प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हे सदा-सदा अच्छा ही अच्छा लगे।"

स्वर में न जाने क्या था, ममता ने सिर उठाकर कमला को देखा। दोनो की आँखें तरल थीं। दोनों ने उस तरलता में अपना ही रूप देखा और देखकर दृष्टि झुका ली। कई क्षण तक वहाँ सन्नाटा छाया रहा, फिर कमला बोली, "अरे हाँ, एक बात तो बताओ।"

"क्या?"

"मिठाई रखी है?"

"जितनी कहो।"

"जितनी कहो, जैसे झोली भरकर लाई हो।"

ममता खिसिया गई, बोली, "अभी लाती हूँ।"

वह उठी कि कमला ने कौली भरकर कहा, "अरे ठहरो, मैं मजाक कर रही थी। तुम आयीं, वह क्या मिठाई से कम है ?"

पर ममता जो उठी थी, रुकी नही। बोली, "अब तो जाने दो. खाने का समय है.."

बात काटकर कमला ने कहा, "यहीं खा लो।"

ममता बोली, "इतना साहस हम लोगो मे होता तो क्या यह अभागा देश गुलाम ही रहता।"

कमला ने अनजाने मे चोट की, "ममता! इतना जानकर भी तुम बेहोश हो।"

"हाँ, भाभी।"

"तब कोई आशा नहीं।"

ममता मुडी, दृढ़ स्वर मे बोली, "अच्छा भाभी। संध्या को तुम्हारे साथ खाना खाऊँगी।"

और फिर बिना कुछ आगे कहे-सुने वह चली गई। कमला कुछ देर उसकी बात लेकर सोचती रही, फिर स्कूल का काम सँभालने मे लग गई। यद्यपि वह जानती थी कि स्कूल से उसका अधिक सम्बन्ध नही रहेगा, पर जो था उसे वह नीरस नहीं बनाना चाहती थी। उसने सबसे पहले नई लडकियों के लिये कैरीकुलम तैयार किया। कान्त की वे कहानियाँ निकालीं जिनको उसने कहकर लिखवाया था। उन्हे फिर पढ़ा और फिर हिन्दुस्तान के बडे मान-चित्र के पास जाकर उसका ऐतिहासिक अध्ययन करने लगी।

इस तरह करते-कराते दिन बीत गया। वह इतनी तन्मय थी कि धूप मुँडेरे से होती हुई अटारी के अन्तिम छोर पर जा पहुँची। देखते-देखते पुरवैया हवा बहने लगी। बादल उठे, और आसमान सुरमई घटाओं से भर गया। तभी किसी ने पुकारा "बहिन जी!"

आवाज चिर-परिचित थी, बोली, "क्या है भाई ?"

समाज का चपरासी आया था। उसने एक बन्द लिफाफा कमला को

दिया। कहा, "आपका पत्र है।"

पुस्तक पर हस्ताक्षर करके उसने पत्र ले लिया। चपरासी के चले जाने पर कमला ने उस पत्र को पढा, लिखा था—

"इधर आपके चरित्र के बारे में समिति के पास बहुत शिकायतें पहुँची हैं। समिति की राय मे वे बहुत भयंकर हैं और पाठशाला के हित की दृष्टि से घातक भी। समिति न्याय के अनुसार आपको अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने का पूरा-पूरा अवसर देना चाहती है। अतः आप लिखित रूप में अथवा उचित समझें तो समिति के सामने उपस्थित होकर अपने आचरण की शुद्धता प्रमाणित करें।

"हमे पूरी आशा है कि आप इन अपवादों को निराधार सिद्धकर सकेंगी।

मन्त्री

कन्या-पाठशाला उपसमिति"

पत्र पढ़ लिया तो वह बहुत देर तक चुपचाप शून्य मे विस्फारित नेत्रों से ताकती रही। यह कोई विस्मय का विस्फोट नहीं था। वह प्रतिक्षण किसी भी बात की आशा करती रहती थी, पर न जाने क्यो यह पत्र पाकर उसका विद्रोह उमड-घुमड नहीं सका बल्कि उस रात शान्त मन उसने पत्र का जवाब इस प्रकार लिखा:—

"पूज्यवर,

सीता की अग्नि-परीक्षा लेने वाला कोई राम मेरे पास नहीं है, तब मैं कैसे अपने चरित्र की शुद्धता प्रकट करूँ। आपको विश्वस्त करने का और कोई मार्ग मुझे नहीं सूझता। न्याय जिसके हाथ में है वही निर्णायक है। पाठशाला के हित मे आप जो उचित समझें, करें। प्रार्थना इतनी है कि मुझे दया का पात्र न समझें।

विनीता

कमला देवी"

लिखने के बाद उसने दोनों पत्र कई बार पढ़े। शायद पढ़ती ही रहती,

यदि उसे ममता के भोजन की बात याद न आ जाती। वह शीघ्रता से उठी। रसोई में जाकर उसने जल्दी-जल्दी आग जलाई, फिर साग बनाये, और जिस समय ममता ने उसे पुकारा तो वह आटा गूँथ रही थी। ममता देखकर बोली, "ओ हो, भाभी, आपने तो ठाट बना डाले।"

कमला ने कहा, "आज मेरे घर नव-विवाहिता ननद आई है। उसका स्वागत तो करना है।"

"भाभी, स्वागत तो हृदय में है।"

कमला हँस पड़ी, बोली, "मेरे हृदय का स्वागत आजकल मंगलमय नहीं है।"

"कैसे?" ममता चौंकी।

"ममता! हृदय का गुण कोमलता है, पर मेरे हृदय में भरी पड़ी है कठोरता। कठोरता वह जिसने मेरे अन्दर की नारी को भी समाप्त कर दिया है।"

"नारी भी क्या समाप्त होने वाली है, भाभी!"

कमला ने दृष्टि उठाकर ममता को देखा। फिर बोली, "कम-से-कम मेरे अन्दर नारी तो मर चुकी है।"

ममता ने धीरे से कहा, "भाभी, नारी कोमल हो अथवा कठोर, सबसे पहले वह नारी है। और नारी..."

कमला सहम उठी। सहसा बोली, "ममता! तुम्हारे ज्ञान से मुझे ईर्षा होती है।"

ममता मुस्कराथी, "और सुख भी।"

कमला बोली, "हाँ सुख भी।"

"यही तो नारी है।"

और फिर सहसा चूल्हे की ओर देखकर बोली, "नारी को उसका चूल्हा पुकार रहा है। घी जलने लगा है।"

कमला हँस पड़ी, "तुम भी तो नारी हो। तुम ही क्यों नहीं उसकी पुकार का जवाब देतीं?"

"मै अतिथि हूँ, भाभी।"

"पर घर तो तुम्हारा ही है।"

"था, अब नहीं है।"

"ओ," कमला मुस्करायी, "आत्म-समर्पण पूर्ण है।"

ममता सहसा पूछ बैठी, "भाभी तुम किस से प्रेम करती हो?"

कमला ने अनुभव किया जैसे किसी ने हृदय मे आग लगा दी हो। बोली, "विधवा के मुँह से इस प्रश्न का उत्तर तुम्हे ठीक लगेगा?"

"विधवा सबसे पहले नारी है।"

"जानती हूँ।"

"तो।"

"तो सुनो मै भी प्रेम करती हूँ।"

"किसे।"

"यह न पूछो। इतना रहस्य अभी गुप्त ही रहने दो।"

"पर एक बात बता दो—वह जानता है?"

"शायद।"

"तुमने उससे कहा?"

"नहीं।"

"उसने?"

"नहीं।"

"दोनो कायर हैं," ममता ने पूरी बेलते हुए कहा, "वह प्रेम नहीं है जिसमें द्वित्व है। प्रेम में मर्यादा कैसी। प्रेम स्वयं सबसे बड़ी मर्यादा है।"

कमला रहस्य-हीन होकर एक बार तो कढ़ाई के घी की भाँति छटपटा उठी। पर दूसरे ही क्षण उसे लगा कि अपना रहस्य लुटाकर वह भारमुक्त हो गई है। भार-मुक्ति में जो सुख है उसका वर्णन कौन करे।

: ४ :

कमला जानती थी कि कान्त नौ बजे से पहले दफ्तर चला जाता है, इसलिए वह सवेरे उठते ही उसके घर पहुँची। किवाड खुले पड़े थे, वह ऊपर जाकर उसके पास खडी हो गई। देखा, शान्त मन चुपचाप बैठा हुआ वह लिखने में तन्मय है। पर कमरे की दशा स्नेह-स्पर्श के अभाव की सूचना देती है। पुस्तके अस्त-व्यस्त हैं, कपडे इधर-उधर बिखरे पडे हैं, और आँगन मे कई दिन से बुहारी नहीं लगी है। कई क्षण तो वह कान्त की पीठ, उसके कन्धो और तीव्र-गति से चलते हुए हाथ को देखती रही, फिर सहसा अपने को धोखा देती हुई बोल उठी, "मास्टरजी!"

कान्त हठात् तेजी से काँपा। फिर दृष्टि कमला पर पडी तो मुस्करा उठा, "तुम कब आई?"

"परसो रात।"

"माँजी आई हैं?"

"जी नहीं।"

"क्यो?"

कमला मुस्कराई, "उन्हे क्या नौकरी करनी है?"

कान्त भी मुस्कराकर रह गया। कमला ने पूछा, "माँ क्या लखनऊ हैं?"

"हाँ।"

"कब तक आवेंगी?"

"पता नहीं।"

"क्यों?"

"उन्हें क्या नौकरी करनी है?"

दोनों खिल-खिला कर हँस पड़े। कमला ने फिर पूछा, "खाना कौन बनाता है?"

"कौन बनाएगा?"

"फिर लिखते भी हो ?"

"पेशा जो है।"

"पेशा ?"

"हाँ, जिस काम को किये बिना रहा न जाय वही पेशा है।"

"पेशा शब्द तो गन्दा है।"

"कान्त ने धीरे से कहा, शब्द गन्दे नहीं होते।"

कमला ने इस सत्य को मौन होकर स्वीकार किया। कई क्षण चुपचाप कान्त की कापी को देखती रही। फिर बोली, "मेरे पीछे क्या-क्या लिख डाला है ?"

"कुछ नहीं, कमला ! केवल दो कहानियाँ लिख पाया हूँ।"

"तो दिखाओ न।"

"अभी पढोगी ?"

"हाँ, जब तक तुम खाना बनाओगे मैं पढूँगी।" कहकर कमला मुस्कराई।

कान्त हँस पड़ा, "यो क्यों नहीं कहती कि लाओ आपका खाना बना दूँ।"

"मेरा बनाया खाना खा लोगे ?"

"जैसे कि खाया नहीं।"

"तो मैं जाती हूँ।"

कमला उठी, परन्तु सहसा कान्त का मुँह विवर्ण हो आया। वह जवाब दे तब तक कमला ने धीरे से कहा, "मैं जानती हूँ। जाओ, खाना बना लो। मैं तब तक पढूँगी।"

कान्त तिलमिला उठा। यह उसके सारे पुरुषत्व को चुनौती थी। जीवन भर की सारी साधना जैसे क्षण भर में खंडित हो गई। जी में उठा वह पुकारकर कहे, "मैं किसी की चिन्ता नहीं करता। मैं विद्रोही हूँ। कमला मेरे घर के चूल्हे पर भोजन पकाएगी और मैं खाऊँगा।" पर हुआ यही कि वह तीव्रता से बोला, "कमला !"

"जी मास्टरजी ।" कमला ने शान्त स्वर में जवाब दिया ।

कान्त पर घड़ों पानी पड़ गया। परास्त सिंह की भाँति उसने तड़पकर कहा, "कमला, तुम लौट जाओ।"

"लौट जाऊँ ?"

"हाँ।"

"अच्छी बात है जा रही हूँ । पर क्या कहानी ले जा सकती हूँ ?"

"जो चाहे ले जाओ पर..."

बात काटकर कमला बोली, "जा रही हूँ, पर यह पाठशाला समिति का पत्र है। इसे पहुँचा देना।"

कमला चली गई तो कान्त का मन स्वस्थ हुआ। उसे लगा—अब वह जी भरकर रोने के लिए स्वतन्त्र है। पर उसे रोने का अवसर नहीं मिला। उसने उसी क्षण सुना, नीचे कमला किसी से बात करने लगी है। वह उस स्वर को पहचानता है। उसकी चिरपरिचित चाची कमला से घर-गिरस्ती की बात पूछ रही है। कमला बार-बार हँस पड़ती है।

तब बहुत देर तक वह अपने मे खोया-खोया बैठा रहा। न जाने कब तक बैठा रहता पर चाची ने ऊपर आकर पूछा, "क्यों रे ! कमला क्यों आई थी ?"

"पाठशाला समिति का पत्र देने।"

"खुद नहीं जा सकती थी क्या ?"

"शायद वहाँ जाते उसे डर लगता है।"

चाची विद्रूप से हँसी, "डर ! ना बाबा बड़ी दबग औरत है।"

"कैसे चाची ?"

"अरे बेटा, इसकी तो बड़ी बदनामी हो रही है। वह कुमार था न जो तेरे पास आया करे था। कितना भला लगे था। अब पता चला है वह मुसलमानों का दोस्त था। इस कमला से..."

धीरे से पास आकर बोली, "मैंने सुना है बेटा ! उससे इसकी साठ-

गाँठ है। तभी तो अस्पताल में जाकर उसकी ऐसी सेवा की कि क्या अपनी माँ या बहू करेगी। तू तो उन दिनों यहाँ था नहीं, और तेरी माँ है भोली। सच कहूँ—सतयुग की लुगाई है। पर बेटा, सोचने की बात है कि औरत बिना मुहब्बत किसी की हुई है क्या?"

फिर जोर से कहा, "ना बेटा! तू इसके मुँह न लगना। सोने की सी आब है। दुनिया तुझे जाने है। ये औरत तो लम्बे बालों-वाली हैं। जरा सी देर में इज्जत खाक मे मिला दे हैं। भला इतनी रूपवान और जवान विधवा बस में रह सकती है। मैंने धूप मे बाल सफेद नहीं किये हैं। दुनिया देखी है। रहने को हिया चाहिए।"

और फिर पास आकर बोली, "ऐसी औरत को स्कूल में नहीं रखना चाहिए। लडकियों की बात है। कच्ची उमर में रंग बड़ी जल्दी चढे हैं।"

फिर जोर से कहा, "सबसे बडी बात तो यह है कि लड़कियों का पढ़ना किसने बताया है। जब से पढ़ाई शुरू हुई है तब से चरित्र तो रहा ही नहीं।"

कान्त का सब्र जवाब दे रहा था परन्तु वह बेबस था। चाची की बातें उसे सुननी थी और उसने सुनीं। उसके चुप होने पर कान्त ने इतना ही कहा, "उसने स्कूल की नौकरी छोड़ दी है।"

"मैं जानूँ हूँ। निकाल दिया होगा। ठीक बात है। वह अब टिकने वाली थी भी नही। मुझे तो लगता है कि वह यहां भी नहीं रहेगी।"

"ता।"

"किसी के साथ भाग जाएगी। कुमार तो चला ही गया।"

कान्त ने बात अनसुनी करके धीरे से कहा, "चाची, सुना है कि वह नर्स बनने जा रही है।"

"नर्स", चाची अचरज से बोली, "वे ही जो अस्पताल में मरीज की देख भाल करे है।"

"हाँ, वे ही।"

"तब ठीक है, वही बनेगी। नर्स और वेश्या में बहुत फरक नहीं हें। नर्स जरा सेवा भी करे है।"

कान्त का अन्तर मन क्रोध से तमतमा उठा। यदि वह उस समय चाची के गाल पर तमाचा मार देता तो अचरज की बात नहीं थी। परन्तु उसका सारा आक्रोश केवल पसीना बनकर रह गया। घड़ी मे देखा तो साढे आठ बज गये थे। काँपकर बोला, "चाची देर हो गई है। आज तो अभी खाना भी नहीं बना।"

"तो मै भेजूँ। तू तो खाही लेता है। हम तो व्यास हैं। व्यास ने वेद लिखे है, और तुम्हारा दयानन्द हमारी ही जाति का था।"

कान्त बोला, "चाची, मैं तो जात-पांत नहीं मानता।"

"मैं जानूँ हूँ। आजकल के छोकरे जात-पांत नहीं मानते, पर क्यों रे तू कमला के घर का भी खावे है?"

"हाँ, मै तो खाता हूँ।"

"ना बेटा। नीच जाति के घर का खाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।"

कान्त जवाब में हँसकर रह गया, और फिर नीचे जाने के लिए मुड़ा। चाची भी चली गयी। जब फिर लौटी तो पूरियाँ और मिठाई लिये थीं। कान्त ने मना किया तो बोली, "अरे कुछ खायेगा भी। ना जाने कैसा लड़का है। विवाह ही नहीं करता।"

सहसा वह बोल उठा, "अब कर रहा हूँ।"

"सच। कब कर रहा है?"

"इसी महीने।"

चाची खुश होकर बोली, "बड़ा अच्छा है बेटा। तेरी माँ बहुत दुखी थी।"

कान्त मुस्कराया, "दुख के दिन बीत गये, चाची! अब सब ठीक होगा।"

वह बातें कर रहा था और खाने का सामान टिफिनदान में भर रहा था।

भर चुका तो दफ्तर के लिए चल पड़ा।

× × ×

पाठशाला-समिति के सामने कमला का प्रश्न फिर उपस्थित हुआ। सदस्य उसका उत्तर पढ़कर चकित रह गये। मंत्री ने कान्त की ओर देखा। उसने दृढ़ता से जवाब दिया, "उसका उत्तर स्पष्ट है। वह दोष स्वीकार नहीं करती। आप अपनी संस्था के हिताहित को देख लें। मैं समझता हूँ आपकी संस्था की बदनामी नहीं होने देनी चाहिये, और ऐसी अवस्था में एक ही मार्ग शेष रह जाता है—आप उन्हे अलग कर दें।"

यह सुनकर वे लोग और भी विस्मित हुए। लालाजी तथा मास्टर साहब तो युद्ध के लिए तैयार होकर आये थे। वे विजयी होकर भी अपने को पराजित अनुभव करने लगे।

वाद-विवाद करने को अब कुछ शेष नही रह गया था। कुछ ही क्षण में सर्व-सम्मिति से यह निश्चय हुआ कि कमला देवी को स्कूल से अलग कर दिया जाए। इसके बाद मंत्रीजी ने कहा, "अब दूसरा प्रश्न कान्त के त्यागपत्र का है।"

सब बोले, "उसे नामंजूर कर दीजिए।"

कान्त ने हाथ उठाकर कहा, "मै आपका कृतज्ञ हूँ। पर मेरी कुछ मान्यताएँ ऐसी हैं जिनके रहते मैं स्वतंत्रता से काम नहीं कर सकता। अपनी शक्ति मै जानता हूँ। संस्था से अलग होने में मेरा और संस्था दोनों का कल्याण है। अतः मै चाहता हूँ कि मुझे मुक्त कर दिया जाए।"

वकील साहब बोले, "मै जानना चाहूँगा कि क्या मिस्टर कान्त को आर्यसमाज के नियमो मे विश्वास नही है।"

"मुझे शका है।"

"वे शकाएँ क्या हैं, बताइये। हम उन्हें दूर करेगे।"

कान्त मुस्कराया, धीरे से बोला, "उन शंकाओ के समाधान के लिए कई जीवन जीना होगा।"

"आपका आशय।" चकित स्वर में वकील साहब ने पूछा।

"जी केवल इतना कि मेरा त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया जाए।"

मंत्रीजी ने प्रश्न उठाया, 'संचालन-समिति से अथवा आर्यसमाज की सदस्यता से ?"

"जी, आर्यसमाज की सदस्यता से।"

"यह नहीं हो सकता।" कई सदस्य एक साथ बोले।

लालाजी ने कहा, "जान पड़ता है कि आप कमलादेवी के अलग किये जाने के कारण रुष्ट हैं।"

मास्टरजी बोले, "जीहाँ, यही बात है।"

कांत ने किंचित रुखाई से जवाब दिया, "यही बात हो तो क्या है ?"

लालाजी बोले, "है क्यों नहीं। आपके आचार पर धब्बा लग सकता है।"

कान्त ने तीव्र स्वर में कहा, "मेरा आचार कैसा है, इसके लिए आपके प्रमाण-पत्र की मुझे आवश्यकता नहीं है।"

लालाजी तिलमिलाकर रह गये लेकिन मंत्रीजी शीघ्रता से बोले, "नहीं, नहीं कान्त, लालाजी का यह आशय नहीं है।"

कान्त ने बिना सुने कहा, "मैं आज से समाज में नहीं आऊँगा। आप मेरा त्याग-पत्र मंजूर करें या न करें।"

× × ×

कमला जब अंतिम विदा लेने स्कूल गई तो मुख्याध्यापिका उससे बहुत देर तक एकांत में बातें करती रही। बोली, "कमला, तुम्हारा उत्तर सुन्दर था।"

"आपने पढ़ा है ?"

"हाँ, पर उसे समझने वाला कोई नहीं निकला।"

कमला हँसकर रह गई। वे कहती रहीं, "निशिकान्त ने भी तुम्हारे विरोध में राय दी है।"

कमला ने दृष्टि उठाकर उन्हें देख भर लिया, बोली नहीं। मुख्याध्यापिका उसी तरह बोल रही थी, "पर एक बात बड़ी अद्भुत हुई, उसने समाज से त्याग-पत्र दे दिया।"

"सच?"

"हाँ।"

कमला एकाएक उद्विग्न हो उठी, कुछ बोल न सकी। मुख्याध्यापिका ने पूछा, "कान्त ने समाज क्यों छोड़ा, कुछ जानती हो?"

"जी! जी नहीं; मैं उनसे नहीं मिली।"

"बड़ा योग्य लड़का है। उसे समाज नहीं छोड़ सकता। तुम तो..." फिर एकाएक रुककर कहा, "तुम अब क्या करोगी?"

"अभी तो कुछ निश्चित नहीं है?"

"कुमार कहाँ हैं?"

"जी, मुझे तो ठीक पता नहीं। सुना है गाँव में हैं।"

"यहाँ नहीं लौटेंगे?"

"नहीं।"

"तभी यह बात इतनी बढ़ गई है।"

कमला ने हठात् उन्हे देखा। वह गम्भीर हो उठी थीं। धीरे से बोलीं, "एक बात बताओगी कमला?"

कमला काँपी, "जी!"

"तुम कुमार से प्रेम करती थीं?"

"मैं..?"

"हाँ, सच कहना।"

"नहीं।"—कमला ने सिर उठाकर दृढ़ता से कहा।

"नहीं", मुख्याध्यापिका सकपकाई, "तो फिर...।"

कमला ने स्थिर होकर कहा, "मैं जानती हूँ आप मुझ से स्नेह करती हैं। मैं भी आपको अपना ही समझती हूँ। तभी आप से एक बात पूछती

हूँ—"आकर्षण क्या प्रेम के कारण ही होता है ?"

मुख्याध्यापिका गर्व से मुस्करायी, बोली, "हाँ कमला, प्रेम के बिना आकर्षण नहीं हो सकता।"

"परन्तु दीदी," कमला बोली, "मुझे तो लगता है कि ये दो अलग-अलग भावनायें हैं।"

"अर्थात् ..."

"आकर्षण अस्थायी है और प्रेम स्थायी। आकर्षण नष्ट हो सकता है, परन्तु प्रेम का नाता अटूट है।"

"तो...;" मुख्याध्यापिका ने धीरे से कहा, "तुम कहना चाहती हो कि तुम कुमार से प्रेम नहीं करतीं। तुम्हारे मन में कभी . "

कमला बात काटकर बोली, "मन में न जाने कब क्या-क्या उठा करता है, पर वह क्या सभी सत्य होता है ? भ्रम नहीं होता ?"

"पर कमला ! तुमने कुमार के लिए जो कुछ किया, वह क्या प्रत्येक नारी कर सकती है ?"

"दीदी ! अस्पताल में सुना है कि नर्सें आत्म-समर्पण तक कर देती हैं। वह क्या प्रेम के कारण होता है।"

दीदी ने जवाब दिया, "वह तो वे अपना कर्तव्य समझकर करती हैं।"

"तो मैंने भी कर्तव्य समझकर उनकी सेवा की थी। हमारे समाज में ऐसा नहीं होता यह मानकर उसे कोई प्रेम समझ ले तो मैं क्या करूँ ?"

"तुम क्या करो ? कमला ! तुम उनका भ्रम तो निवारण कर सकती थीं।"

कमला मुस्करायी, "दीदी, नारी के प्रति जो भ्रम समाज में एक बार पैदा हो जाता है वह क्या मिटाये मिटता है ? बन्दरिया अपने मृत बच्चे को जिस भ्रम में छाती से चिपकाये फिरती रहती है वह तभी टूटता है जब वह बच्चा गल-गल कर गिर पड़ता है।"

दीदी सहसा कुछ जवाब न दे सकी। कई क्षण शून्य में ताकती रही फिर बोली, "कमला, हम इतने बेबस हैं।"

कमला ने जवाब दिया, "नहीं दीदी! आदमी बेबस नहीं है। धरती क्या संकुचित है? मार्ग अनेक हैं। वह किसी पर भी चलने को स्वतन्त्र है। बात केवल साहस की है और फिर विद्रोह का अधिकार तो आदमी को है ही।"

दीदी बोली, "विद्रोह का अधिकार एक बात है, परन्तु उसके लिए साहस पाना दूसरी।"

कमला के मन में जवाब उमड़-घुमड़ उठा, पर न जाने क्यो वह चुप रह गई। दीदी पूछ रही थी, "पर कमला, तुम किसी से प्रेम करती हो क्या?"

कमला मुस्करायी, "प्रेम करना तो नारी का स्वभाव है। मैं आपसे भी प्रेम करती हूँ।"

दीदी भी मुस्करायी। बोली, "वह तो आकर्षण है।"

कमला चोट खाकर खुलकर हँसी, दीदी भी। उस मुक्त हास्य का शब्द किवाड़ों को लाँघकर दूर दूर तक फैल गया। ठीक इसी समय मन्त्री महोदय ने वहाँ प्रवेश किया। वे दोनो एकाएक सकपका गईं पर मन्त्रीजी उस ओर ध्यान दिये बिना कमला से बोले, "आपके वेतन का हिसाब ले आया हूँ।"

कमला समझ गई, बोली, "जी आपकी कृपा है।"

और फिर रजिस्टर पर हस्ताक्षर करके और रुपये लेकर वह जाने को उठी। मन्त्री ने कहा, "मुझे दुःख है...।"

लेकिन वह सुनने को रुकी नहीं, चली गई। और जैसा कि सदा होता था दीदी भी अपनी क्लास में जाने को उठी। बाहिर आकर उन्होंने देखा कि लड़कियाँ कमला को घेरे खड़ी हैं। वह मुस्करा रही है, परन्तु उसकी आँखों में आँसू भर आये हैं और उन्हें पूछने में असमर्थ वह बड़ी प्यारी लग रही है। दीदी कई क्षण विमोहित-सी उसे देखती रही, फिर सहसा पुकार उठी,

"लड़कियो, अपनी-अपनी कक्षा में चलो।"

और मुड़कर उन्होंने बुलावी से कहा, "लड़कियों को अन्दर ले आओ।"

बुलावी बोली, "बहिनजी तो चुपचाप चली जा रही हैं।"

"और क्या ढोल बजते ?" दीदी ने तीव्रता से उत्तर दिया।

बुलावी सहम गई और वह तेजी से कक्षा की ओर बढ़ी। उनका मन भरा आ रहा था और लगता था कि जैसे अब रोईं और लड़कियाँ चुपचाप रोने लगी थीं। और कमला, रोकर भी शान्त, दृढ, अपने घर जारही थी। उसे बिछोह का दुःख था, पर अपने जीवन का नहीं, अपने भविष्य का नहीं।

× × ×

ममता ने देखा कमला स्कूल से लौट आई है। वह समझ गई कि यह एक जीवन की समाप्ति है। उसकी अपनी भाभी ने राधा से कहा, "अब कमला को इस गली में नहीं रहना चाहिए।"

"हाँ भाभी," राधा तिनककर बोली, "सब के घरों में जवान बहू-बेटिय हैं। न जाने कल को क्या हो ?"

सुनकर ममता तिलमिला उठी। मन में उठा दोनों से लड़ पड़े, पर जो तथ्य था वह नंगी लाश के समान उसके सामने पड़ा था। वास्तविकता को आधार मानकर ही जग ने सदा अपना मत दिया है। लेकिन इस वास्तविकता के पीछे सत्य क्या है, यह कौन जानता है ? नारी क्या इसी वास्तविकता और सत्य के बीच में नहीं तड़पती रहती ? क्या इसी वास्तविकता के नीचे उसके प्राण नहीं निकल जाते ? नकली सोने की भाँति वह सत्य को परे हटाकर निर्णय का साधन बन गई है पर यह भ्रम तो इतना गहरा है कि सत्य के निरावरण होने की कोई आशा नहीं। दोषी को मृत्यु दंड सुना दिया गया है। उसे उसका वरण करना ही होगा

"करना ही होगा," ममता फुसफुसायी और उसका रोम रोम क्रोध से

तिलमिला उठा, यह कैसी जड़ता है ? क्यों नहीं विद्रोह फूट पड़ता ? क्यों नहीं सत्य, जो स्वयं परमेश्वर कहा जाता है, प्रगट होकर ससार को चकित कर देता ?

पर हाय रे भाग्य ! सत्य कभी प्रकट नहीं होता। वह तो युग युग की साधना के बाद कहीं अपनी झलक दिखाता है और जब तक जगत उसे देखे उस पर वास्तविकता का आवरण पड़ जाता है। वैज्ञानिक की पुस्तक के बाहर उसका कोई मूल्य नहीं रहता। दुनियाँ उसी वास्तविकता को सत्य समझकर ग्रहण कर लेती है। कोई बुद्ध ही उसको फिर से निरावरण करता है।

यही सोचती-सोचती वह उठी और कमला के घर पहुँची, देखा—वह चुपचाप बैठी हुई लिख रही है।

आहट पाकर कमला मुड़ी और मुस्कराकर बोली, "आओ ममता !"

"आयी भाभी। क्या लिख रही हो ?"

"कहानी।"

"तुम ?"

"क्यों, क्या मैं कहानी नहीं लिख सकती ?"

"भाभी ! तुम तो स्वयं एक कहानी हो।"

"वही तो लिख रही हूँ। आजकल ऐसी कहानियाँ बहुत लिखी जाती हैं।"

ममता हँस पडी, बोली, "जिनके पास कल्पना नहीं है वे ही ऐसी कहानियाँ लिखा करते हैं।"

कमला प्रतिहत नहीं हुई, बोली, "कल्पना क्या अनुभूति से अधिक सत्य है ?"

"हाँ भाभी।"

"कैसे ?"

ममता ने गम्भीरता से कहा, "भाभी, मुझे लगता है कि अनुभूति

केवल वास्तविकता का चित्रण करती है अर्थात् जो है, परन्तु कल्पना जो होना चाहिए उसकी झाँकी भी देती है।"

कमला बोली, "ममता! मुझे लगता है कि कल्पना में लेखक की अतृप्त कामना ही प्रच्छन्न रूप से रहती है।"

"ठीक है भाभी! वही अतृप्त कामना तो जीवन को गति देती है, परन्तु भाभी, डरो नहीं अनुभूति कल्पना की विरोधिनी नहीं है। वह तो उसके उफान पर से फेन उतारकर उसे ठोस योजना का रूप देती है।"

कमला को फिर भी एक उत्तर सूझ आया। बोलीं, "आज तो तुमने वही बात की है जैसे यौवन में उत्साह है और बुढ़ापे में ज्ञान, परन्तु जब तक मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है वह उत्साह खो देता है। कल्पना की रंगीनियों में आदमी अनुभूति की चिन्ता कहाँ करता है और जब वह अनुभूति प्राप्त करता है तो आकाश-पथचारी कल्पना पीछे छूट जाती है।"

"तो भाभी," ममता बोली, "मैं तो कल्पना की रंगीनियों में बहना पसन्द करूँगी। जीवन के रस को पीकर ही उसका स्वाद बताया जा सकता है। सरिता सागर में मिलने से पहले मुक्त होकर बहती है।"

कमला हँस पड़ी, "तुम युवती हो ममता, नवयुवती!"

"और तुम मेरी सुन्दर भाभी! तुम असमय में ही वृद्धा बन जाना चाहती हो। जानती हो जबरदस्ती को ही व्यभिचार कहते हैं..."

सहसा कमला का मुख विवर्ण हो आया। नेत्रों में वेदना चमक उठी। ममता ने उसे देखा तो सहम गई। शीघ्रता से बोली, "भाभी!"

"हाँ।"

"क्या हुआ?"

"कुछ नहीं।"

ममता ने पास आकर कमला के गले में अपनी बाहें डाल दीं। फिर उसका मुख चूम लिया और क्षमा के स्वर में बोली, "मुझे क्षमा कर दो। मैं भूल गयी थी।"

कमला मानों भयंकर स्वप्न से जागी। अपने को सँभालने में कई क्षण लग गये। फिर भी वेदना नेत्रों में भरी रही। बोली, "ममता !"

"भाभी !"

"मेरे लिए कोई मार्ग नहीं ?"

"है।"

"क्या ?"

"तुम विवाह कर लो।"

"विवाह के अतिरिक्त कुछ नहीं ? विवाह के बिना नारी का कोई कल्याण नहीं ?"

"है क्यों नहीं ! पर उसके लिए जिस साहस की आवश्यकता है वह आज की नारी मे नहीं है।"

"यह कहकर क्या उसे असत्य और अमान्य ठहराया जा सकेगा ?"

"नहीं भाभी।"

"तो मैं वही साहस चाहती हूँ। सच, मैं डरती नहीं, क्या होगा, कुचल दी जाऊँगी। पर नारी की अदम्य शक्ति को मार्ग तो मिल जाएगा।"

बात काटकर ममता बोली, "किसी के लिए कुछ कर सकने की भावना छलना है। अपने स्वार्थ को छिपाने के लिए मनुष्य यह ढोंग रचा करता है।"

कमला पर घन की चोट पड़ी, पर चोट खाकर उसका दर्प और भी उभर आया। बोली, "यूँ ही सही। मैं अपने स्वार्थ के लिए ही उस मार्ग को स्वीकार करूँगी। पर एक बात पूछती हूँ, तुम्हारा इतना ज्ञान है। यह तो बताओ 'मैं' क्या 'हम' से बाहर है। मैं सबसे पहले एक नारी हूँ और जो एक नारी के लिए ठीक है वह दूसरी के लिए ठीक न होगा यह क्या तुम कहोगी ?"

ममता ने उसी गम्भीरता से कहा, "मैं तो कुछ नहीं कहती, मुझे तो ये बातें बड़ी प्यारी लगती थीं।"

"लगती थीं !" कमला उसी जोश से बोली, "अब नहीं लगती ?"

"हाँ भाभी, अब नहीं लगतीं।"

"विवाह जो हो गया है।"

"शायद।"

"और इसी वास्ते मेरे लिए भी वही बन्धन सुझा रही हो।"

कहकर कमला विद्रूप से हँसी, विजय से खिलखिला पडी। ममता अब भी शान्त थी। उसने कहा, "भाभी, मुझे प्रसन्नता है कि तुम इतनी निर्भीक हो, पर जो अब तक नहीं है वह आगे भी नहीं होगा, यह कौन कह सकता है। सत्य सत्य ही नहीं, सापेक्ष भी है।"

कमला के मुख पर कई भाव उठे और छाया फेंकते हुए चले गए जैसे साहसी बादल सूर्य के आगे से निकल जाता है पर वास्तव में वह सूर्य से बहुत दूर होता है। उसने मुस्कराकर कहा, "कैसी अनोखी बात है, अभी-अभी मैंने भी यही कहा था।"

ममता हँस पड़ी, "यह तर्क है।"

"जानती हूँ। तर्क में जीवन नहीं होता, यद्यपि शक्ति होती है।"

"तूफान की शक्ति।"

"ममता, तूफान को सदा विनाश का प्रतीक माना जाता है, पर क्या वह निर्माण नहीं करता ?"

ममता ने धीरे से कहा, "जिसमे शक्ति है वह विनाश करके भी निर्माण करता है। मृत्यु से बढ़कर निर्माता कौन है ?"

कमला प्रसन्नता से भर उठी, "हाँ ममता ! आज अध्यापिका कमला की मृत्यु हो चुकी है और एक नयी कमला ने जन्म लिया है।"

ममता शीघ्रता से बोली, "अब तुम क्या करोगी ?"

कमला हँस पड़ी, "इतनी देर बुद्धि का प्रयोग करने के बाद भी हम वहीं पहुँच पाए है जहाँ से चले थे। विधाता की इस सृष्टि में सब कुछ गोल है। धरती गोल, सूर्य गोल, नक्षत्र गोल, जीवन गोल और बुद्धि भी गोल।"

ममता ने हँसी में खुलकर योग दिया, "और तवा भी गोल, रोटी भी गोल !"

हँसते-हँसते कमला बोली, "गोलाई में इतनी ममता क्यों है ?"

"क्योंकि विधाता स्वयं गोल है।"

"इसीलिए तो ढूँढे नहीं मिलता।"

"और इसीलिए सत्य सापेक्ष है।"

वे फिर खुलकर हँसीं। कमला बोली, "मैं आज एक कहानी लिखूँगी 'गोलाई'।"

ममता की आँखों में आँसू भर आए। उन्हें पोंछकर उसने कहा, "ओ बाबा ! कैसी है यह सृष्टि की गोलाई और इस गोलाई में बात भी गोल हो गई।"

"होने भी दो। उसकी ऐसी क्या चिन्ता है ? जो होगा देखा जायेगा। मंजिल का अंत थोड़े ही है। वही एक ऊटपटाँग चक्कर है।"

इस हँसी से उनके मन एक गहरे भुलावे में पड़ गये। मानों जो विकट प्रश्न था उसका सामना करने से वे दोनों भय खाती थीं या उससे बचने का कोई रास्ता न पाकर उसकी चिन्ता ही इन्होंने छोड़ दी थी। देखने पर कमला संतुष्ट मालूम होती थी। निराशा की चरम सीमा का नाम सन्तोष है, तो निस्संदेह वह संतुष्ट थी। ममता को यही शंका थी। वह जानती थी कि कमला में कालेज की लडकी का विशुद्ध साहस नही है। उसके चारों ओर संस्कारों की सामाजिक रूढ़ियों का भयंकर जाल बिछा हुआ है परन्तु कालेज की लडकी की तरह उसके मन में किसी को पाने की, किसी को अपना बनाकर उस पर शासन करने की भावना उसी प्रकार है। नारी का उससे छुटकारा नहीं है। नारी जब इस सत्य को अपनी शक्ति समझती है तब उसकी जय होती है। परन्तु जब उस मन में यह सत्य दुर्बलता का प्रतीक बन जाता है तब पुरुष उस पर हावी हो जाता है, हुआ है। तभी तो युग-युगान्तर से प्रयत्न करने पर भी वह सतीत्व और मातृत्व के माया-जाल से मुक्त नहीं हो पाई है। कहते हैं सृष्टि के आदि में कभी

पुरुष भी इसी पति-धर्म और पिता-धर्म के जाल में फँस चुका है। शायद उसी का बदला लेने के लिए उसने नारी को आदर्श और प्रेम के नाम पर पद-दलित किया हुआ है और यह शोषण तब तक चलता रहेगा जब तक विवाह है।

ममता काँप उठी। अनजाने ही विचारों की यह सरिता किधर बह गई, "विवाह बंधन है। विवाह से नारी की मुक्ति नहीं है।"

लेकिन यहीं आकर क्रम टूट गया। नीचे किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा, वह चौंक उठी। वह उसके भइया का स्वर था। उस स्वर में क्रोध था, उसने पुकारा, "ममता! तुम्हें माँ बुलाती है।"

उसने झाँककर कहा, "अभी आती हूँ, भइया!"

"अभी चलो।"

ममता को यह आदेश बुरा लगा। मन में उठा कि कहदे कि आप जाइये। मैं आ जाऊँगी पर वह बोल उठो, "आती हूँ।"

जाते समय उसने कमला को देख भर लिया। वह उसी तरह शान्त मन अपने काम मे लगी थी। मुस्करायी, बोली, "फिर आओगी?"

"क्यों?"

"पूछती थी।"

"आखिर।"

कमला हँस पड़ी, "अब तो मैं और मेरा घर वर्जित प्रदेश मान लिया गया है न?"

ममता विद्रूप से हँसो, "मैंने ऐसी मान्यताओं को भंग करना सीखा है।"

और वह चली गई। कमला के मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया। मान्यताओं का भंग समस्या का अन्त नहीं है। साहसी वही है जो नई मान्यताएँ स्थापित करता है और तभी पीछे से आकर कुछ शब्द उसके कान में पड़े। वे ममता के भाई के शब्द थे। वह कह रहे थे, "अब तुम यहाँ नहीं

आ सकतीं ?"

"क्यो ?"

"तुम जानती हो।"

"मै जानती हूँ तभी तो आई थी।"

"पर अब नहीं आ सकोगी।"

"अब क्या हो गया है।"

स्वर में तलखी बढ़ रही थी। भइया ने कहा, "ममता! तुम्हें हमारी मर्यादा का ध्यान रखना होगा।"

आगे ममता ने क्या जवाब दिया कमला नहीं सुन सकी।

: ५ :

वर्षा समाप्त हो चुकी थी और थके-क्लान्त बादल आकाश में बिखरे पड़े थे, परन्तु वसुन्धरा सद्य स्नाता नव-वधू की भाँति क्लान्ति-रहित, एक अनिर्वचनीय उत्साह और आनन्द से पूर्ण मुखरित हो उठी थी। तृप्ति ने उसे फिर से यौवन का वचन दिया था और उस वचन ने चेतन-अचेतन सभी पर अपना प्रभाव डाला था। इसलिए चारों ओर अधखुले नयनों की-सी मधुरिमा बिखर रही थी लेकिन कान्त सब ओर से आँखें मूँदे अपनी मेज पर झुका हुआ डाक पर टिप्पणियाँ लिख रहा था। तभी गोरे मुँह वाले टाइपिस्ट ने तेजी से आकर कहा, "लो भई कान्त, एक और मुसीबत!"

"क्या ?"

"हिसाब नहीं मिला।"

"तुम्हारा हिसाब! कैसा ?"

"अरे भई, तुम नहीं समझे। दफ़्तर का सालाना हिसाब नहीं मिला। केवल

पाँच रुपये तीन आना नौ पाई का अन्तर है। इसलिए हुक्म मिला है कि आज सब लोग यहीं ठहरेंगे।"

"क्या ?"

"जी, वह देखो बड़े बाबू आ रहे हैं।"

सचमुच बड़े बाबू ने आकर बड़ी गम्भीरता से कहा, "देखो भई ! हिसाब नहीं मिला है और परसों से जाँच शुरू है। आप सब लोग एकाउण्टेण्ठ की सहायता कीजिये।"

कान्त बोला, "आपका मतलब है कि आज की रात हम यहीं बैठें।"

"और हो ही क्या सकता है ? मैं भी बैठा हूँ। सरकारी नौकरी है।"

टाइपिस्ट ने कहा, "वे लोग साल भर मौज करते हैं। अब हमें .."

बात काटकर बड़े बाबू बोले, "यह बाद की बात है। अब तो काम करना है।"

टाइपिस्ट चुप नहीं हुआ, "बाद की बात कैसे ? वे लोग हमेशा यही सोचते है कि वक्त पर काम हो ही जायेगा। अभी से क्यो मरे ?"

बड़े बाबू क्रुद्ध हुए, "तो आप नहीं आयेंगे।"

"जी नहीं।"

"तो लिखकर दे दीजिये।"

"नहीं दूँगा। मैं काम कर चुका। अब घर जाऊँगा।"

बड़े बाबू के नथुने फड़कने लगे। चिल्लाकर कहा, "जनाब, आप क्या समझते हैं ? आप चौबीस घण्टे के नौकर हैं। वाह-वा सरकारी नौकरी है या हँसी-खेल। मै अभी आर्डर करता हूँ।"

और वह तेजी से चले गये। टाइपिस्ट की आँखें लाल थीं। नाटा बाबू, मन ही मन मुस्करा रहा था और कान्त उस आज्ञा को बुरा तो समझता था परन्तु उस स्थिति में दूसरा मार्ग भी उसे नहीं सूझता था। इसलिए वह चुप रहा। हाँ, टाइपिस्ट कहता रहा, "भला कोई बात है। जिसका काम है वह क्यों नहीं करता। वे हमेशा ऐसा करते हैं। आगे नहीं करेंगे इसी बात की क्या

गारंटी है। वे लोग बेईमान, मक्कार और धोखेबाज हैं।"

क्रोध से उसकी वाणी थरथराने लगी। नाटे बाबू ने उसकी सहानुभूति पाने के लिए कहा, "तुम ठीक कहते हो मुश्ताक, वे लोग सदा ऐसा करते हैं।"

कान्त बोला, "हम सब ही ऐसे हैं। अपने स्वार्थ के लिए दूसरे को कष्ट पहुँचाना हमने सीखा है।"

टाइपिस्ट का आवेग शान्त नहीं हुआ था। वह नहीं समझा, बोला, "पर अब नहीं होगा। मै देखूँगा वे कैसे ऐसा करते हैं।"

कान्त सहसा हँस पड़ा, "जो अब तक नहीं हुआ उसे कोई क्या करेगा? आग से आप आशा करना चाहते हैं कि वह बिना किसी के जलाये पैदा हो जाय।"

नाटे बाबू ने अब कान्त का पक्ष लिया, "तुम ठीक कहते हो, कान्त! ठीक कहते हो।"

टाइपिस्ट प्रतिहत हुआ, "क्या, क्या?"

और तभी गनेशी भागा हुआ आया, "बाबूजी, आर्डर पर साइन कर दीजिये। काले पानी का हुक्म सुनाया गया है। जब तक हिसाब नहीं मिलता सबको दफ्तर में ठहरना है।"

तीनो ने एक दूसरे को देखा। आँखें उठीं। तब तक वे छ हो चुके थे। कुछ मुस्करा रहे थे, कुछ घुट रहे थे, और कुछ क्रोध से उफने पड़े थे।

जीवन धुएँ के समान है। धुएँ कई प्रकार के होते हैं। अगर का धुआँ मंथर गति से झूमता हुआ संसार को एक सुगन्ध से भरता रहता है। सिगरेट का धुआँ एक क्षणिक चमक, एक हलका उफान, अभिमान से उमड़ते बादल और फिर अन्तर और बाहर मे गहरी दुर्गन्ध। आतिशबाजी का धुआँ गहरी चमक, तेज सरसराहट, भय, तमाशा और गहरी दुर्गन्ध।

मुश्ताक तीव्रता से बोला, "मैं दस्तखत नहीं करूँगा।"

पीछे से कान्त का सहकारी बोल उठा, "इंकिलाब जिन्दाबाद!"

सबने धीरे-धीरे दस्तखत कर दिये। गनेशी ने किताब मुश्ताक के आगे बढ़ा दी और तभी बडे बाबू ने आकर सूचना दी—नाश्ते के लिए जलेबियाँ और कचौरियाँ मँगाई गई हैं। कहकर वह हँस पड़े। टाइपिस्ट की ओर देख कर कहा, "अरे भाई, हम सब क्लर्क हैं, गुलाम। मिल-जुल कर रहने से ही इस जीवन को पार लगा सकते हैं।"

टाइपिस्ट ने चुपचाप दस्तखत बना दिये। बाबू लोग मुस्करा उठे। कान्त ने सोचा कि यह कैसी दृष्टि है जो देखती है कि आग बढ़ी चली आ रही है परन्तु उसे बुझाने की कोई चेष्टा नहीं करती। सब नपुंसक हैं। दास नपुंसक ही होते हैं।

बड़े बाबू ने गनेशी से कहा, "जाओ, रोशनी का प्रबन्ध करो।"

"और जलेबियों का नहीं।"

"हाँ, हाँ, वह भी।"

गनेशी तब सदा की तरह लकड़ी उठाकर कमरे से बाहर निकला। बादल फिर छाने लगे। अँधेरा गहरा हुआ और डरावना भी। कान्त दाहिनी ओर के दरवाजे से दूर-दूर तक फैले जंगल को जहाँ तक देख सकता था, देख रहा था। पीलू के नाटे और मोटे वृक्षों की लम्बी कतार, पास में मानो उनकी रखवाली करते हुए लम्बे और घने कीकर तथा शीशम के पेड़ अन्धकार के बादलों में छिपते जा रहे थे। बीच-बीच में 'हुआ' 'हुआ' का भद्दा स्वर उठता था और उठता रहता था। फिर शान्ति छा जाती थी। अन्दर बड़े हॉल में लैम्पों के प्रकाश में बैठे हुए कई स्वामी-भक्त सेवक अभिमन्यु की भाँति कर्त्तव्य के चक्रव्यूह में फँस तो गये थे पर निकलने का रास्ता नहीं जानते थे।

वे कई टोलियों में बट गये थे और मेज से छाती जुड़ाकर मीज़ान लगा रहे थे। कुछ अस्फुट स्वर में गुनगुना रहे थे, कुछ पूर्ण शान्त थे। लेकिन बीच-बीच में अँगड़ाई लेकर कोई न कोई बोल उठता था। बदनसिंह जो कान्त के साथ मिलान कर रहा था सहसा बोल उठा, "कान्त! चेम्ब-

"मुझे क्षमा करो।"

फिर कई क्षण वे चुपचाप चिन्ह लगाते रहे। तब बदनसिंह बोला, "मेरी लड़की कहती थी कि जब अध्यापिका जी गईं तो सब रो रहे थे।"

बदनसिंह आगे बोला, "कान्त, एक बात बताओ।"

"बदनसिंह, हम क्लर्क हैं।"

बदनसिंह बोलने लगा, "तीन सौ पच्चीस तीन आने, आठ सौ बारह छः आने, एक रुपया तीन पाई...।"

तभी सुना नाटे बाबू ने अपने साथी से कहा, "देखो, कान्त बातें करता है।"

साथी ने उत्तर दिया, "बड़े बाबू का लाड़ला है।"

चिन्ह लगाकर नाटे बाबू ने गम्भीरता से कहा, "जी नहीं। वह बड़े साहब का प्रिय है। जानते हो इस बार उसकी सदाचार-पत्रिका मे क्या लिखा गया है।"

"क्या लिखा है?"

"लिखा है इस वर्ष इसने सर्वोत्तम कार्य किया है।"

"सच...?"

"मैने स्वयं पढ़ा है।"

"और हमारे लिए क्या लिखा है?"

"केवल संतोषजनक।"

साथी का मुख एकाएक सफेद हो गया, फुसफुसाकर कहा, "केवल संतोष-जनक।"

कई क्षण वह भग्न हृदय को थामे बैठा रहा, फिर साँस लेकर कहा, "संसार में सत्य कहीं नहीं है, कहीं नहीं।"

नाटे बाबू न जाने क्या सोचकर बोल उठे, "पर कुछ भी हो कान्त है वैसे भला लड़का, मन में छल नहीं है।"

साथी के जलते हृदय पर मानो घी पड़ा। अग्नि प्रज्वलित हो उठी।

तभी बडे बाबू ने चिल्लाकर कहा, "रहमान, ! तुम चुप क्यों बैठे हो ?"

रहमान पहले ही घुट रहा था, तलखो से बोला, "जी नही।"

"जी नहीं कैसे ? मैं सब देख रहा हूँ। तुम लोगो को इसलिए नहीं रोका था।

घुटन और भी बढ गई। क्रुद्ध रहमान ने रजिस्टर पटक दिये। कहा, "लीजिये मैं अब काम नहीं करूंगा। यह वक्त काम करने का नही है। आप जो चाहे कर सकते हैं।"

"रहमान ! चुप हो जाओ," बडे बाबू आदेश से चिल्लाये।

रहमान उसी तीव्रता से बोला, "मै चुप हो जाऊँ। क्या मै ?"

तभी कान्त ने आकर रहमान के कन्धे पर हाथ रख दिया धीरे से कहा, "शान्त हो जाओ भाई।"

रहमान की दृष्टि उठी और झुक गई। वह बैठ गया। बडे बाबू उसी तरह पुकार रहे थे, "वाह-वा ! सरकारी नौकरी है, कोई हँसी-ठट्ठा नहीं है। मुझ पर क्या एहसान करते हो ? चले जाओ, मै तो साहब से कह दूँगा।"

कान्त ने उनसे भी प्रार्थना की, "बाबूजी ! आप भी शान्त हो जाये। ऐसे वक्त जब आँख में नींद भरी आती हो तो दो क्षण आराम करना पाप नहीं है।"

बडे बाबू एकदम ढीले पड गये, "मै कब मना करता हूँ। मुझे तो स्वय दुःख होता है। घर पर लड़का बीमार पड़ा है और मै यहाँ बैठा हूँ। आप लोग भी गृहस्थी हैं। मै तो आपके लिए बराबर साहब से लड़ता रहता हूँ। कल को तो स्पष्ट कह दूँगा, कि जनाब मुझसे इस तरह काम नहीं होता।"

"जी हाँ", नाटे बाबू ने कहा, "आदमी बढ़ने चाहिएँ।"

कान्त बोला, "निस्संदेह !"

एकाउण्टेण्ट ने जो अब तक चुप बैठा था कहा, "जब तक आप इस प्रकार

काम करते रहेंगे आदमी नहीं बढ़ेंगे ।"

सुनकर बड़े बाबू हँस पड़े। वे अपने स्थान से उठे और जैसा कि उनका स्वभाव था रहमान के पास पहुँचे। विनम्र स्वर में पूछा, "कितना देख डाला।

"एक लैजर बचा है।"

"लाओ, मैं देखता हूँ तुम थोड़ा आराम कर लो। और, हाँ तुम्हारे भाई का क्या हुआ ?"

' अभी तो कुछ नहीं।"

"साहब की चिट्ठी से कुछ बन सकता है ?"

"जी, क्यों नहीं।" रहमान पिघल उठा।

"तो कल याद दिलाना।"

और वे आगे बढ़ गये। घड़ी ने तब दो बजा दिये थे। सन्नाटा गहरा हो रहा था। और बाहर रिम-झिम रिम-झिम वर्षा का स्वर उठने लगा था। सहसा कान्त ने उठकर सामने की खिड़की खोल दी। शीतल वायु ने अन्दर प्रवेश किया। लेजरों के पन्ने फड़कने लगे। बाबुओं के मुरझाये मन खिल उठे। और वे फिर गिनती गिनने लगे। क्षण आये, क्षण गये। आँखें फिर झपकने लगीं। सबने अचरज से देखा, बड़े बाबू सचमुच सो रहे हैं। नेत्र मुँदे हैं और शरीर रह-रहकर आगे को आता है। कभी-कभी उनकी नाक से बड़ा डरावना शब्द उठता है। कभी शिशु के स्वर जैसा बारीक, कभी गहराता हुआ बादल का गर्जन।

सब लोगों ने एक दूसरे को देखा। मुस्कराये, फिर हँसने लगे। धीरे-धीरे वे उठे और खिड़की के पास आ खड़े हुए। वायु ने उन्हें सीधे स्पर्श किया पर उनकी आँखें अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकीं। वे फिर अपने-अपने स्थान पर आ बैठे। बड़े बाबू को निद्रा का स्वर वैसे ही गूँज रहा था। बदनसिंह ने अँगड़ाई लेकर कहा, "नींद मुझे भी आ रही है।"

"तो उसका स्वागत करो। देखो न, बड़े बाबू के बाद रहमान भी गये।"

आँखे उठीं। कान्त बोला, "रात सोने के लिए होती है।"

"पर बडे बाबू को कौन समझाये ?"

कान्त को स्वय नींद आ रही थी। उसने रजिस्टर सरका दिये और मेज पर पैर फैलाकर नेत्र मूँद लिये। चाहा कुछ सोचे पर हुआ यह कि वह भी सो गया। आँखे जब खुलीं तो चार बज चुके थे। उसके सब साथी गहरी निद्रा में निमग्न थे और बाहर उसी तरह रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था। वह काँपकर उठ बैठा और उसने बदनसिंह को पुकारा—"बदन सिंह, बदनसिंह, उठो···।"

पर बदनसिंह नहीं उठा। कान्त ने उसे हाथों से पकड़कर हिला दिया। उसने आँखें खोलीं, बोला, "तुम सवेरे सवेरे···।"

कान्त हँसा, "श्रीमान यह दफ्तर है। लैजर सँभालिये।"

"ओ हो!" बदनसिंह चोंका, "मैं तो समझा था···।"

"जी हाँ! उठिये चार बज गये हैं।"

उन्होंने अँगड़ाई ली और फिर मेज पर झुक गये। धीरे-धीरे दूसरे साथी भी जागे पर बड़े बाबू की नाक पूर्ववत् स्वर-घोष करती रही। वे तब तक नहीं जागे जब तक रहमान ने उन्हें नहीं पुकारा।"

"क्या हुआ ?" उन्होंने चौंककर पूछा।

"मिल गया।"

सब के सब उत्सुकता से बोल उठे, "सच ?"

"देखिये तीन आने दो बार जमा कर दिये गये हैं।"

"तीन आने सिर्फ! नौ पाई नहीं।"

"ओ बाबा! अभी तो नौ पाई बाकी हैं।"

बड़े बाबू अब पूरी तरह जाग चुके थे, बोले, "भई! एसे जीवन से मौत भली। क्या मुसीबत है? पाँच बजने वाले हैं और हम बैठे हैं

वाहवा, वाहवा ! लेकिन पाँच रुपये तीन आने तो मिल गये। कोशिश करो तो नौ पाई भी मिलेगी।"

बदनसिंह हँस पडा, "बाबू जी ! नौ पाई मुझसे ले लो।"

एक ठहाका उठा। बड़े बाबू ने कहा, "ऐसा होता तो चौधरी साहब ! मैं पाँच रुपये तीन आने नौ पाई भी दे सकता था और भाई ! सच पूछो तो मैं दे भी चुका।"

"कैसे जी ?"

"जलेबियाँ और कचौरियाँ नहीं खाई थीं क्या ?"

बदनसिंह बोला, "वह तो आप सरकार से ले लीजिये।"

उन्होंने विद्रूप से कहा, "सरकार दे चुकी। वह ईमानदारी से आपको एक पाई नही देगी वैसे आप एक हजार ले सकते हैं।"

तभी कान्त बोला, "देखो तो बदनसिंह पृष्ठ १६० पर नौ पाई हैं।"

देखकर बदनसिंह शीघ्रता से बोला, "नहीं तो।"

"तो बस काम समाप्त करो।"

यह बात उसने इस प्रकार कही कि साथियों के कान खड़े हो गये। वे बोले, "क्या, क्या !"

"तपस्या पूरी हो गई।"

"सच ?"

और वे सब काम छोड़कर कान्त के पास जमा हो गये। गलती मिल गई थी। उन्हें मानो स्वर्ग का राज मिला। बड़े बाबू ने कान्त की पीठ थपथपाई, बोले, "तो अन्तिम प्रहार तुम्हारा रहा। अच्छा ! अब तुम लोग जा सकते हो और देखो बारह बजे तक छुट्टी है।"

"धन्यवाद, ! धन्यवाद,!" वे सब बोले, "पर आप क्या नहीं चलेंगे ?"

"ना भाई, मैं तो अब बैठकर ड्राफ्ट लिखूँगा।

बाहर आकर रहमान ने कहा, "बड़े बाबू सरकार के बड़े दोस्त हैं।"

"पर हमारे तो दुश्मन है।" नाटे बाबू ने तीव्रता से कहा।

"निस्संदेह!" एकाउण्टेण्ट ने उसका समर्थन किया, "जो स्वामी का मित्र है वह सेवक का शत्रु है।"

बदनसिंह बोला, "क्या करें बेचारे ? उनका स्वभाव हो गया है। वैसे आदमी तो ।

"स्वभाव !" कान्त ने गम्भीरता से बात काटकर कहा, "यही तो संस्कारों की दासता है। संस्कारों की दासता से बढ़कर मनुष्य का कोई शत्रु नहीं है।"

: ६ :

कमला अपना नाम सुनकर कांप उठी, पर उस कम्पन में भय नहीं था, रोमाञ्च था। वह शीघ्रता से उठी, किवाड़ खोले और उतावली-सी सुरैया के गले से चिपट गई। सुरैया ने धीरे से उसे छाती में भर लिया, बोली, "कमला, तुम अच्छी हो।"

कमला नहीं बोली। सुरैया ने फिर पुकारा, "कमला !"

कमला फिर भी न बोली पर उसके दिल की धड़कन ने बताया कि वह रो रही थी। सुरैया ने उसे दोनों हाथों से पकड़कर अपने सामने खड़ा किया, बोली, "कमला ! तुम्हारी आँखों में आँसू हैं।"

तब तक कमला ने अपने को सँभाल लिया था। मुस्करायी, कहा, "ये आँसू प्रेम के हैं बहिन।"

"उँह" सुरैया मुस्करायी, "प्रेम मुस्कराता है, वियोग रोता है।"

"तो यूँ ही समझ लो। तुम्हारा वियोग···"

सुरैया ने बात काट दी, "अच्छा-अच्छा इस व्याख्या को रहने दो। तुम्हारा यह भाव ही कह रहा है कि बात कुछ और है, पर कहो तो तुम आई

क्यों नहीं ?''

कमला तब तक सुरैया का अध्ययन करने लगी थी देखा—सुन्दरी सुरैया का रूप और भी निखर आया है। मुस्कान की मधुरिमा गहरी हो रही है। अनजाने ही नयनों में कुलवधू की लज्जा झलक उठी है। वेशभूषा में विशेष अन्तर नहीं है। परन्तु फिर भी...

कमला मन्त्रमुग्ध-सी बोल उठी, ''सुरैया! तुम तो और-और-सी लगती हो।''

सुरैया विद्रूप से हँसी, ''क्या कहा?''

''तुम अब किसी की हो गई हो।''

''हटी, मैं किसकी होती! कोई मेरा हो गया है।''

और सुरैया खुलकर हँसी, कमला भी हँसी, पर उसकी हँसी में शूल थे। वह ऐसे हँस रही थी जैसे गुब्बारे की हवा निकलती है। रुककर सुरैया बोली, ''और तुम! तुम भी किसी को अपना क्यों नहीं बना लेतीं? तुम हिन्दू स्त्रियाँ आदर्श के पीछे तड़पती रहती हो। नहीं जानतीं कि अपने मन की रक्षा स्वयं एक बड़ा आदर्श है।''

कमला बात टालकर बोली, ''विवाह ठीक हो गया?''

''वह तो होना ही था पर तुम बताओ, तुम क्यों नहीं आईं?''

''वे कैसे है?''

''कमला, मैं पूछती हूँ कि तुम आईं क्यों नहीं? तुम मुझसे घृणा करती हो?''

कमला ने शीघ्रता से कहा, ''न-न सुरैया! तुम क्या कहने लगीं?''

''ठीक कहती हूँ। हिन्दू लोग मुसलमानों से सदा घृणा करते रहे हैं, तुम भी हिन्दू हो।''

''सुरैया!'' कमला सहसा चीख-सी पड़ी, ''मैं दुखी हूँ।''

जैसे धरती बोली, सुरैया पहली बार काँपी। कई क्षण कमरे में सन्नाटा छाया रहा। सुरैया ने एक दृष्टि कमरे में डाली, दूसरी कमला पर, फिर धीरे

से कहा, "तो तुमने कहा क्यों नहीं ?"

और फिर सुरैया ने सब कुछ जानकर पूछा, "तुम्हारे मास्टर जी यहीं पर हैं।"

"हाँ।"

"उन्होंने कुछ नहीं कहा।"

"उन्होंने मुझे निकाल देने के पक्ष में राय दी थी।"

"क्या !"

"और फिर स्वयं भी त्याग-पत्र दे दिया।"

"हूँ, तुम उनसे मिलीं।"

"इधर तो बहुत दिन हो गये। वह अकेले हैं।"

"और तुम अकेले घर में उनके पास नहीं जा सकतीं," सुरैया भभक उठी, "ओह माई गाड ! आदर्श, मर्यादा, धर्म, आचरण इन सबने मिलकर मनुष्य को नपुंसक बना दिया है। लेकिन यह कोई नहीं जानता कि नपुंसकता सबसे बडा अधर्म, सबसे भयंकर व्यभिचार और सबसे गिरा हुआ अनादर्श है।"

कमला ने प्रतिवाद किया, "नहीं सुरैया।"

"नहीं कैसे," सुरैया उसी तीव्रता से बोली, "तुम्हारे अन्दर भय है। भय साहस का शत्रु है और साहसहीन व्यक्ति नपुंसक के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। तुम लोगों के पास आई थी, समझा था तुम में जीवन है पर तुम भी औरों की तरह निकलीं।"

कमला पहले ही कातर थी और भी दुखी हो उठी। बिजली की भाँति एक विचार कौंध गया—मेरे दुख से दूसरा क्यों दुखी हो और सुरैया जो नव-वधू बनकर पहिली बार मिलने आई है ? जैसे कोड़ा लगा, सँभलकर उठी, बोली, "मेरी अच्छी सुरैया ! ये बातें तो फिर भी होंगी, पहिले यह बताओ—वे कहाँ हैं।"

"वे गेस्ट हाउस में हैं। हम लोग काश्मीर जा रहे हैं।"

"काश्मीर ! इस रास्ते ?"

"तुमसे मिलना था न !"

"सुरैया, तुम बहुत अच्छी हो। तुम आईं पर मुझे दुख है कि मै तुम्हारा सत्कार नही कर सकी। अच्छा, तुम खाना तो खाओगी न ?"

सुरैया शरारत से हँसी, "अकेले।"

कमला को लगा कि वह दीवार से सिर दे मारे। आँखे भर आईं।

सुरैया ने देखा फिर तीव्र हो उठी, "अरे आज तुम्हे हो क्या गया है ? तुम इतनी कातर क्यों हो ? असफलताओं मे ही तो मनुष्य अपने को पाता है।"

कमला धीरे से बोली, "सुरैया ! मैं असफलताओं से नहीं डरती। डरती तो क्या यहाँ रहती ? मेरे चारो ओर मगरमच्छ पडे हैं। प्रतिक्षण वे मुझे निगल जाना चाहते हैं। पर मै हूँ कि उनकी डाढों से खेल करती हूँ।

सुरैया हँसी, "तो फिर।"

"तुम आई हो, नववधू हो, मै तुम्हारा सत्कार नहीं कर सकती !"

"हटो, हटो, सुरैया बोली, "सत्कार हृदय में है। पत्थर के पूजने से कहीं भगवान् प्रसन्न होते हैं। वे तो भावना को देखते हैं।"

"ओ हो !" कमला हँस पड़ी, "मेरे प्यारे भगवान् !"

सुरैया ठठाकर हँसी, "मै क्या ..गवान् बनती ! तुम्हारे भगवान् तो वे हैं।"

"वे कौन ?"

"वे।"

"वे ! वे ! वे क्या कोई जन्तु विशेष हैं।"

"ओ हो, तो रानी जी जन्तुओं से प्रेम करती हैं। और सच तो यह है कि वह है भी जन्तु ही। बुद्धिहीन मनुष्य जन्तु ही तो होता है।"

"हटो सुरैया ! किसी का अपमान मत करो।"

"जी हाँ, आपको दुख न होगा तो किसे होगा ?"

"क्या कल्पना उडा रही है ? आखिर वह कौन है ?"

"जैसे जानतीं नहीं !"

"मै किसे जानूँगी ?"

"मेरी ओर देखो।"

कमला ने आँखें उठाईं पर वे उसी क्षण झुक गईं। सुरैया ने धीरे से कहा, "मै जानती हूँ तुम किसके लिए तपस्या कर रही हो। वह कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो, पर है कायर, संस्कारों का दास। उठता है और फड़फडाकर गिर पड़ता है। कमला, तुम्हे उसके बन्धन काटने होगे।"

कमला ने एक-एक शब्द सुना मानो प्रकाश-किरण जागी, परन्तु बात टालकर बोली, "अच्छा सुरैया! बैठो मैं अभी खाना बनाती हूँ।"

सुरैया ने कहा, "मुझे तो अभी जाना होगा कमला, तुम से मिलने आई थी। लौटती बार अवश्य तुम लोगों के अतिथि बनेंगे।"

"कब लौटोगी ?"

"लगभग एक महीने मे।

कमला ने इस निर्भीक नारी को देखा और ईर्षालु प्रेम से भर उठी। फिर शीघ्रता से वह अन्दर चली गई। ममता जो मिठाई दे गई थी वह एक तश्तरी मे रख लाई, बोली, "खाओ।"

"और तुम भी।"

"हाँ, हाँ, मैं भी, अभी आती हूँ।"

फिर अन्दर गई। अपना बक्स खोला। एक सुन्दर साडी जो उसे सर्वप्रिय थी निकाली और कागज में लपेटकर, उसके पास ले आई बोली, "बहिन! यह मेरी ओर से तुच्छ भेट है।"

सुरैया मुस्करायी। शीघ्रता से पैकेट खोल डाला। कमला प्रतिवाद करती रह गई। साड़ी देखकर सुरैया के नयन चमक उठे। कई क्षण देखती ही रही फिर गद्गद होकर कमला को देखा। साडी आँखों से लगा ली, कहा, "इसे अस्वीकार करके तुम्हारा अपमान नही करूँगी कमला!"

कमला उच्छ्वसित होकर रह गई। फिर दोनो चुपचाप खाती रहीं। खा

चुकी तो सुरैया जाने को उठी। कमला साथ-साथ आई। तभी सहसा कुछ याद आया, "अरे सुरैया! तुम्हारा बुरका कहाँ रह गया?"

सुरैया हँसी, "उड़ गया। उनके छूते ही वह ऐसे उड़ गया जैसे गधे के सिर से सींग।"

कमला ने हँसते-हँसते कहा, "मुसलमान लड़कियाँ बड़ी साहसी होती हैं।"

सुरैया बोली, "साहस किसी की बपौती नहीं है कमला! और रही मुसलमान लड़कियों की बात वे सदा फाँसी के कैदियों की भाँति काल-कोठरियों में कैद रहती हैं। उन्हें न फाँसी लगती है न मुक्ति ही मिलती है। मेरा साहस व्यक्ति का साहस है।"

× × ×

सुरैया को बिदा करके कमला जैसे ही अन्दर आई तैसे ही एक पड़ोसिन ने झाँककर पूछा, "कौन आया था मास्टरनी?"

कमला काँप उठी पर ऊपर से मुस्कराकर उसने कहा, "मेरी एक सहेली थी। दिल्ली से आई थी।"

"अकेली?"

"जी, इसका विवाह अभी हुआ है। पति के साथ काश्मीर जा रही है। रेलवे के गेस्ट हाउस में ठहरे हैं। मुझसे मिलने चली आई थी।"

पड़ोसिन ने मुँह बनाया—"बड़ी तेज औरत है। भला कोई ऐसे आता है। पति को वहीं छोड़ आई?"

कमला अपनापन खो रही थी। सहसा बोली, "जी वह मुसलमान है। पति कैसे आता?"

जैसे पड़ोसिन का पाँव आग पर पड़ गया, तड़पकर कह उठी, "वह मुसलमान थी तो तुम्हारे दोस्त मुसलमान भी हैं?"

तीर छूट चुका था कमला ने देखा उस तीर ने उसे ही घायल कर दिया है। अन्दर आकर वह खाट पर गिर पड़ी। स्नेह, साहस और अपवाद सभी दर्द

बनकर टीस उठे। इतनी टीसें कि उसे संसार का, संसार की गति का, किसी का ध्यान नहीं रहा। वह तभी उठी जब ममता ने आकर उसे पुकारा, "अरे भाभी! संध्या आ गई कैसे लेटी हो? चूल्हा न जलाओगी?"

कमला सँभलकर बोली, "चूल्हा नहीं आज भट्टी जल रही है।"

"कहाँ देखूँ तो?"

"मेरे अन्दर।"

"ओह तो कहानी पूरी हो चुकी है।"

"क्या मतलब?"

"क्या मतलब..." ममता मुस्कराई, "बड़ी भोली बनती हो। अच्छा बताओ तुम मुसलमान कब बन रही हो?"

"ममता!" कमला असहनीय पीड़ा से कराह उठी।

"ओ हो! आप कुछ नहीं जानतीं। आपके पड़ोसी जानते हैं। सारा मुहल्ला जानता है और आशा है कि अब तक सारा नगर जान चुका होगा।"

"क्या .. ....?" कमला भयातुर-सी फुसफुसाई।

"जी हाँ! सब यही कहते है। आप मुसलमान बनने वाली हैं। कई के अनुसार तो आप बन चुकी हैं। दिल्ली के कोई वकील हैं।

कमला तड़प उठी परन्तु ऊपर से शान्त मन उसने दीर्घ निश्वास लेकर कहा, "काश कि मैं बन पाती।"

"तो अभी बनी नहीं। ओह भगवान्!"

कमला नहीं समझी कि वह हँसे या क्रोध करे। उसने दर्द भरी वाणी में कहा, "तुम भी विश्वास करती हो कमला।"

"करूँ तो... ....."

तब कमला के मुख पर जो भाव आया वह क्षणिक होकर भी अच्छा नहीं था। फिर भी उसने मुस्कराकर कहा, "लो मैं मानूँगी, ममता, मुझे नहीं जानती।"

"दूसरे को जानने का अधिकार कोरी वंचना है। मनुष्य कब क्या कर सकता

है, इस सत्य को झुठलाना सरल नहीं है।"

कमला ने सहसा कोई उत्तर नहीं दिया। ममता उसके पास आकर बैठ गई। धीरे से बोली, "श्रीमती जी के पास आज कौन आया था ?"

कमला ने सुरैया की कहानी सुनाई तो ममता जोर से हँस पड़ी, "तो यह बात थी। पड़ोसिन ने पूछा और मेरी सत्यवादिनी बहिन ने सब कुछ बता दिया। वही तुम्हारा सत्य तुम पर प्रेत बनकर छा गया है।"

कमला ने शान्त भाव से उत्तर दिया, "मेरा सत्य तभी प्रेत बन सकता है जब मैं उसे स्वीकार करूँ।"

ममता बोली, "भाभी ! तुम्हारा साहस मै जानती हूँ परन्तु मुझे एक डर है।"

"क्या ?"

"अस्वाभाविक स्थिति मे जो साहस उत्पन्न होता है वह अक्सर धोखा दे जाता है।"

कमला बोली, "अस्वाभाविक स्थिति क्या है ?"

"अपने को भुलाना।"

चोट बचाने के लिए कमला ने स्थान बदला था परन्तु उधर वार और भी तीव्रता से पड़ा। वह तिलमिला उठी। बोली नहीं। ममता ने उसे देख भर लिया। इसी तरह कई क्षण बीत गये। सन्नाटा उसकी छाती मे घहर उठा। सहसा तभी किसी ने पुकारा, "मास्टरनी ! ओ मास्टरनी !"

कमला शीघ्रता से उठी। पड़ोसिन पुकार रही थी। क्रुद्ध स्वर मे बोली, "कपड़े लाओ।"

"अभी पूरे नही हुए।"

"जैसे भी है वैसे ही लाओ।"

"लेकिन · ·· ।"

"हमे नहीं सिलवाने हैं।"

कमला चुपचाप अन्दर गई और उसके कपडे ले आई। बोली,

"लीजिये।"

ममता ने सुना, इस 'लीजिये' शब्द मे कमला का आहत अभिमान नागिन की भाँति फुँकार उठा था। वह जब अन्दर लौटी तो तमतमा रही थी। बोली, "आखिर समार मुझ मे दिलचस्पी लेता ही क्यो है?"

ममता मुस्कराई, "क्योंकि तुम उसका अंग हो और वह अंग हो जिसमें रस है।"

"ममता!"

कमला जैसे आज बुझी जा रही थी। वह मुक्त होना चाहती थी, पर तभी कोई अन्दर से कचोट उठता था और वह तिलमिला कर रह जाती थी उसे यही स्थिति बहुत अस्वाभाविक और असहनीय लग रही थी। ज्ञान पाकर भी वह अशक्त थी। बहुधा ज्ञान कायरता का प्रतीक बन जाता है। इसीलिए पानी का भरा हुआ बादल भरा ही रह गया। ममता इस बात को स्पष्ट देख रही थी परन्तु आज उसने अधिक बातें करना ठीक नही समझा। उठी और चल पडी। कमला ने उसे जाते देखा। बोली, "ममता, अब तुम यहाँ मत आना।"

"क्यो?"

"क्योकि मैंने तुम्हारे भाई की बातें सुनी थीं।"

"ओह! तो आपको मेरे भाई की चिन्ता है, मेरी नहीं।"

कमला उसी तरह बोली, "मुझे न तुम्हारी चिन्ता है न तुम्हारे भाई की, मुझे तो केवल अपनी चिन्ता है।"

"मुझे प्रसन्नता है कि तुम अपनी चिन्ता कर सकती हो।"

"जैसे अब तक आप करती थीं।"

"बात तो ऐसी ही थी पर तुम न मानो तो मै क्या कर सकती हूँ।"

कमला साहस खोये चली जा रही थी। चिल्ला पडी—"ममता? तुमने मुझे क्या समझा है। तुम अब तक मुझ पर दया दिखा रही थीं, दया लेकिन ......लेकिन ममता याद रखो मैं तुम्हारी दया नहीं चाहती। किसी

की दया नहीं चाहती। तुम यहाँ से चली जाओ और फिर आना भी मत। जाओ······जाओ······।"

ममता थी कि लौट पड़ी। उसने कमला के पास आकर उसे दोनों हाथों में भर लिया और अपनी आँखें उसकी आँखों में डाल दीं। न जाने क्या हुआ कि कमला का शरीर शिथिल हो गया। वह रो पड़ी और ऐसी रोई कि हिचकियाँ बँध गईं। ममता प्यार से बोली, "यह ठीक है। झूठा साहस सदा पानी बनकर बहता है। रो लो मेरी विधवा भाभी, जी भरकर रो लो। दर्प धुल जायेगा तो अन्तर स्वच्छ हो उठेगा।"

कमला ने वाणी से कुछ जवाब नहीं दिया परन्तु उसने अपने आपको ममता के वक्षस्थल में इस प्रकार समेट लिया जैसे बच्चा माँ की गोदी मे छिप जाता है। ममता उसे प्यार से थपथपाती रही।

: ७ :

कान्त उस दिन भी देर से लौटा। सघन रात्रि थी। तिमिराच्छन्न आकाश में कभी-कभी बिजली चमक उठती थी और तब थके हुए योद्धाओं की भाँति जलधर इधर-उधर बिखरे हुए दिखाई दे जाते थे। नीचे धरती का भीगा मन शीतल वायु की थपकियों से मोह निद्रा मे खोता जा रहा था। कान्त का शरीर यद्यपि दर्द कर रहा था परन्तु वह इस मधुरिमा से अछूता नहीं रहा। विशेषकर उसने किसी-कोकिल कण्ठी के कण्ठ से बहती हुई स्वर-लहरी को सुना। वह गा रही थी—"ओ तू मेरे मन को अपने सम्मोहन-पाश में बाँधकर कैसे शान्त हो गया है, धरती की छाती ठण्डी हो चुकी है। मैं जीवन का सुख पा रही हूँ। ओ, तू मेरी गोद में आ जा, मैं बलैया लेकर तेरी थकान उतार दूँगी, मेरे अमर दानी।"

वह मुस्कराया और उस गीत की कड़ी गुनगुनाने लगा—"तू मेरी गोद में आजा, मेरे अमर दानी। मैं बलैया लेकर तेरी थकान उतार दूँगी।" उसने सोचा—"यह स्वार्थ भी कितना विषद है इतना जितना अनन्त आकाश। 'तूने मुझे दिया है, उसी दान से मैं तेरा पालन करूँगी। मुझे केवल प्रतिदान का सुख चाहिए।' स्वार्थ और परमार्थ की सीमा रेखा क्या दो हैं? परमार्थ में स्वार्थ का सुख उसी तरह समाया हुआ है जिस तरह बादल में पानी। दुनियाँ जानती है कि बादल पानी बरसाता है परन्तु सत्य तो यह है कि पानी बादल बनता है।"

वह अब घर के पास आ चुका था, उसने सदा की भाँति ताली निकाली। लेकिन जैसे ही वह चबूतरे पर चढ़ा बिजली चमकी और उसने देखा—चौकी पर एक आदमी बैठा है।

वह सहसा काँपा और तीव्रता से बोला, "कौन है?"

उत्तर में नवागन्तुक हँसकर बोला, "मैं था मास्टरजी! धर्मपाल।"

"अरे तुम कब आये?"

"आज ही आया हूँ। तीन बार इधर आया पर आप नहीं मिले।"

"हाँ आज कल आडिट चल रहा है। देर हो जाती है। कहो कुमार कैसा है?"

"ठीक है। दिल्ली जानेवाले हैं।"

वे अब तक अन्दर आ चुके थे। कान्त ने लालटेन जलाकर पूछा, "कैसे आये थे?"

"जी, सवेरे मुझे गाँव जाना है।"

"क्यों?"

"मेरी शादी होने वाली है।"

"अच्छा।"

अब तो कान्त रस ले लेकर शादी की बातें पूछने लगा। धर्मपाल जवाब दे रहा था और सामान खोल रहा था। एक टोकरे में आम थे। कुछ जामुन

भी थीं, दो पत्र भी बँधे थे। उन्हें कान्ता को देकर बोला, "एक आपका है। और एक कमला बीबीजी का। वे यहीं हैं न ?"

"शायद।"

"स्कूल में नहीं पढ़ातीं।"

"नहीं।"

"तो।"

"पता नहीं। सवेरे घर देख आना।"

धर्मपाल को बड़ा अजीब-सा लगा। बोला नहीं। कान्त ने ही कहा, "अच्छा बैठो। मै रसोईघर को देखता हूँ।"

धर्मपाल ने कहा, "नहीं, नहीं, उसे मैं देख लूँगा।"

कान्त मुस्कराकर बोला, लेकिन आज तो तुम अतिथि हो।"

धर्मपाल रसोईघर में पहुँच चुका था। कान्त ने आकर उसे सब बातें सुझा दीं, फिर उसी के पास बैठकर कुमार की चिट्ठी पढने लगा।

प्रिय कान्त,

पिछले पत्र से तुम्हे मेरे मानसिक द्वन्द्व की एक झलक मिली होगी। शायद तुमने सोचा भी हो कि कुमार से यह आशा नहीं थी। आशा तो कभी किसी से नहीं करनी चाहिए। जो बादल पानी बरसाते हैं वही ओलों की वर्षा करते हैं और बिजली गिराते हैं। जो दीपक प्रकाश करता है वही भस्म करने की शक्ति रखता है।

याद होगा कि एक बार मैंने तुम्हें अपने जीवन का एक रहस्य बताया था कि मैं विवाहित था और मै अपनी पत्नी की भावनाओ का आदर नहीं करता था। उसी कारण वह मुझे छोड़कर चली गई थी। उसमें मेरी अनुमति थी। न होती तो मैं जीवन भर प्रायश्चित्त में जलता रहता। मैं समझता था कि मेरे जीवन का वह परिच्छेद समाप्त हो चुका है पर देखता क्या हूँ कि एक दिन हवा के झोंके से पुस्तक के पिछले पृष्ठ फिर खुल गये हैं। वह कहानी भी तुम जानते हो। रुपये तुमने ही दिये थे। रुपये उसने कृतज्ञ होकर

स्वीकार किये और सुनता हूँ उनको लेकर उसने जीवन को संयत बनाने की पूरी चेष्टा की। वह सफल भी हुई। पति होमियोपैथी जानते थे। घूम-घूम कर इलाज करने लगे। पर अचानक एक दिन फिर नियति का वज्र उन पर आ गिरा। तुम जानते हो पिछले दिनों साम्प्रदायिक आग कैसे भड़क उठी थी। तब डाक्टर दवाइयाँ लेने शहर गया हुआ था। वहाँ अचानक एक दिन संध्या के झुटपुटे में जब वह बाजार से लौट रहा था तो किसी ने उसके पेट में छुरा भोंक दिया। सवेरे पुलिस ने आकर उनकी लाश उठाई और गाँव में समाचार भेजा। घर में हाहाकार मच गया। उसके वृद्ध पिता जीवित थे। पुत्र ने उनकी दृष्टि में अपराध किया था पर पत्नी ने सेवा करके उनके प्रेम को जीत लिया था। फिर डाक्टर होने के बाद उनके परिश्रम से वह बहुत प्रसन्न थे। सब मैल धुल चुका था। वह इस दुःख को नहीं सह सके। उसी महीने वह भी चल बसे। पत्नी का रहा-सहा सहारा भी समाप्त हो गया। परन्तु वह अन्त नहीं था, अन्त का आरम्भ था। वह स्वभावतः जेठ की ओर मुड़ी। प्रार्थना की, कि वह मात्र संरक्षण चाहती है, शेष वह अपने परिश्रम से प्राप्त करेगी। परन्तु बड़े भाई ने छोटे भाई को कभी क्षमा नहीं किया था। मौत के बाद भी नहीं कर सके। उन्होंने उसे घर से निकाल दिया क्योंकि वह मात्र रखैल थी और रखैल रहती है, अधिकार नहीं जता सकती। गाँव में भी कोई उसकी सहायता नहीं कर सका। जब साया उठ जाता है तो प्रकृति भी क्रूर हो जाती है। उसके जेठ ने उसके पति की दूकान पर अधिकार कर लिया क्योंकि कानूनी दृष्टि से वारिस वही था। जिसने जीवन भर घृणा की वह उसी के बल पर राजा बन गया पर उसके अपने हृदय के टुकड़े दर-दर भटकने लगे। अकेली होती तो शायद नदी-नाले की शरण लेती पर उसके साथ दो पुत्र थे। उनके लिए उसे जीना था। ऐसे समय में एक साहसी उसकी मदद करने आगे आया। कल्पना कर सकते हो, वह कौन था। वह पास के गाँव का एक मुसलमान राज था। वह अक्सर उनके गाँव में काम करने आया करता था। वह उसकी विपदा को जानता था। कई दिन तक वह उसके पति

की प्रशंसा करके उसे ढाढस बँधाता रहा, फिर धीरे-धीरे बच्चों के लिए खाने पीने की वस्तु लाने लगा, फिर उसके लिए। विरोध हुआ पर कान्त! वह विरोध मन से नहीं उपजा था। वह समाज के निषेध के कारण पैदा हुआ था परन्तु समाज ने जब उसकी चिन्ता नहीं की तो वे निषेध उसे कब तक बाँधे रखते। —एक दिन वह उस राज के साथ चली गई। चली नहीं गई वह उसकी हो गई। परन्तु कान्त! एक बात उसके मन में तब भी कचोटती रहती थी कि ये लड़के हिन्दू हैं, हिन्दू ही रहे। यह कैसा मोह था? मैं इन बातों को नहीं मानता परन्तु यह बात जानकर मुझे रोमाञ्च हो आया था। वह इसी शर्त पर उस राज के साथ गई कि वे लड़के हिन्दू बने रहेंगे। परन्तु तुम जानते हो ये धर्म के पचड़े, उस राज ने तो कुछ नहीं कहा पर उसके बन्धु-बान्धव उन सबको मुसलमान बनाने पर तुल गये। व शायद सफल हो जाते पर इन्हीं दिनों अचानक वह मुझे मिल गई।

मैं शहर जा रहा था। गाड़ी पर सवार होते समय मैंने देखा कि उसी डिब्बे में एक औरत अपने दो बच्चों के साथ चढ रही है। मै उसकी ओर ध्यान न देता यदि उसका एक बच्चा नीचे न गिर जाता। मैं शीघ्रता से उठा और उसे गाड़ी के नीचे आने से रोक लिया। उसकी कृतज्ञ आँखें ऊपर उठीं, गिरीं,—मैं भूचाल की तीव्रता से काँप उठा धक-धक—मैंने कहा, "तुम!"

उसने कुछ जवाब नहीं दिया। जैसे चढ़ी थी वैसे ही नीचे उतर गई। मेरा मन न जाने क्यों घृणा से उमड़ पड़ा। मैंने मुँह फेर लिया। गार्ड ने सीटी दी। आँखें फिर मुड़ीं। वह वहीं खड़ी थी। और'' और कान्त! वह फूट-फूट कर रो रही थी। मुझे न जाने क्या हुआ? मै शीघ्रता से नीचे उतरा, गाड़ी चल पड़ी। प्लेटफार्म खाली हो गया। उठो, गिरी; उसके बाद क्या हुआ, कैसे हुआ, यह सब पत्र में लिखने की शक्ति मुझ में नहीं है। आज मुझे लग रहा है कि ऊपर से निस्पृह और कठोर दिखाई देने वाला मैं कितना कायर हूँ। वह तब उस राज को छोड़कर आ रही थी। इसलिए नहीं कि वह उससे घृणा करती थी बल्कि इसलिए कि बेटे बाप के धर्म को न

छोड़े...... । कान्त ! यह दुनिया कैसी है ? आवरण के पीछे क्या-क्या छिपा है । पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म की व्याख्या क्या कभी ठीक-ठीक हो सकी है ? तुम उसको पापी कहोगे या पुण्यात्मा ? वह न पापिन है न पुण्यात्मा। वह एक साधारण स्त्री है, मोह और ममता से पूर्ण । उसी के अनुसार वह चलती है । मैंने उससे कहा, "तुम मेरे साथ चलो।"

रोते-रोते वह तीव्रता से बोली, "नहीं, यह नहीं होगा।"

"तो..."

"मैं आपके साथ नहीं जाऊँगी। मै आपको नही सह सकूँगी।"

मैंने उसे समझाया कि मै आश्रम में जाकर रहूँगा। वहाँ बहुत से व्यक्ति रहते हैं। तुम भी उनके साथ रह सकती हो।

वह बोली, "तुम इन दोनो बच्चों को ले जा सकते हो।"

मैंने पूछा, "तुम कहाँ जाओगी ?"

बोली, "मैं वहीं लौट जाऊँगी।"

मैंने कहा, "यदि रह सकती हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

उसने हठात् दृष्टि उठाकर मुझे देखा, दृष्टि फिर मिली। न जाने क्या हुआ। वह मेरे चरणों मे आ गिरी। उसने रोते-रोते कहा, "मैं यह सब नहीं सह सकती। मैं मरना चाहती हूँ। मैं आत्महत्या करूँगी ?"

मैने कहा, "आश्रम में इसका तो प्रबन्ध नही है। हाँ, आजकल स्वतन्त्रता का युद्ध छिड़ा है। मरने का अवसर किसी क्षण भी मिल सकता है। गांधी की शरण में तुम्हें बल देगी।"

वह बहुत देर तक उसी तरह शून्य मे ताकती रही और रोती रही। उसके दोनों बच्चे उसे अचरज से देख रहे थे। कभी कोई आदमी आता तो एक दृष्टि डालकर चला जाता। अन्त में वह बोली, "तो चलो।"

कान्त ! मैं तभी उसे लेकर आश्रम में छोड़ आया। घर ले जाकर भाई के जीवन में और कटुता पैदा करना मुझे प्रिय नहीं था। मैं नहीं जानता कि यह क्या हुआ और आगे क्या होगा, पर एक बात निश्चित है कि मैं उसे

शुद्ध कराने के लिए किसी धर्म-गुरु के पास नहीं ले जाऊँगा क्योंकि मुझे लगता है कि वह निरपराध है।

कान्त! मनुष्य सहानुभूति चाहता है, उसे सहानुभूति दो तो देखोगे उसके अन्तर का कलुष आप ही आप धुल गया है। क्या मैं उसको यही सहानुभूति न दे सकूँगा? मुझे विश्वास है कि मैं दूँगा तभी मेरा उद्धार होगा।

धर्मपाल को मैं अपने साथ रखूँगा। उसका प्रबन्ध मैंने कर लिया है। सुरैया की शादी में मैं नहीं जा सका। क्या तुम गये थे?

परन्तु कान्त! यह पत्र मैंने तुम्हें ये सब बातें बताने के लिए नहीं लिखा। वह बात कुछ और है पर मैं उसे घुमा-फिराकर नहीं कहूँगा। मेरे पिछले पत्र में उसकी झलकी तुम्हें मिली होगी, मनुष्य अपने को छिपा नहीं सकता। वह उन्हीं शब्दों का प्रयोग करता है जो उसकी भावना को स्पष्ट करते हैं। मै आज उसी भावना को स्वीकार करना चाहता हूँ। मैं तब कमला से प्रेम करने लगा था। मैं चाहता था वह मेरी हो, केवल मेरी, और जब वह अपना सुन्दर मुख मेरे मुख पर रख देती थी और मुझे प्यार से सहलाकर सुख पहुँचाना चाहती थी तो मुझे तनिक भी सन्देह नहीं रहता था। एक दिन जब वह मुझे दवा पिलाकर मेरा मुँह पोंछ रही थी तो मैंने उसे नीचे झुकाकर उसका मुख दोनों हाथों में ले लिया। सच कहता हूँ कान्त! वह रूप आज भी आँखों में रमा हुआ है। कितना स्नेह था उस छवि में। वह मुस्करायी, बोली, "तुम्हें सुख मिला कुमार!" मैं सहसा कुछ जवाब न दे सका। उसने अपना मुख मेरे मुख पर रख दिया और देर तक मेरा हाथ सहलाती रही...। परन्तु मैं तब की अपनी अवस्था नहीं बता सकूँगा। मुझे लग रहा था कि मैं उस विशाल नारी के सामने एक छोटा, अति छोटा-सा, शिशु हूँ, वह शिशु जो असाध्य को पाने के लिए मचलता है और वह उस अबोध को प्रेम की लोरियाँ सुनाकर बहलाने का प्रयत्न करती है। मुझे उस दिन पहली बार कमला से भय लगा। वह देकर भी

कितनी बलशाली थी क्योंकि उस दान में शर्त नहीं थी।

कान्त, तुमने कमला को क्या बना दिया? लगता है कि वह वेदना और वासना दोनों से परे चली गई है। वह तुम्हारी बुद्धि की पकड़ से भी बाहर है परन्तु वह तुमसे प्रेम करती है, यह निर्विवाद सत्य है। यही सत्य मैं तुम पर प्रगट करना चाहता था। मै समझता हूँ कि इस सत्य का स्वीकार किये बिना तुम्हारी मुक्ति नहीं है।

याद रखना कि धर्मपाल के विवाह मे तुम्हें आना है। बस अब कुछ नही लिखूँगा। हमारे विचारों और कल्पनाओं में जितनी क्रान्ति है उसका कुछ अंश भी हमारे आचरण में हो तो जीवन में गुलझटें पड़ें ही क्या?

अभिन्न

कुमार

चिट्ठी पढ़ ली तो देखा धर्मपाल तन्मय होकर अपने काम में लगा है। तभी बाहर खड़-खड ध्वनि उठी, कोई शीघ्रता से आया। वह पंडित जी थे। जैसा कि सदा होता था उन्होंने बिना किसी भूमिका के कहना शुरू कर दिया, "देखो भाई! तुम आत्महत्या कर रहे हो। कोई बात है कि तीन-तीन दिन तक दफ्तर में पडे रहते हो। वे तुम्हारे जीवन को नष्ट करने वाले कौन होते हैं? क्या अधिकार है उन्हें तुम्हारी आत्मा को कुचल देने का? भगवान् मेरा जाने इतनी सेवा देश की करो तो क्या देश दास बना रहे? हम अपने भाई का गला काटते हैं और विदेशी प्रभुओं के तलुए चाटते हैं, क्योंकि वे स्वामी हैं। लेकिन मैं कहता हूँ विदेशी स्वामी कभी ईमानदार नहीं होता और जो ईमानदार होने का दावा करते हैं वे या तो ढोंगी हैं या विमूढ़ या फिर स्वामिभक्त कुत्ते· · ··"

पंडितजी का प्रवाह बरसाती नाले की भाँति तीव्रता से आकार-प्रकार में बढ़ता जा रहा था पर इसी समय उन्हें अचरज में डालता हुआ कान्त उसी तीव्रता से बोल उठा, "पंडित जी, आप ठीक कहते हैं। हम सचमुच कुत्ते हैं।"

जैसे ब्रेक लगा। पंडितजी ने क्षण भर रुककर अपने को सँभाला, फिर मुस्कराकर बोले, "सच जानना कान्त! तुम्हारे लिए मुझे बड़ा दुःख होता है। तुम बात को समझते हो। गांधी सब कुछ जानता है पर मानता नहीं। कितनी ही बार लिख चुका हूँ। जब लिखता हूँ तब उस पर प्रभाव पड़ता है। दो-चार दिन ठीक बोलता है पर उसके बाद फिर देवत्व का ढोंग रचने लगता है। पर निशिकान्त, मुझे एक बात बताओ, इतना समझकर भी तुम इस पाश को तोड़ क्यों नहीं डालते?"

कान्त ने धीरे से कहा, "पंडितजी, हम कायर हैं।"

"कायर हैं! क्यों कायर हैं? जानते हो कायरता सबसे बड़ा पाप है।"

कान्त सहसा कुछ जवाब नहीं दे सका। पंडितजी विजयी वीर की भाँति गद्गद् हो उठे। उन्होंने रसोई में देखकर पूछा, "वह कौन है?"

"धर्मपाल।"

"धर्मपाल?"

"जी हाँ! वही धर्मपाल जो कुमार के पास रहता था।"

"अहा वह धर्मपाल! वह धर्मपाल तुम्हारा खाना बना रहा है।"

और फिर धर्मपाल की ओर मुड़कर पूछा, "क्यों भई धर्मपाल! अब तो तुम्हारा जी मुसलमान होने को नहीं करता?"

कान्त तिलमिला उठा। परन्तु धर्मपाल ने जवाब दिया, "पंडितजी! मैं नहीं जानता कि मैं कभी मुसलमान था। मुझे तो हिन्दू माँ ने पाला है। बात आपकी है। आप मुझे स्वीकार नहीं करते।"

"तुम ठीक कहते हो," पंडितजी ने कहा, "पाप हमारा है। इसी अभिमान और घृणा के कारण इस हिन्दू जाति का पतन हुआ है। जो दूसरों को नीचा समझते हैं नीच वे ही हैं।"

"भई कान्त," वे सहसा हँसे, "अद्भुत बात है! सेवक स्वामी से कहता है कि मैं ऊँचा हूँ, तू नीचा है। बलिहारी है तेरी हिन्दू जाति की। तू अपना उदाहरण आप है।"

फिर शान्त गम्भीरता से कहा, "कान्त ! मै आज तुमसे कहता हूँ कि जब तक हिन्दू जाति अपने इन पापो की जड आप ही नही खोद डालेगी तब तक विश्व का कल्याण होने वाला नहीं है।"

"निस्संदेह," कान्त ने कहा, "आप ठीक कहते हैं।"

पंडितजी फिर विजयी हुए और जब उन्हें यह पता लगा कि धर्मपाल विवाह कर रहा है तो कौतूहल से भरकर पूछा, "इसको लडकी देने वाले हिन्दुओं में हैं।"

"जी हाँ ! कुमार ने अपने गाँव में सम्बन्ध पक्का कर लिया है।"

"भई कुमार भी एक ही आदमी है। सदा ठोस काम करता है।"

फिर वह धपर्माल की ओर मुडे। कहा, "धर्मपाल ! हम तुम्हारी बारात में चलेंगे।"

धर्मपाल गद्गद् हुआ बोला, "आपकी कृपा है पंडितजी ! अवश्य चलिए।"

पंडितजी चले गए तो कान्त को लगा कि उसका दर्द करता हुआ शरीर, जो अब तक भावनाओं के उद्रेक में भूला हुआ था, बुरी तरह टीस रहा था।

धर्मपाल ने कहा, "आइये मास्टरजी ! भोजन तैयार है।"

जी में उठा, मना कर दे पर सोचा बड़े प्रेम से धर्मपाल ने खाना बनाया है। न खाऊँगा तो बुरा मानेगा। इसलिए उसने भोजन किया और ऊपर जा लेटा। उसके बाद उसे कुछ पता नहीं रहा। धर्मपाल जब ऊपर आया तो देखा—पलँग के पास लैम्प सरकाकर कान्त सो गया है। खुला हुआ पत्र छाती पर रखा है और आँखों से बहता हुआ जल मुख पर अपना मार्ग अंकित कर गया है।

वह पास आया कि उन्हें बिना सूचित किये सब ठीक कर दे। लेकिन पत्र उठाते समय उसका हाथ कान्त के बदन से छू गया, मानों लैम्प की चिमनी से छू गया हो। देखने पर पता लगा कि मास्टरजी को तेज ज्वर चढ़ आया है।

: ८ :

कमला तब बैठी हुई कुछ लिख रही थी। स्वर सुनकर चौंक उठी। देखा, दीदी है। बोली, "आप!"

दीदी ने कहा, "हाँ, कान्त के पास आई थी पर उसका घर बन्द था। पता लगा कि उसकी माँ अभी नहीं लौटी है। धर्मपाल बाहर बैठा था।"

कमला ने चकित होकर कहा, "धर्मपाल!"

"हाँ, वह आज ही गाँव से आया है। बता रहा था कि वह गाँव में कुमार के पास रहता है। अब शीघ्र वे दिल्ली के किसी आश्रम मे जाने वाले हैं।"

"जी।"

"और कमला! मैंने सुना है कुमार की शादी हो चुकी है।"

"जी।"

"हाँ, धर्मपाल कह रहा था। साथ में उसकी पत्नी भी जाएगी। मैं तो जानती थी कि वह अविवाहित है परन्तु जब वह बीमार था तब..."

बात काटकर कमला ने कहा, "जी हाँ, तब तो उसे आना चाहिए था लेकिन एक बात हो सकती है कि उन्होंने अब विवाह कर लिया हो।"

"पर तुम्हें नहीं मालूम।"

"जी नहीं।"

"अचरज है, लेकिन जो भी हो मैंने तो धर्मपाल से कुछ पूछा नहीं। दूसरों के व्यक्तिगत जीवन मे अधिक रस लेना मुझे अच्छा नही लगता। मैं तो कान्त की माँ से मिलने आई थी। मेरी भतीजी है न, उसका विवाह अब होना ही चाहिए। तुम उसकी माँ से मिली थीं?"

"जी हाँ, एक बार मिली थी।"

"क्या कहती थी?"

"कहती थी कि वह तो बहुत चाहती हैं पर मास्टरजी अभी विवाह नहीं

करना चाहते ।"

"सुना है अब तो वह तैयार है।"

"कौन कहता था ?"

"हमारे मकान में उनके दफ्तर के एक बाबू रहते हैं। जाट हैं। वैसे तो वे लोग आजकल बनियों के बड़े विरोधी हैं पर कान्त की बड़ी प्रशंसा किया करते हैं। वही कहते थे।"

कमला के ओठों पर मृत्यु की मुस्कराहट फैल गई। बोली, "तब तो बडी सुन्दर बात है उसकी माँ आने वाली है। मै बातें करूँगी।"

"हाँ कमला! तुम्हारी बड़ी कृपा होगी और देखो, मुझे भी बुला लेना।"

"जी अवश्य।"

"और तुम क्या कर रही हो ? क्या सोचा है ?"

"सोचा है कि जब तक मर नही जाती मुझे जीना है।"

"जीते तो सभी हैं कमला!"

बात काटकर कमला ने कहा, "दीदी, ऐसा जीना नहीं। यह तो मात्र 'अस्तित्व' है। अस्तित्व और जीवन मे अन्तर है, उतना ही जितना 'मृत्यु' और संसार छोड़ देने में अन्तर है।"

दीदी बोली, "तुम तो दर्शनशास्त्र की बातें करती हो।"

कमला हँस पड़ी, "दीदी, अकेला व्यक्ति और क्या बनेगा पर तो भी कुछ लोग कहते हैं कि मैं शैतान हो गई हूँ। वे नहीं जानते कि शैतान शक्तिशाली है। भगवान् जब स्वयं अपनी सृष्टि को न सँभाल सके तो उन्होंने उसे शैतान को दान कर दिया था। आजकल वही उसे चलाता है।"

"तुम ठीक कहती हो तभी तो इतना पाप है।"

"शैतान के राज्य में पाप तो मानने का होता है दीदी।"

दीदी के आर्यसमाजी मन पर ये बातें घन की चोट की भाँति पड़ीं। उसने सोचा, शान्त और स्वल्पभाषी कमला कितनी तीव्रता से बोलने लगी,

है। शैतान का राज्य तो पाप का राज्य होता है। बोली, "कमला! जो पाप है उसे अस्वीकार कर देने से वह पुण्य नहीं बन जाता।"

कमला प्रतिहत नहीं हुई। कहा, "बन जाता है दीदी। तलाक एक यूरोपवासी के लिए जितना बड़ा पुण्य है एक हिन्दू के लिए उतना ही बड़ा पाप है और हिन्दुओं में ही देखो न! आर्यसमाज के लिए मूर्ति-पूजा त्रिकाल में भी पुण्य नहीं हो सकती परन्तु सनातनधर्मी के लिए वह सदा पुण्य है। आपने अभी जाट क्लर्क की बात कही थी। उन्हें मैं जानती हूँ। अपने छोटे भाई के मरने पर उन्होंने उसकी पत्नी को जाति, कुल और धर्म के अनुसार अपनी पत्नी बनाया है परन्तु हमारी जाति···।"

ठीक इसी समय किसी परिचित स्वर ने पुकारा, "कमला बेटी!"

दोनों चौंक पड़ीं। कमला ने झाँककर देखा तो मुख विवर्ण हो आया। बोली, "पंडित देवराज आए हैं।"

दीदी घबराई, "अरे क्यों?"

"पता नहीं," कमला बोली और नीचे चली गई। कुछ क्षण बाद लौटी तो पंडित जी उसके साथ थे। उनके मुख पर एक स्निग्ध मुस्कराहट थी। स्निग्धता में फिसलन होती है। कोई नहीं कह सकता कि शिव कब शैतान का रूप धारण कर ले। दीदी को देखकर बोले, "अहा, दीदी भी हैं। कहो प्रसन्न हो न?"

दीदी बोली, "जी, आपकी कृपा है।"

कमला ने विनम्र स्वर में कहा, "आप आये, मैं धन्य हुई। कहिए आपकी क्या सेवा करूँ?"

एक क्षण वह चुप रहे। फिर बोले, "बेटी, मैं तो इस समय एक विशेष कार्य से आया हूँ।

"आज्ञा कीजिये।"

"आज्ञा नहीं बेटी, प्रार्थना है।"

"जी।" कमला इतना ही बोली और तब वह जैसे सन्नाटा हो

गया। उस समय आकाश निपट नीला था, वर्षा समाप्त हो चुकी थी और वायु में शीतलता रम गई थी। फिर भी कभी-कभी ग्रीष्म ऋतु मरणासन्न व्यक्ति की अन्तिम साँस की भाँति अपना साम्राज्य पा लेने की चेष्टा करने लगती थी। कुछ इसी तरह की अवस्था उन लोगों की भी थी। कई क्षण चुप रहने के पश्चात् पंडित जी ने फिर कहा, "बेटी! मैं तुमसे एकान्त में कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

कमला अपने को सँभालकर बोली, "जी, उधर चलें।"

उमस गहरी होने लगी। दूसरी ओर जाकर पंडितजी ने कई बार गला साफ किया, फिर बोले, "बेटी, मैं वृद्ध हूँ मैंने दुनिया देखी है। उसे समझता भी हूँ क्योंकि भगवान की कृपा से मेरा लालन-पालन आर्यसमाज की छत्र-छाया में हुआ है। स्वामी दयानन्द क्रान्त द्रष्टा ऋषि थे। उनका ज्ञान, उनकी बुद्धि, उनकी सूझ-बूझ सब अद्‌भुत थी। मेरे पिता उनके साथी थे। बहुत दिनों तक उनके साथ घूमते रहे थे। वे बहुधा मुझे स्वामीजी के संस्मरण सुनाया करते थे। मैंने उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करवा दिया है। राजपाल से वह पुस्तक आठ आने में मिलती है। उसे लेकर पढ़ना बेटी। बड़ी सुन्दर पुस्तक है।"

कमला ने धीरे से कहा, "मैंने पढ़ी है।"

"अच्छा, अच्छा! मैं जानता हूँ तुम समझदार लड़की हो। तुम्हें पढ़ना चाहिए था। प्रत्येक अध्यापिका को पढ़ना चाहिए। कन्या-शिक्षा के सम्बन्ध में कई संस्मरण हैं।"

कमला ने दृढ़ता से कहा, "पंडितजी! आप तो मुझसे कुछ गोपनीय बातें कहना चाहते थे।"

"हाँ, हाँ बेटी," पंडितजी बोले, "वही तो कह रहा हूँ। स्वामी दयानन्द ने आचार पर बहुत बल दिया है। आचार ही धर्म है, ऐसा व्यास भगवान् बहुत पहले लिख गए हैं। स्वामीजी ने उसी सूत्र की व्याख्या की है।"

"जी!"

"गीता में लिखा है—'स्व धर्मे निधनम् श्रेयः परधर्मो भयावह' स्वामी दयानन्द इस सत्य का प्रतिपादन करने आये थे। उनके प्रचार का आधार यही मूलमन्त्र था।"

"जी हाँ!"

"बेटी, तुम तो सब कुछ जानती हो। उन दिनों देश की क्या हालत थी। बड़े-बड़े तत्वज्ञानी ईसाई और मुसलमान हो रहे थे। स्त्री जाति रसातल को जा चुकी थी। अछूत त्राहि त्राहि पुकार रहे थे। उस समय स्वामीजी सबके मसीहा बनकर आये। उन्होंने बताया—'कि अमृत का सरोवर हमारे पास है। उसे भूलकर आप कहाँ भटकते रहे हैं। लौटो, उसे प्राप्त करो। तुम अमृत-पुत्र हो।' बेटी, ये सब वेद के शब्द हैं। पर जब तक दयानन्द ने आकर उन्हें नहीं पढ़ा तब तक हम सब अन्धे बने रहे।"

कमला का सन्तोष अब सीमा का उल्लंघन कर चला था पर पंडितजी वृद्ध थे। उसने उन्हे देखा और नम्रता से कहा, "आपका उपदेश बहुत सुन्दर होता है पर आज तो आप······।"

"हाँ, हाँ"— पण्डितजी बोले, "वही तो, वही तो कह रहा हूँ आचार-धर्म है। अपने धर्म में मरना उत्तम है। स्त्री जाति के एक-मात्र उद्धारक स्वामी दयानन्द थे। उन्होंने उसे पुरुष से कम नहीं माना। वह पुरुष का निर्माण करती है। पर बेटी! वह जितनी महान् है उसका कार्य भी उतना ही महान् है। वह तलवार की धार पर चलने के समान है। उपनिषद् में लिखा है कि नारी को कभी अकेला पुरुष के पास नहीं रहना चाहिए। पिता और भाई के साथ भी नहीं बैठना चाहिए। वह प्रसिद्ध कहानी···।"

कमला सहसा बोली, "जी पढ़ी है।"

"मैं जानता हूँ, मैं जानता हूँ। मेरी पुस्तक में पढ़ी होगी। तुम तो समझदार हो, स्वामी दयानन्द आज के युग की विशेष परिस्थिति को जानते थे। वे जानते थे कि विधवा-विवाह आदर्श नहीं है पर युग की आवश्यकता समझकर उन्होंने उसे स्वीकार किया। जो युग की आवश्यकता को पहचानता

है वही क्रान्तद्रष्टा युगपुरुष है। सो बेटी·····"

"जी।"

"सो बेटी, तुम विधवा हो। अकेली हो। इस जीवन में अकेला रहना असम्भव है। आदमी सहानुभूति चाहता है। कोई अपना है, किसी को अपना कह सकूँ, यह सब स्वाभाविक है। तुम्हारी ओर देखता हूँ तो मुझे अचरज होता है। तुम में अद्भुत शक्ति है। पर बेटी, तुम जानती हो कि शक्ति की सीमा है। हमें अपनी सीमा पहचाननी चाहिए और अपने धर्म पर दृढ रहना चाहिए। बेटी, मैं जानता हूँ कि पाठशाला वालों ने गलती की है।"

"पंडितजी! कृपा कर आप उसकी चिन्ता न करें।"

कमला की वाणी में तलखी तो नहीं थी पर दृढ़ता इतनी थी कि पंडितजी ने चोट अनुभव की, वे हठात् कुछ नहीं कह सके। कमला ने उसी तरह कहा, "आप जो कहना चाहते हैं वही स्पष्ट कहिये। मैं आचार-भ्रष्ट हूँ। मैं मुसलमान होने जा रही हूँ।"

पंडितजी ने चौंककर कमला को देखा, वह मुस्करा रही थी। पर वह मुस्कराहट अग्नि की उठती हुई ज्वाला की भाँति थी जो जलाने से पहले प्रकाश देती है। वे सिहर उठे। उन्होंने बीच ही में टोककर कहा, "बेटी, मैं तुम्हारी शुभ कामना के लिए आया हूँ। तुम चाहो तो।"

"मेरी चाह की आप इतनी चिन्ता क्यों करते हैं?"

"क्योंकि तुम अपनी हो।"

"पंडित जी! मैं आज ही अपनी हुई हूँ। उस दिन नहीं थी जब मुझे पाठशाला से अलग किया गया था।"

पंडित जी का गला सूखता जा रहा था, किसी तरह बोले, "मैं मानता हूँ कि वह उनकी गलती थी। पर बेटी! तुमने भी तो···।"

"मैं तो आज भी कहती हूँ, मैं किसी की दया नहीं चाहती। मैं अपने को जानती हूँ। मैं जो चाहूँगी, करूँगी।"

उसका स्वर तीव्र हो रहा था। आँगन में लपटें उठने लगी थीं पर सहसा

उसने शान्त होकर कहा, "पंडित जी! मेरे आचार-भ्रष्ट होने से क्या बिगड़ता है। मैं मुसलमान हो भी गई तो क्या होगा।"

पंडित जी वृद्ध थे। उन्होंने पराजित होना नहीं सीखा था। बोले, "बेटी! तुम कैसी बातें कर रही हो, एक-एक व्यक्ति से समाज बना है। एक-एक करके आज मुसलमान नौ करोड़ हो गये हैं।"

कमला हँस पड़ी, "तो अब एक और सही।"

पंडित जी भी हँसे, "अब तो बेटी पासा उलट गया है। वे लोग उधर से इधर आ रहे हैं।"

पर तभी जैसे कुछ याद आ गया, बोले, "पर बेटी, अभी हम लोगों में छूआछूत कम नहीं हुई है। यह कम होगी उसी दिन ···"

बात काटकर कमला ने सीधा प्रश्न किया, "पंडित जी! यह तो कहिये आपसे किसने कहा कि मैं मुसलमान होने जा रही हूँ।"

"सभी जगह यही चर्चा है। दिल्ली में कोई मुसलमान वकील है। उनकी लड़की सुरैया तुम्हारे घर आती है।"

कमला हँस पड़ी, "लड़की नहीं पंडित जी, वह उनकी पत्नी है।"

" जो भी हो।"

"वह मेरी सखी है। मैंने उसके पति को आज तक नहीं देखा। जहाँ तक मैं जानती हूँ वह कम्यूनिस्ट है।"

पंडित जी काँप उठे, "कम्यूनिस्ट।" वह तो और भी बुरी बात है। उनका कोई धर्म नहीं होता। वे आचार को नहीं मानते। विवाह-संस्था से उन्हें घृणा है। वे तो बेटा···!"

कमला को रस आ रहा था, बोली, "वे तो चार्वाक ऋषि के चेले हैं।"

"उनसे भी बुरे बेटी! तुम्हें उनसे बचना चाहिए। इसीलिए तो मैं आया हूँ। मैं तुम्हारे विवाह का प्रबन्ध कर सकता हूँ।"

"पंडितजी, विवाह किया नहीं जाता, होता है।"

पंडितजी ने जवाब दिया, "होना, करने की क्रिया से अलग नहीं है। करते हैं—तभी—होती है।"

"नहीं पंडितजी, होता तो प्रेरणा है। क्रिया इसके बाद आती है। लेकिन मैं इस तर्क-जाल मे फँसना नहीं चाहती। मैं अपने को जानती हूँ। आत्म-विश्वास मुझे मे है। जिस दिन मैं उसे भूलूँगी उस दिन समाप्त हो जाऊँगी और रही आचार की बात। सबसे बड़े अनाचारी वे हैं जो दूसरों की दया पर जीते हैं।"

पंडितजी को कई क्षण उत्तर नहीं सूझा। विमूढ-से देखते ही रहे। फिर बोले, "बेटी! मुझे जो कहना था कह चुका। मैं तुम्हारे पिता के तुल्य हूँ। कोई बात हो तो निस्संकोच मेरे पास आना। तुम्हारी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं पर तुम इतनी संयत, इतनी ज्ञानी हो यह सतोष देता है। इतना ही कहता हूँ केवल अपना ही ध्यान न करना, इस अभागी हिन्दू जाति का ध्यान भी रखना। तुम्हारे विवाह ..."

कमला, जो संयत थी, विद्रूप से बोली, "पंडितजी! यदि मुझे विवाह करना होगा तो विश्वास रखिए आपके पास नहीं आऊँगी। वह मेरा काम है और रही आचरण की बात। पतिता होने के कारण मुझे आप लोगों ने स्कूल से निकाल दिया था। उसी पतिता के प्रति आज आप दया दिखाने क्यों आये हैं? क्यों? मैंने उस दिन भी कहा था, आज भी कहती हूँ, मैं किसी की दया नहीं चाहती! नहीं चाहती!..."

कमला की वाणी सहसा इतनी तीव्र और इतनी कड़वी हो उठी कि पंडितजी तिलमिला उठे। उन्हे उत्तर न सूझा और जब उत्तर न सूझा तो वह क्रोध से भर उठे। कमला निर्भय होकर मुस्कराई, बोली, "आपको क्रोध आ रहा है। पर मैं पूछती हूँ कि आप मेरे घर क्यो आये? आपको क्या अधिकार था मेरा अपमान करने का? कोई आता है, प्रणय-दान माँगता है, कोई विवाह की भीख माँगता है, कोई मुझ पर दया करता है। आखिर पुरुषों को हुआ क्या है क? यों वे नारी को जीने नहीं देते? क्यो वे उसकी टेक बनना चाहते हैं?

पडितजो ने असहाय की भाँति दृष्टि उठाकर कमला को देखा। उसकी आँखें तेज से पूर्ण थीं। वह तेज जो प्रकाश नहीं देता भस्म भी करता है। उन्होंने लड़खड़ाकर कहा, "मै जाता हूँ।"

तभी दीदी ने वहाँ प्रवेश किया। वे चुपचाप कमला के पास आईं। उसे प्यार से थपथपाया, कहा, "कमला ! यह जोश भी कायरता है।"

कमला ने हठात् दीदी को देखा। आँखों से आँखें मिली। तेज पिघल गया। जल भर आया, दीदी ने पंडितजी की ओर देखा, बोली, "यह बहुत दुखी है पंडितजी।"

पंडितजी धरती की ओर देख रहे थे। उसी तरह कहा, "जानता हूँ इसीलिए आया था। सचमुच इसके साथ उन लोगों ने अन्याय किया है! स्वामी दयानन्द कभी ऐसा न करते। दीदी, इसे समझाना। मै हर तरह इसकी सहायता करने को तैयार हूँ।"

दीदी बोली, जी मैं समझाऊँगी।"

पंडितजी जाने को उठे फिर क्षण भर रुककर कहा, "क्षमा करना बेटी, तुम्हारे भले के लिए आया था। तुम साहसी हो फिर भी आवश्यकता हो तो अपना समझकर याद कर लेना।"

और वह चले गये। कमला देर तक दीदी की छाती से चिपकी रही, तब तक चिपकी रही जब तक दीदी की आँखों के आँसू उसके मुँह पर नही टपकने लगे। वह चौंक पड़ी। आँखे उठाकर बोली, "दीदी ! आप भी रोती हैं।"

दीदी ने धीरे से कहा, "कमला ! एक दिन मेरी अवस्था भी ऐसी ही हुई थी। मैने भी किसी से प्रेम किया था।"

"दीदी !"

"आज उन बातों को युग बीत गया। स्मृति धुँधली पड़ गई पर तुम्हें देखकर फिर स्पष्ट हो आई है। आदमी कभी कुछ नहीं भूलता। दूसरी

स्मृतियाँ और स्वार्थों का आवरण उसे ढक भर लेता है। मुझे वह आज की सी बात लग रही है। हम दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे पर समय आया तो दोनों कायर निकले। समाज ने हमारे प्रेम को स्वीकार नहीं किया। एक दिन उसने राम और सीता के प्रणय को भी अस्वीकार कर दिया था। राम ने उस अस्वीकृति को स्वीकार कर लिया था, हमने भी यही किया पर आज मैं सोचती हूँ कि उनके दिल पर क्या बीती होगी और तुम्हारे दिल पर क्या बीत रही है। मैं तुम से एक बात कहती हूँ कि यह त्याग नहीं है, कायरता है। राम कायर थे, उन्होंने सीता का परित्याग नही किया था, उन्होंने आत्मविश्वास, साहस और प्रेम का परित्याग किया था, तभी तो आज यह देश सीता के अभाव मे तड़प रहा है।"

कमला चकित-सी शान्त ज्वालामुखी को देखने लगी थी। दीदी उसी उच्छ्वसित वाणी से कहती रही—"रामायण और महाभारत आर्य जाति की गौरव-पताका को दिग्दिगन्त में फहराने वाले महान् ग्रन्थ कहे जाते हैं पर सच यह है कि ये दोना ग्रन्थ इसी पाप की घोषणा करते हैं। सीता के त्याग के बाद ही रामराज्य का अन्त हुआ था और महाभारत के साथ तो भारत की सारी श्री और समृद्धि ही समाप्त हो गई थी। उसका एक मात्र कारण था कुन्ती द्वारा कर्ण का त्याग। इसका अर्थ था माँ के द्वारा बेटे का त्याग। उसी दिन विश्व में कलियुग का आरम्भ हुआ था। हमने अपने चारों ओर ऐसी लाइनें खींच ली हैं जैसी लक्ष्मण ने सीता के चारों ओर खींची थी। वह हमारी जीवन-रेखा है। उसके आगे मौत है ·· ·····"

फिर जैसे सहसा वह चौंक पड़ी हो, बोली—"नहीं, यह मौत नहीं है। यह जीवन है। संघर्ष ही तो जीवन है। शान्ति मौत है। आज मैं इस सत्य को देख रही हूँ, जो मैं उठना है इस लाइन को मिटा डालूँ पर अब क्या है, अब तो मेरे जीवन-सरिता का स्रोत ही सूख गया है। लेकिन कमला, तुम्हारी सरिता में अभी प्रवाह है। तुम्हें संघर्ष करना चाहिए। संघर्ष में शक्ति है, शक्ति में जय है, और जय में जीवन है।"

× × ×

कमला आज ये ही सब बातें सोच रही थी और सोचकर उद्विग्न हो रही थी। उसे लग रहा था कि आज इस बात का निर्णय होना चाहिए। आज उसे अपना रास्ता चुन लेना चाहिए। संकोच सत्य नहीं है।

तभी उसने सुना, "बीबीजी!"

कमला सहमा काँपी, "कौन—धर्मपाल।"

"बीबीजी!"—धर्मपाल अन्दर आ गया। वह उद्विग्न हो रहा था। एकबारगी बोला, "मास्टरजी बेहोश पड़े हैं। बहुत तेज ज्वर है।"

कमला के प्राणों पर चोट पड़ी, "कब से?"

"रात से।"

"पास कोई नहीं है?"

"नहीं।"

"मैं जाती हूँ। तू डाक्टर विश्वनाथ को बुलाकर ले आ। अभी।"

वह सब कुछ भूलकर शीघ्रता से उठी। कपड़े भी नहीं बदले। सामने ताला पड़ा था। उसे उठाकर धर्मपाल को दिया। बोली, "ताला बन्द करते जाना।"

: ६ :

काफी उपचार के बाद कान्त ने आँखें खोलीं। डाक्टर ने कमला से कहा, "इन्हें पूरा आराम चाहिए—शारीरिक और मानसिक दोनों। ये शरीर से अधिक मन के रोगी हैं। आप अभी यहीं ठहरेंगी?"

"जी।"

"ठहरना ही चाहिए। ये अधिक बोलें नहीं। मस्तिष्क थक गया है और हृदय किंचित् दुर्बल है।"

कमला ने पूछा, "ज्वर कैसा है?"

"अभी कुछ नहीं कह सकता। तीव्र मलेरिया लगता है पर मोतीझरा का भय है। दवा भेजूँगा। तीन-तीन घण्टे में दीजियेगा पर सबसे बड़ी दवा वातावरण है। कोशिश कीजिए कि ये शान्त रहे।"

"जी, आप निश्चिन्त रहिए।"

"और देखिए इनकी माँ को तार दे दीजिये।"

"क्या बहुत आवश्यक है? मेरा आशय था कि वे घबरा जायेंगी।"

डाक्टर ने क्षण भर सोचा फिर कहा, "आप चिट्ठी लिख सकती हैं। पर बात यह है कि अपना आदमी अपना होता है और फिर माँ से बढ़कर बेटे के लिए कौन है?"

कमला काँप उठी पर मुस्कराकर बोली, "जी हाँ, यह सारा विश्व माँ की आत्मा का प्रसार है।"

डाक्टर ने दृष्टि उठाकर कमला को देखा। वह कान्त का मित्र था। दोनों एक स्कूल मे वर्षों तक साथ-साथ पढे थे। बस वह एक क्लास पीछे था। पूछ बैठा, "इन्होंने अब तक विवाह क्यों नहीं किया?"

"जी, मैं क्या जानूँ?"

डाक्टर ने कहा, "अच्छी बात है। जैसा आप उचित समझें करें, पर इन्हें पूर्ण विश्राम मिलना चाहिए।"

और वे चले गये। कमला ने धर्मपाल को बुलाकर पूछा, "तुम्हें आज ही जाना है?"

"कल चला जाऊँगा।"

"अच्छा, तो अब दवा ले आ।"

वह मुड़ा, तभी कमला को याद आया, तार देना है। बोली, "धर्मपाल, ठहरना तनिक। एक तार लिखती हूँ। देते आना।"

तार लेकर धर्मपाल चला गया। तब कमला ने देखा—कान्त उसी तरह शिथिल-सा लेटा है। केवल कभी-कभी पलकें उठती हैं और देर तक स्थिर

रहने में असमर्थ फिर गिर जाती हैं। उसने आगे बढ़कर अपना हाथ उसके माथे पर रख दिया। रखे रही। इन क्षणों में युग बीते। धीरे से बोली, "मास्टरजी!"

"..."

"जी कैसा है?"

" "

कान्त की संज्ञा लौट आयी थी। शिला को किसी राम ने छू दिया था पर तो भी उसका भार मन पर पड़ा हुआ था। वह बोल नहीं सका। कई क्षण बीत गये। तब कमला उठी। बोली, "तनिक नीचे जाती हूँ।"

कान्त ने अब भी कुछ जवाब नहीं दिया। वह नीचे चली गई। जीने में उसने देखा पड़ोस की कई नारियाँ चाची के नेतृत्व में उधर ही आ रही हैं। उसने उन्हें हाथ जोड़कर और जहाँ आवश्यक था पैर छूकर प्रणाम किया। चाची ने उसे सिर से पैर तक निहारा, पूछा, "कान्त क्या बहुत बीमार है?"

"जी, जब मैं आई तब बेहोश पड़े थे।"

"हाय! मुझे तो किसी ने कहा तक नहीं। अब कैसा है?"

"होश आ गया है।"

"तू कब आई थी?"

"सवेरे।"

"अपने आप।"

"जी नहीं, धर्मपाल बुला लाया था।"

पीछे से एक दूसरी प्रौढ़ा ने कहा, "उसे हमें खबर देनी चाहिए थी। गली-मुहल्ले की बात थी। अगर कुछ हो जाता तो...!"

"हाँ, सो तो है ही," चाची बोलीं, "और इसकी माँ भी अजीब औरत है। जहाँ जाती है बैठ जाती है।"

तीसरी जो अपेक्षाकृत वृद्धा थी। उसने व्यंग्य किया, "इसमें माँ का क्या

तार का तो नाम भी बुरा है।"

चाची बोली, "सो तो है जी।"

फिर मुड़कर कहा, "क्यों मास्टरनी! अभी तो तुम हो ही।"

"जी! क्या कहूँ, देवी के आने तक मुझे ठहरना ही पड़ेगा।"

"तेरी सास आ गई?"

"जी, आने वाली है।"

"हाय, तो तू अकेली है?"

"जी।"

"बड़ा हिया है तेरा! राम मेरा जाने, मेरे तो अब भी पिरान निकले जा रहे हैं।"

वृद्धा बोली, "यो तो उल्टी बात है। डर तो जवानों को लगना चाहिए।"

प्रौढ़ा विद्रूप से हँसी, "जवानी में कैसा डर? उसमें जोश होता है बुआ।"

"आग लगे ऐसे जोश में।"

"जोश में आग तो लगती ही है।" उसने कहा और मुँह फेरकर हँस पड़ी। कमला फिर भी शान्ति के साथ बातें करती रही। बोली, "चाचीजी! आपको तो कुछ काम करना नहीं पड़ता, यहीं बैठी रहिएगा।"

चाची इसके लिए तैयार नहीं थी। मुड़कर कमला को देखा। इन वाक्यों ने ऊपर की कठोरता को बहुत कुछ कम कर दिया था। बोली, "क्या करूँ मास्टरनीजी, बच्चे जान खाये रहते हैं। तुम जानो बहुओं को कुछ बुद्धि-उद्धि है नहीं। गाँव की गँवारन हैं, फिर भी आऊँगी।"

और वे चली गईं। जाते-जाते प्रौढ़ा ने कहा, "सुना जी, इसे स्कूल से निकाल दिया है।"

"हाँ, कुछ चलन खराब है।"

"होता ही। विधवा अकेली रहकर और क्या बनेगी?"

प्रौढ़ा ने कहा, "मुझे तो उसका यहाँ रहना अच्छा नहीं लगता।"

चाची बोली, "हमें क्या ?"

वृद्धा ने तीव्रता से कहा, "है क्यों नहीं ? हमारी भी बहू-बेटियाँ हैं।"

चाची धीरे से बोली, "उन्हें यहाँ मत आने दो ?"

कमला ने सब कुछ सुन लिया। एक बार तो ऐसा हुआ कि वह अभी भागकर कहीं चली जाये। पर दूसरे ही क्षण उसने अपनी गरदन को जोर से झटका दिया और सोचने से बिल्कुल इन्कार करके रसोईघर में चली गई।

जिस समय धर्मपाल दवा लेकर आया तो अकेला नहीं था। पंडित मेला-राम साथ में थे। सीधे ऊपर पहुँचे। लेकिन कमला को देखकर उनकी तीव्रता पर जैसे अंकुश लग गया। चुपचाप कान्त की परीक्षा करने लगे। हाथ देखा, माथा देखा, फिर कई क्षण मुख पर दृष्टि गड़ाये रहे। कमरे में सन्नाटा गहराता रहा। देख चुके तो वे पीछे लौट गये। देहरी पर आकर उन्होंने कहा, "मैं तुमसे कहता हूँ कि यह आत्महत्या है। भगवान् मेरा जाने इतना विद्वान, इतना समझदार लड़का है पर इतनी सी बात नहीं समझता।"

कमला ने दृष्टि उठाकर एक बार पंडितजी को देख भर लिया। अंकुश अब हट गया था। पंडितजी बोलने लगे। यद्यपि वे वातावरण की कोमलता से प्रभावित थे इसीलिए धीरे-धीरे बोल रहे थे, परन्तु कछुवे की गति की भाँति उनमें विश्राम की सम्भावना नहीं-थी। उन्होंने कहा, "देखो बेटी, एक ज्ञान होता है। एक होता है कर्म। मैं तुमसे कहता हूँ, कि ये जो लोग कहते हैं कि ज्ञान में प्रकाश है, ज्ञान में सुख है, ज्ञान से बन्धन कटते हैं ये सब बड़े भारी धोखेबाज हैं। धोखा बड़ी बुरी वस्तु है। दम्भ से बुरी। दम्भ में आदमी अपने को झुठलाता है परन्तु धोखे में वह अपने साथ विश्व को भी झुठलाता है इसलिए ज्ञान बन्धन है, मुक्ति तो कर्म में है। कर्म अर्थात् ज्ञान का पाचन ज्ञान बन्धन है, ज्ञान का पाचन-शक्ति। कान्त के जीवन की यही ट्रैजेडी है

भगवान् मेरा जाने बहुत बड़ा ज्ञान है इसका। बहुत समझता है, परन्तु यह प्राणायाम की सी बात है। पुस्तक में तुमने पढ़ा होगा कि अलोथी-पलथी मार कर और हाथ से नाक पकड़कर साँस अन्दर खींचना फिर बाहर छोड़ना प्राणायाम है। भगवान् मेरा जाने यही समझ की बात है। प्राणायाम यह नहीं है, यह तो ऐसा ही है जैसे बच्चों को खिलौने देकर बहलाना...।"

यहाँ पंडितजी हँसे फिर बोले, "तुमने भी तो गुड़िया का विवाह रचाया होगा पर वह क्या विवाह होता है। जिस प्रकार आँख बन्द कर लेने पर रात नहीं हो जाती उसी प्रकार नये कपड़े पहनकर बारात चढ़ाने से विवाह नहीं हो जाता। विवाह तो वह जीवन है जिसे उत्सव के बाद स्त्री-पुरुष जीते हैं। इसी तरह प्राणायम जीवन के संघर्ष मे है, जहाँ मनुष्य जूझता है। जब मनुष्य धरती के दुर्गम मार्गों पर बढ़ता है, पर्वतों के शिखर पर ज्ञान की खोज में भटकता है तभी प्राणायाम होता है। ज्ञान भाववाचक नहीं, विज्ञान और भूगर्भ का ठोस ज्ञान। सो ज्ञान की मुक्ति उसके जीने में है। कान्त जानता है कि वर्तमान सरकार की नौकरी पाप है। यह ज्ञान है। परन्तु जानकर भी वह उस ज्ञान को जीतता नहीं, यही अपच है।"

वे फिर हँसे, "और भगवान् मेरा जाने तुम भी समझदार हो, जैसे भोजन के न पचने से शरीर का नाश हो जाता है उसी तरह ज्ञान का अपच आत्मा को खा जाता है। तनिक कान्त के मुख को तो देखो, प्रकाश और सौम्यता का कहीं पता है? हृदय में संघर्ष मचता है तो सौम्यता नष्ट हो जाती है। तब तो पीड़ा झलकती है। यह उस पीड़ा को जानता है इसलिए और त्रस्त है। बाबा तुलसीदास ने लिखा है—"सबसे भले विमूढ जिन्हें न व्यापे जगत् गति"। कान्त से वे निस्संदेह भले हैं पर जग को जिस प्रकार कोरे ज्ञानियों की आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार मूर्खों की भी नहीं है। आवश्यकता उन लोगों की है जो ज्ञान को पचा सकते हैं। जो जानते हैं और जानकर जीते हैं। जो मानते हैं और अपनी मान्यताओं को इस विश्व की विज्ञान-शाला में परखते हैं। विश्व तो विज्ञान-शाला है। यहाँ निरन्तर प्रयोग होते हैं।

प्रयोग असफल भी हो जाते हैं पर असफलता अन्त नहीं है। जो असफलता को अन्त मान लेते हैं वे अज्ञानी हैं। अन्त तो सफलता है। भगवान् मेरा जाने यही बात लोग नहीं समझते। जो आज असफल हैं वे एक दिन सफल होंगे। यह ध्रुव सत्य है क्योंकि प्रयोग कोई निश्चित ठोस वस्तु तो है नहीं कि उसका कोई निश्चित् परिणाम होगा। जो ऐसा मानते हैं वे मूढ हैं। परिणाम का होना ही उसकी सफलता है"

वे फिर हँसे, बोले, "दुनिया यहीं गड़बड़ा जाती है। वह प्रत्येक प्रयोग का अन्त अपनी मान्यता के अनुसार चाहती है। यह तो अपनी मान्यता लादना है और जहाँ लादना है वहाँ प्रयोग नहीं हो सकता।"

कमला अचरज से मोहग्रस्त-सी उनकी बाते सुन रही थी। उसे ऐसा जान पड रहा था जैसे वास्तव में उसके आगे से तिमिराच्छन्न परदे धीरे-धीरे दूर हट रहे हैं। वह प्रकाश मे डूब रही है, उसे सुख पहुँच रहा है। उसने एक बार दृष्टि चुराकर कान्त को देखा भी पर वह उसी तरह शिथिल शान्त लेटा हुआ था। वह काँप उठी। उसने शीघ्रता से दृष्टि हटाकर फिर पंडितजी की ओर देखा। वे पूर्वतः बोल रहे थे। उनके मुख पर कभी गहरी गम्भीरता छा जाती थी, कभी मुस्करा उठते थे। तब वे बाहर छत पर खड़े थे। उनके दोनों हाथ कमर के पीछे थे जिन्हें वे कभी-कभी अपनी बात के समर्थन में आगे ले आते थे। कमला ने आज पहली बार उनको देखने की दृष्टि से देखा—वे सुन्दर नहीं हैं। उनके नेत्रों के नीचे काली छाया गहरी हो उठी है और कपोलों की हड्डियाँ उभर आई हैं।

क्षण भर में विद्युत के समान कमला के मन में उठा—इनके भीतर कहीं गहरी तड़पन हैं। वह तड़पन जो असफलताओं के भय के कारण उत्पन्न हुआ करती है। वे अपने ज्ञान को जानते हैं और जानते हैं कि संसार ने उनका मूल्य नहीं आँका है। इसी वेदना में से वाणी शक्ति ग्रहण करती है। उस शक्ति मे अभय कम, कडुवाहट अधिक है क्योंकि उन्हें सहानुभूति देने वाला कोई नहीं है। पत्नी भी नहीं...।

सोचकर कमला काँपी पर न जाने क्यों वह उनके प्रति एक कोमलता से भर उठी। स्निग्ध वाणी में कहा, "पंडितजी! आपने जो कुछ कहा वह एकान्त सत्य है। दुनिया इस सत्य को नहीं पहचानती इसीलिए यह पाप और पीड़ा है।"

"निस्संदेह," पंडितजी ने गर्व से मुस्कराकर कहा, "निस्संदेह यह ध्रुव सत्य है। भगवान् मेरा जाने, तुम सब समझती हो। दुनिया में तो भेड़ा चाल है। उनकी सब मान्यताएँ, सब सभ्यता, सब संस्कृति इसी भेड़ा चाल का परिणाम है पर मैं जानता हूँ कान्त ऐसा नहीं है। उसमें शक्ति है। उसे शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। उसे विद्रोह करना चाहिए।"

कमल ने धीरे से कहा, "ठीक है पंडितजी। संस्कारों की दासता से मुक्ति पाने के लिए विद्रोह आवश्यक है, नहीं तो यह ज्ञान को नपुंसक बना देगी।"

पंडितजी हर्षित हुए। बोले, "मैं कहता हूँ बना दिया है। दासता पाप है, घृणित है, निन्दनीय है, परन्तु संस्कारो की दासता, यह तो आत्महत्या है, आत्महत्या। भगवान् मेरा जाने तुमने मर्म की बात कही है। गांधी अपने जीवन को सत्य का प्रयोग कहता है, परन्तु मैं कहता हूँ वह संस्कारों का दास है। नहीं तो आज मैं तुमसे कहता हूँ वह बड़ा समझदार है। सत्य को जानता है, पर इस दासता के कारण उसे पूरी तरह जीत नहीं पाता। इसलिए उसके हाथ में यह अमर सत्य एक उपहासास्पद वस्तु बन गया है। वह इस दासता से मुक्त होना चाहता है, पर हो नहीं पाता। जिस दिन हो सकेगा उस दिन वह विश्व को मुक्त कर देगा। इसमे उस बेचारे का अपराध नहीं है, क्योंकि शक्ति, ज्ञान, तपस्या ये सब इस दासता से मुक्ति दिलाने में असमर्थ हैं। यह शक्ति मिलती है विश्वास के खण्ड-खण्ड हो जाने के बाद। एक बात और कहता हूँ। विश्वास का यह खण्डन उसको जीने में ही है यानी उसे पचा जाने में। मैंने यही बात गांधी को लिखी थी...।"

इसी समय कान्त ने आँखें खोलीं, एक बार चारों ओर देखा, कमला को

देखा, कई क्षण देखता रहा। फिर पण्डितजी पर दृष्टि गई। वह मुस्कराया। पण्डितजी आगे आ गये। बोले, "क्यो भाई! क्या हाल है?"

"ठीक हूँ।"

"देखो भई कान्त! तुम्हे समझना चाहिए। भगवान् मेरा जाने ..भई क्या कहूँ? तुम पर दया आती है ..अच्छा अब तो तुम्हें शान्ति की आवश्यकता है। पर भई! समस्या केवल शान्ति से ही हल होने वाली नहीं है। दवा से बीमारी दूर नहीं होती, रुक जाती है और तुम जानते हो रुकना बुरा होता है। इससे उसकी जकड़ तेज होती है क्योंकि वह घर देख लेती है।"

कान्त ने कुछ उत्तर नहीं दिया, केवल देखता ही रहा। पण्डितजी ने कहा, "अच्छा अब तो जाता हूँ, कोई काम हो तो कहना।"

वे मुड़े, पर जीने में आकर कुछ याद आ गया। वहीं से बोले, "भई, रामायण पढ़ने में कुछ असुविधा हो तो न पढ़ूँ। वैसे रामायण का नाम तरणतारण है।"

कमला कृतज्ञ हुई, झिझकी भी, धीरे से कहा, "आज तनिक धीरे-धीरे पढ लें तो..।"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, आज मै मनन करूँगा।"

कहकर वह शीघ्रता से पैड़ियाँ उतर गये। कमला फिर चुपचाप कान्त के पास आ बैठी। उसके वस्त्र ठीक किये। हाथ देखा, मस्तक का ताप देखा, सब देख चुकी तो पूछा, "अब जी कैसा है?"

कान्त ने धीरे से कहा, "ठीक है।"

फिर सन्नाटा! सन्नाटा ऊपर से जितना शान्त रहता है अन्दर से उतना ही गहर-गहरकर बोलता है। विचार घुटते हैं जैसे छाती पर पत्थर की शिला रख दी हो। कुछ लोगों को इस घुटन में रस आता है। सिगरेट का धुआँ जिस समय हृदय को काला करता है, उसी समय पीने वाले को सुख मिलता है। वह सुख पीड़ा नहीं पहुँचाता, केवल जीवन के क्षणों को खाता है

सहसा कमला ने पूछा, "चाय पियोगे?"

कान्त हठात् चौंक पड़ा। वह तब अर्द्धचेतना से भी दूर चला गया था। लौटने में पीड़ा हुई। उसने सहसा कोई उत्तर नहीं दिया। केवल कमला की ओर दृष्टि घुमाकर देखा। कुछ क्षण देख लेने के बाद कहा, "कमला! तुम चली जाओ।"

कमला मुस्करा उठी, "यह बात क्या अभी सोचने की है?"

"हाँ।"

कमला बड़ी कठिनता से अपने को सँभाल सकी। बोली, "तुम्हे इस तरह छोड़कर नहीं जा सकूँगी।"

"कमला!"

"नहीं जाऊँगी, मास्टर जी! यह मुझसे नहीं होगा। आत्महत्या बहुत बुरी चीज है।"

कान्त फिर मौन रह गया। कमला देखती तो जानती कि अपने को सँभालने में उसे अनथक परिश्रम करना पड़ रहा है, लेकिन उसने उस ओर ध्यान नहीं दिया। वह कटोरी में दवा ले आई। चुपचाप कान्त को सहारा देकर उठाया और कटोरी मुँह से लगा दी। पी चुका तो मुँह पोंछकर उसी तरह लिटा दिया। धर्मपाल को बुलाकर कहा, "चाय बना लो।"

तब दोपहर हो चुकी थी। वातावरण में गरमी बढ़ने लगी थी। आशा थी फिर वर्षा होगी, परन्तु इस देश में यह आशा बहुधा मृग-तृष्णा बनकर रह जाती है। लेकिन उस दिन ऐसा कुछ हुआ, आशा ही बन गई। देखते-देखते वायु जल के बोझ से बोझिल हो उठी। उस बोझ को मानव ने सुख कर के लिया। उसकी आशा फूली। नन्हीं-नन्हीं बूँदें पड़ने लगीं। फिर शिशु की अठखेलियाँ कुमार की चपलता में पलट गई। कुछ देर तक वे इसी प्रकार मचलती रहीं और फिर अचानक यौवन का तूफान उठा, धुआँधार मेंह बरसने लगा। वातावरण जल-वाष्प से आच्छादित हो गया। बिजली चमकने लगी और बादल कड़कने लगे। अन्धकार को बल मिला और हृदय एक

अज्ञात भय से दब-सा गया। विचार उठा कि क्या द्वापर की कथा की पुनरावृत्ति होने वाली है।

क्षण बीते। कमला को लगा कि बूँदें उसके ऊपर भी आ गिरी हैं। दृष्टि उठाकर देखा तो छत टपक रही थी। वह तब पट्टी पर सिर रखे कान्त का माथा सहला रही थी। उठी और चारपाई को सुरक्षित स्थान पर खींच दिया, फिर चादर ठीक करके कान्त के चारों ओर लपेट दी। कान्त चुपचाप लेटा रहा, शिथिल और त्रस्त। एक बार धीरे से पूछा, "धर्मपाल कहाँ गया?"

"नीचे है।"

फिर वही मौन, वही वर्षा का भीषण रौरव। कान्त को कँपकँपी आने लगी। कमला ने शीघ्रता से हाथ देखा। वह प्रायः ठण्डा था। वह शीघ्रता से लिहाफ उठा लाई। ओढाकर बोली, "और चाहिए!"

कान्त काँपता, किटकिटाता और कराहता रहा। बोला नहीं। कमला ने उसे दोनों हाथों से दबा दिया, बहुत देर तक दबाए रही। धीरे-धीरे कँपकँपी कम हुई और ताप बढने लगा। कुछ क्षण में ही शरीर तवे की भाँति जलने लगा। लिहाफ उतार डाला। कम्बल को अच्छी तरह लपेट दिया। वर्षा उसी तरह पड़ रही थी। संध्या गहरी हो उठी। धर्मपाल से पूछा, "दवा क्या जाड़ा चढ़ने पर भी देनी है?"

"जीहाँ, बराबर देनी है। कहा था कि जरूरत हो तो संध्या को खबर देना।"

"लेकिन अब तो . ।"

"मैं जा सकता हूँ।"

कमला का मन दुविधा में फँस गया। वर्षा का प्रकोप बढ़ रहा था और कान्त की पीड़ा भी। रात सामने थी, उसने शीघ्रता से कहा, "तुम जाकर डाक्टर से कहो कि जाड़ा देकर ज्वर बहुत तेज हो गया है।"

"मै अभी जाता हूँ।"

धर्मपाल चला गया। कमला कान्त की ओर मुड़ी। उसका शरीर ज्वाला

उगल रहा था। आँखें प्रायः बन्द थीं। उसमें चेतना थी भी और नहीं भी थी। वह कुछ कहना चाहता था, परन्तु क्या? यह वह स्वयं भी नहीं जानता था। उसकी चेतना मात्र घडी की टिकटिक थी जो एक लय, एक गति के साथ अनवरत शब्द पैदा करती है, परन्तु स्वयं उसका कोई अर्थ नहीं समझती। वह तब चेतन होकर भी अचेतन था, पर वही चेतना कमला के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन रही थी। उसने सब खिडकियाँ बन्द कर दीं, लैम्प का प्रकाश तेज कर दिया। देखा धीरे-धीरे छत का आधा भाग टपकने लगा है। समूचे कमरे में अब मात्र कोना शेष था। जहाँ वह शांति से बैठ सकती थी। नीचे प्रायः सब कमरे द्वार-हीन थे, जहाँ जलवायु मुक्त और निद्वन्द्व प्रवेश कर सकते थे। ऊपर का दूसरा कमरा जलमय था। तब वह दो बड़ी खाटें ले आई। दोनों को मिलाकर कान्त के पलँग के ऊपर इस प्रकार खड़ा कर दिया जिससे छत से टपकता हुआ पानी उस पर न गिरे। फिर उनके ऊपर कम्बल डालकर उसे एक झोंपड़ी में परिवर्तित कर दिया। कमरे में झोंपड़ी, वह खुद मुस्करा पड़ी। और चुपचाप कान्त के पास बैठकर उसका सिर दबाने लगी। धीरे-धीरे सध्या सघन रात्रि में बदल गई। आज की रात्रि मौन नहीं थी। वर्षा उसका स्वर बनकर प्राणियों को भयातुर कर रही थी। तभी धर्मपाल लौट आया। कम्बल और छतरी के बावजूद वह पूरी तरह भीग चुका था। बोला, "डाक्टर साहब ने छाती पर मलने को तेल दिया है। दो गोलियाँ हैं, जो अभी खानी हैं। पहली दवा उसी तरह देनी है।"

कान्त को दवा तथा चाय पिलाकर उसने अपना खाना ऊपर ही मँगा लिया। फिर धर्मपाल के लिए नीचे दलहीज में व्यवस्था करके कान्त के पास आ बैठी। पानी का शब्द धीमा हो रहा था और उसी को चीरकर कभी-कभी पड़ोस से बरतन खटकने का शब्द पानी के ऊपर उठ आता था। उनकी छत बराबर टपक रही थी। टप-टप-टप... और कान्त बीच में 'हाय माँ' 'ओ माँ' पुकार उठता था। कमला तब दोनों हाथों से छाती को सहलाती और कहती—'मास्टरजी, मास्टर जी... !' उत्तर में यही 'मास्टरजी'

शब्द हथौड़े की भाँति उसकी अपनी छाती पर पड़ता। सहसा बेचैन होकर कान्त पुकार उठा, "ओ माँ, तुम कहाँ हो?"

कमला ने कोमल स्वर में कहा, "मास्टरजी!"

कान्त ने फिर उसी तरह पुकारा, "ओ माँ, माँ आ..."

और वह चीत्कार कर उठा। कमला को एकाएक कुछ नहीं सूझा। वह कान्त के पास लेट गई। अपना हाथ उसकी गरदन के नीचे देकर उसे अपने से सटा लिया। उसने अनुभव किया कि कान्त की गरम-गरम उसाँस उसे झुलसा रही है और उसकी छाती की धड़कन, उसके अपने हृदय की धड़कन से मिल कर तूफान की गति पैदा कर रही है। कान्त ने फिर पुकारा, "माँ, माँ, तुम कहाँ हो?"

कमला ने उसे और भी समीप खींच लिया। उसके मुँह पर अपना मुँह रखकर बोली, "कान्त! क्या बात है, आँखें खोलो। देखो, यह मैं हूँ।"

कान्त ने कोई जबाब नहीं दिया।

अचेतन अवस्था में व्यक्ति माँ को क्यों पुकारता है? क्या माँ के अतिरिक्त और सब कुछ असत्य है। सोचकर कमला आपाद मस्तक सिहर उठी। उसने पैरों को इस प्रकार समेटा कि वे गोदी में आ गये, मानो माँ ने माँ को अपने में समेट लेना चाहा, मानो विश्व मे दो कहीं नहीं है, सब एक रूप है, केवल एक...

कान्त धीरे से अर्धचेतनावस्था में बोला, "माँ!"

"कान्त...।"

फिर मौन! फिर मौन की सहस्र जिह्वाओं का समवेत स्वर, फिर एक भूकम्प, एक गहरा कम्पन! कोई तीव्रता से चीखा, "हाय...आ हाय..."

और उस हाय को कुचलता हुआ एक रौरव शब्द उठा, "बता हराम-जादी, बता। वरना मैं तुझे अभी ठीक करता हूँ। बड़ी डायन है। मरती नहीं।"

फिर बाँस का शब्द उठा। नारी स्वर चीत्कार उठा, "हाय, हाय रे हाय

मार डाला, ओ माँ...? ओ माँ ...”

कान्त ने सहसा काँपकर चीत्कार किया, “क्या है यह ?”

“कुछ नहीं, कुछ भी नहीं, आप शायद स्वप्न देख रहे हैं ......”

फिर क्षणिक शान्ति। फिर वेदना की पुकार। बाँस की एक अनवरत शब्द लहरी। रुदन की भीषणता। कान्त ने आँखें खोल दीं, “कौन ? कौन रोता है यह।”

कमला का रोम रोम मसोस रहा था। उसने अपना सिर उसकी छाती पर रखकर आर्तता से कहा, “कहीं कुछ नहीं है, आप सो रहिये।”

कान्त की चेतना लौट रही थी। वह त्रस्त थी, क्षीण थी, पर चेतना थी। उसने हाथ उठाया और कमला के शरीर को, मुख को अनुभव किया। फिर अर्द्ध-विक्षिप्त की भाँति कहा, “कमला !”

“जी।”

“यह तुम हो, तुम रोती हो ?”

“जी-नहीं, मैं नहीं रोती।”

“तो...।”

“पता नहीं।”

पर शब्द बराबर उठ रहा था। तभी जाना पण्डितजी तेजी से उठे और घूमने लगे, पर जब रुदन नहीं रुका तो ऊँचे स्वर में रामायण पढ़ने लगे। “जहँ सुमति तहँ सम्पति नाना, जहँ कुमति तहँ विपति निदाना।”

हाय ! हाय !! का शब्द अभी तक रुदन के बीच में फूट पड़ता था। दूसरे शब्द भी, जो गन्दे और घृणा से पूर्ण थे रह रह कर कानों से आ टकराते थे, “बोल ! अब मारेगी ! मारेगी !! हरामजादी तुझे क्या हक था बेटे को मारने का, बड़ी माँ बनती है जान से मार डालूँगा। बोल।”

और बाँस का चिरपरचित स्वर...

और नारी का गहन चीत्कार—“हाय मर गई ! मैं मर गई रेऽऽऽ”

बस बेटा, बस भाई साहब, बस हट जाओ, मैं इसे मार डालूँगा, भाई

साहब...।"

किसी को खींचने और घसीटने का शब्द आया, गालियाँ धीमी पड़ीं, रुदन सिसकियों में पलट गया, वे सिसकियाँ जो छाती में हूक बनकर रम जाती हैं। पण्डितजी रामायण पढ़ते रहे। कान्त ने फिर घबराकर पूछा, "कमला! कौन रोता है?"

कमला के मुँह से निकल गया, "सामने वाली चाची की बड़ी बहू।"

"कौन! कृष्णदत्त की बहू?"

"जी।"

"कोई मर गया क्या?"

"जी पता नहीं, आप सो जाइये।"

"उसका लडका मर गया होगा। उसके लड़के बहुत मरते हैं।"

"आप सो जाइये।"

फिर गहरा सन्नाटा, केवल बीच-बीच में सिसकियों का धीमा स्वर, फिर धीमी ताड़ना, "हरामजादी! चुप होकर सो ना। रोकर क्यों यारों को जगाती है।"

कमला की छाती पर किसी ने पत्थर दे मारा, वह तिलमिला उठी। कान्त का शरीर अभी तक भट्ठी की भाँति तप रहा था। कमला सहसा उठी और उसके पैर के तलुए सहलाने लगी। छत अभी तक टपक रही थी। टप-टप-टप! और सामने बहू उसी तरह सिसक रही थी। पानी की एक बूँद टपकी...शान्ति। एक सिसकी फूटी...शान्ति। कान्त ने गहरा कर पुकारा, "तुम कहाँ हो?" ··· शान्ति। तब कमला को लगा कि वह अस्तित्वहीन है।

: १० :

प्रकाश फूटा, आकाश मेघरहित था। कहीं-कहीं कोई भूला-भटका बादल शान्त मन लेटा था। नीचे पृथ्वी जलमग्न थी, वायु शीतल, वृक्ष हरित आनन्द विभोर। कमला ने देखा कमरे में पानी भरा है परन्तु टपकना बन्द हो चुका है। कान्त पहिले की भाँति प्रायः संज्ञाहीन है। वह नीचे गई। धर्मपाल जाने की तैयारी कर रहा था। पूछा, "क्या हाल है ?"

"वैसे ही है," कमला ने जवाब दिया और कहा, "तुम जा रहे हो ?"

उसने सिर झुका लिया। कमला बोली, "अच्छी बात है, पर जाने से पहिले डाक्टर को आने को कहते जाओ।" और लौटकर घर का काम देखने लगी। तभी ऊपर आहट सुनी। कोई धम्म से कूदा। वह जानती थी, पंडित जी हैं। कहीं बोलने न लगें। शीघ्रता से ऊपर गई। वे चुपचाप कान्त को देख रहे थे। बोले, "भई ! इसे तो बहुत तेज ज्वर है।"

"जी रात भर भुनते रहे।"

"तो तार देना चाहिए।"

"देवीकान्त को तार दिया था, पर वह नहीं आया। न जाने क्या बात है ? गाड़ी तो आ चुकी है ?"

"डाक्टर के पास जाऊँ।"

"अभी तो धर्मपाल गया है। पर आज यदि आप दवा ला दें तो बड़ी कृपा होगी।"

पण्डितजी हँस पड़े, "इसमें कृपा की क्या बात है ? भगवान् मेरा जाने, कान्त इतना समझदार है, पर न जाने क्यों आत्म-हत्या पर तुला है। रात की बात तो तुम जानती हो, वे सब लोग मूर्ख हैं। मारते हैं। मार खाते हैं, और जीते हैं। मैं कहता हूँ कि एक बार भी उस नारी के मन में यह ज्ञान पैदा हो जाय कि उस पर अत्याचार हो रहा है, तो वह इन सब को मारकर घर से निकाल दे। उसका स्वास्थ्य देखा है, उन तीनों से भारी है। भगवान्

मेरा जाने, रात जी में उठ रहा था कि उन्हें अभी शर्मिन्दा करूँ,पर वह तो यह बात है, वे कह देते—तुम हमारे बीच में बोलने वाले कौन होते हो ?' वे लोग स्त्री को अपनी सम्पत्ति समझते हैं।"

कमला के कान पण्डितजी की ओर थे, दृष्टि कान्त की ओर। देखा कान्त की चेतना लौट रही है। पण्डितजी ने मुस्कराते हुए पूछा, "क्यों भाई, क्या हाल है ?"

कान्त के मुख पर निस्तेज पीली मुस्कराहट की एक रेखा खिच गई। शब्दों की एक हल्की ध्वनि उठी, "प्राण खिंच रहे हैं।"

"तो भई ! माँ को बुला लाऊँ ? मैं जा सकता हूँ।"

"नही पण्डितजी ! ठीक हो जायेगा।"

पण्डितजी बोले, "ठीक तो हो ही जायेगा पर......।"

पर वे सँभल गये, "अच्छा भई ! कोई बाजार का काम हो तो बता देना। दवा मैं ले आऊँगा।"

वे मुड़े, बाहिर आकर कमला को संकेत से बुलाया। कहा, "मैं इसकी माँ को तार दे रहा हूँ। न जाने कल को दुनिया क्या कहे ?"

कहकर वे रुके नहीं, चले गये। कमला मुस्कराई, "दुनिया के भय से कोई मुक्त नहीं। दुनिया क्या कहेगी ? दुनिया क्या कहती मन कहता है।"

सहसा नीचे खड़-खड़ हुई। धर्मपाल डाक्टर को लेकर लौट आया। डाक्टर ने सदा की भाँति पूछा, "कहो क्या हाल है ? सुना रात बड़ा कष्ट रहा।"

"जी रात तो ये तड़पते रहे।"

"मैं जानता हूँ। जब ये बीमार होते हैं तो ऐसे ही होते हैं। पर डरने की बात नहीं है। थकान है, आराम चाहिए। काम भी क्या कम करते हैं ? अध्ययन, साहित्य-सेवा और वह भी इस क्लर्की के साथ।"

वे बोल रहे थे और परीक्षा कर रहे थे। ताप १०२° था। स्टेथस्कोप

निकाला। छाती देखी, कमर देखी, फिर नेत्रों की परीक्षा की, कहा, ज्वर आज अवश्य उतर जायेगा। दवा मँगवा लीजिये।"

फिर पूछा, "कोई आया है?"

"जी अभी तो नहीं।"

"आना चाहिए। आप कब तक..."

तभी नीचे से किसी ने पुकारा, "बाबू निशिकान्त!"

लखनऊ से देवी का तार आया था। लिखा था, "मैं कल यहाँ आया था, तार यहीं मिला। माँ ज्वर में है। मैं कल सवेरे पहुँच रहा हूँ।"

डाक्टर मुस्कराया, "तब तो आपको अभी ठहरना होगा?"

कमला धीरे से बोली, "मैं तो अभी यही हूँ।"

डाक्टर कुछ कहते-कहते रुक गये। बोले, "तो मैं जाऊँ? धर्मपाल को भेज दीजिये।"

"जी वह तो जा रहा है। पण्डितजी आयेंगे।"

डाक्टर फिर झिझका। एक-दो क्षण शून्य में ताकता रहा। फिर कमला की ओर मुड़कर कहा, "आपके बारे में बड़ी अफवाहें उड़ रही हैं।"

कमला न काँपी, न सिहरी। बोली, "वह तो मैं जानती हूँ। चरित्रहीन कहकर मुझे स्कूल से निकाल दिया गया है। फिर यह भी सुना है कि मैं मुसलमान होने वाली हूँ।"

डाक्टर ने अचरज से कमला को देखा। कहा, "मैं समझता हूँ कि यह सब झूठ है।"

"क्या मुझे कहना पड़ेगा?"

डाक्टर शायद इस प्रश्न के लिए तैयार न थे। बोले, "मैं जानता हूँ।" और वे मुड़े, "संध्या को मैं आऊँगा, चिन्ता मत करना।"

वे चले गये। नीचे आकर कमला ने देखा—धर्मपाल तैयार खड़ा है।

बोला, "मैं जा रहा हूँ। जल्दी से जल्दी इधर से लौटूँगा। तब तक मास्टरजी ठीक हो जायँगे। पर वे मेरे साथ चल तो सकेंगे नहीं।"

"नहीं।"

"हाँ, वे बहुत कमजोर हैं, पर आप तो चलेंगी। कुमार बाबू ने कहा था।"

"क्या कहा था?"

"कि आपको मेरे साथ चलना है।"

कमला ने कहा, "आओगे तो देखूँगी। अभी मास्टरजी के घर के लोग नहीं आये हैं।"

धर्मपाल प्रणाम करके चला गया। कमला ऊपर आ गई। वह अब अकेली थी। पर अकेलेपन का भय अब उसे त्रस्त नहीं करता जान पड़ रहा था। देखा, "कान्त आँखें खोले लेटा है। पास जाकर माथे पर हाथ रखा, फिर पूछा, "अब जी कैसा है?"

कान्त ने पूछा, "कमला, रात कौन रोता था?"

"कृष्णदत्त की बहू।"

"कृष्णदत्त ने पीटा था?"

"हाँ।"

साँस लेकर कान्त ने धीरे से कहा, "ये लोग स्त्री को पीटते हैं।"

कमला मुस्कराई, "प्यार करते हैं, तभी पीटते हैं।"

कान्त ने दृष्टि उठाई, "इन लाखों वर्षों में क्या मनुष्य ने अभी तक पीट कर ही प्यार करना सीखा है?"

कमला ने बालों में उँगली फिराते-फिराते कहा, "जिसे प्यार करते हैं, उसे वे अपनी सम्पत्ति समझते हैं। अपनी सम्पत्ति को कोई कैसे रखे, आप उसकी चिन्ता क्यों करते हैं?"

"परन्तु कमला! मनुष्य व्यक्ति ही नहीं, समाज की इकाई भी है।"

"ठीक है पर ये बातें फिर भी हो सकती हैं।"

"नहीं कमला, उसे विद्रोह करना चाहिए।"

धीरे से कमला ने फिर कहा, "आप चुप रहे, ज्वर उतर रहा है। शिथिलता बढ़ जायेगी। विद्रोह की चिंता मत कीजिये। वह बराबर हो रहा है।"

और कहकर वह चुपचाप सिर दबाने लगी। कान्त ने नेत्र मूँद लिये पर कुछ क्षण बीते, वह फिर बोला, "कमला, धर्मपाल गया?"

"जी।"

"मैंने तुम्हे बहुत कष्ट दिया। मैं समझता था...।"

"देखिये डाक्टर साहब ने बोलने से मना किया है। आप हैं कि बोले चले जा रहे हैं।"

"दम घुट रहा है।"

"तभी तो संयम की आवश्यकता है।"

"संयम ढोंग है।"

"देखिये, आप चुप नहीं हो रहे हैं। मैं चली जाऊँगी।"

कान्त ने साँस खींची। मन में कुछ कहने को उठा पर वह कह न सका। तभी नीचे किसी के आने की आहट मिली। कमला ने झाँककर देखा, "ममता है।"

वह शीघ्रता से नीचे आई, बोली, "तुम!"

ममता विद्रूप से बोली, "तो आप नर्स बनी हैं।"

"जी।"

"धन्धा बुरा नहीं है।"

कमला ने कहा, "आते ही यह युद्ध! आखिर क्या हुआ?"

"होता क्या, तुम्हारी पड़ोसिन चिल्ला-चिल्लाकर कह रही है, 'देखा आखिर, कमला भाग गई। वह मुसलमान का लड़का जो हिन्दू हुआ था, रात आया था, उसी के साथ गई है।' मैंने सुना तो तुम्हारे घर गई। ताला बन्द था। किवाड़ों में एक कार्ड लगा था। क्षमा करना, तुम्हारा पता जानने

के लिए उसे पढ़ लिया। तुम्हारे पिता का पत्र है। तुम्हारी माता का देहान्त हो गया है।"

कमला ने शान्त मन कहा, "मेरी माता तो कभी की मर चुकीं। वह तो मेरे पिता की पत्नी हैं।"

"विमाता?"

"हाँ।"

और उसने पत्र लेकर पढ़ा। लिखा था—

प्यारी बेटी,

तुम्हें जानकर दुःख होगा कि तुम्हारी माता जी का परसों संध्या को पाँच बजे देहान्त हो गया। भगवान् की जो इच्छा।

और इधर तबादला भी मेरा वहीं का हो गया है। तुम्हारी माता की मृत्यु के कारण एक माह के लिए रुक गया हूँ।

मैं तुम्हें कुछ कहने का अधिकारी तो नहीं हूँ, पर छोटे भाई-बहनों का ध्यान करके आ सको तो तुम्हारा पिता आभारी होगा।

तुम्हारा

....

कमला ने पत्र पढ़ लिया और फिर बोली, "हाँ तो ममता! तुमने सुना कि कमला भाग गई। फिर यहाँ कैसे आईं?"

ममता ने कहा, "न जाने कैसे मुझे लगा कि तुम्हारा पता यहीं पर मालूम हो सकता है।"

"पर मेरा पता लगाने की तुम्हें आवश्यकता क्या थी?"

"पता नहीं।"

"जिस बात का पता नहीं उसकी इतनी चिन्ता?"

ममता ने धीरे से कहा, "चिन्ता उसी की होती है जिसका पता नहीं होता।"

कमला फिर हँसी, "तो अब?"

"अब सब ठीक है। शायद कल तक चली जाऊँगी।"

"सच ।"

"हाँ, पत्र आया है !"

"तब तो बड़ी प्रसन्नता की बात है, पर अब क्या तनिक भी नहीं बैठोगी ?"

ममता मुस्कराई, "बैठूँगी तो तुम्हारे रोगी की हानि होगी ।"

कमला हँस पड़ी, पर वह कुछ कहती कि सामने वाली चाची ने वहाँ प्रवेश किया । आते ही बोली, "कोई आया, मास्टरनी ?"

"जी कल सवेरे देवीकान्त आ रहा है ।"

"और इसकी माँ ।"

"वे बीमार हैं ।"

"क्या आग लगती है बीमारी में, बुढ़िया है । बेटा यहाँ अकेला पड़ा है ।. ना बाबा, ये नई रोशनी के छोकरे । भगवान् बचाये । क्या हाल है उसका ?"

"जी, रात भर तो बुरा हाल रहा । अब कुछ शान्ति है ।"

"तू रात भर उसके पास रही ?"

"जी हाँ ।"

"और वह धर्मपाल ?"

"अभी गया है ।"

"अब तू अकेली है ?"

"जीहाँ ।"

"ना मास्टरनी ! तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिए । रात भी नहीं रहना चाहिए था ।"

कमला ने कुछ जवाब नहीं दिया । ममता को यह बात बहुत बुरी लगी, पर उसने देखा कमला पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । चाची फिर बोली, "यह कौन है ?"

"बाबू रामकिशोर वकील की पुत्री ममता ।"

"ओहो," चाची ने किंचित् मुस्कराकर कहा, "वकील साहब की छोकरी । कालेज में पढ़ी है। क्यों री, अब तो तेरा विवाह हो गया है ।"

"जी ।"

"दिल्ली ?"

"जी ।"

"क्या करे है ?"

"प्रोफेसर हैं ।"

"मास्टरनी से तेरी भी दोस्ती है ?"

ममता के मुँह पर जवाब आते-आते रह गया। तभी बाहर से कोई तेजी से आया और बिजली की भाँति चमककर लौट गया । चाची ने चौंककर देखा और तीव्रता से बाहिर चली गई। सुना, वह कह रही थी, "चुड़ैल, यहाँ आई है। पैर नहीं तोड़ दूँगी। हाय रे, कैसी निर्लज्ज औरत है। रात इतनी पीटी फिर भी..."

और आगे के शब्द किवाड़ों के पीछे जाकर विलुप्त हो गये। ममता ने अचरज से कमला को देखा। कमला हँस पडी। बोली, "देखा ?"

"तुम यहाँ रहोगी ?"

"नि स्संदेह ।"

"पिता के पास नहीं जाओगी ?"

"नहीं ।"

ममता ने धीरे से कहा, "ये तुम्हें रहने देंगी ?"

"नहीं रहने देना चाहतीं इसी कारण रहने की इच्छा तीव्रतर होती जा रही है। बीती रात एक दहशत की रात थी। भीषण वर्षा, तीव्र ज्वर और एक बेबस नारी का करुण क्रन्दन ।"

"बेबस नारी ...।"

"हाँ, वही बहू जो अभी आई थी। रात इस चाची और इसके दोनों

बेटों ने उसे बाँसों से पीटा।"

ममता काँप उठी, "और वह कुछ न बोली।"

"बोली क्यों नहीं, उसके चीत्कार से सारा मुहल्ला काँप उठा था। ...पूछो कोई मुहल्ले वाला बोला था।"

"बोला तो होगा ही।"

"सब मौन रहे, केवल पण्डितजी बोले थे।"

"क्या।"

"चीत्कार सुनकर उन्होंने ऊँचे स्वर में रामायण की चौपाई पढ़नी शुरू कर दी।"

ममता विद्रूप से बोली, "जानवर।"

"जानवर," कमला हँसी, "तुम भूलती हो ममता! जानवर केवल बहू है, जो शब्द करना जानती है, बोलना नहीं। जो बोल नहीं सकता, वह जड़ सम्पत्ति की भाँति स्वामी के अधिकार की वस्तु है।"

फिर जैसे कुछ ध्यान आया। बोली, "ऊपर चलो।"

"नहीं भाभी। मैं अब जाऊँगी।"

"पर जाने से पहले मिलोगी तो ...।"

"हाँ एक बार आऊँगी।"

"उनके साथ आना।"

"अच्छा।"

"दोनों हँस पड़ीं। ममता ने मुड़ते-मुड़ते कहा, "मैं चाहती हूँ कि तुम अब वहाँ न लौटो।"

कमला बिना कुछ कहे ऊपर चली गई। पण्डितजी दवा रख गये थे। पूछा, "पण्डितजी कुछ कहते थे क्या?"

कान्त ने कोई उत्तर नहीं दिया।"

कमला और पास आ गई। देखा, वह रो रहा है।

उसका हृदय धक-धक करने लगा। उसने उसका हाथ मुँह पर से हटाया।

बोली, "आप रोते हैं, क्यों ? नहीं, नहीं, शान्त होइये ।"

लेकिन कान्त और भी तीव्रता से रोने लगा । उसकी हिडकियाँ बँध गई । कमला घबराई तो, पर उसने कान्त को सँभाला। बोली, "सुनिये तो। आप रो क्यों रहे हैं ? आप तो पुरुष हैं। छीः छीः पुरुष होकर .."

लेकिन हिड़कियाँ तीव्र होती चली गईं। तीव्र से तीव्रतर और फिर तीव्रतम ।

कमला ने व्यग्र होकर पुकारा, "आपको मेरी सौगन्ध आप सुनें तो, आप ठीक हो जायँगे। कल देवीकान्त आ रहा है । माताजी भी आ जायेंगी। आप इस तरह दुखी क्यों होते हैं ? आप तो इतने समझदार हैं।"

लेकिन कान्त का रुदन नहीं रुका । अस्फुट स्वर में बोलते-बोलते वह सुबकियाँ लेता रहा । कमला ने तब उसे अपने बहुत पास खींच लिया था वह उसके हृदय को दबा रही थी। और सोच रही थी—"हाय रे अबोध कान्त !हाय रे शिशु ।"

सोचते सोचते कमला की आँखों में गरम-गरम जल की दो बूँदें उमड़ीं और कान्त के ठण्डे आँसुओं में जा मिलीं । वह जोर से सुबका, फिर गहरी शान्ति छा गई । उसके नेत्र मुँद गये । कमला ने देखा—निस्तेज मुख पर आँसुओं की असंख्य धारायें चमक आई हैं । वह उस अबोध-शिशु की भाँति पड़ा है, जो अपनी माँ से बिछुड़ गया है, और जिसे राह का तनिक भी ज्ञान नहीं है ।

वह कई क्षण उसे देखती रही, सोचती रही—जो इतना ज्ञानी है वह इतना कायर क्यों है । क्यों जो सबको सहानुभूति देता है स्वयं इतना कदर्य है ?

तभी सहसा कान्त ने आँखें खोल दीं। कमला ने पूछा, "तो मन अब शान्त है ?"

कान्त बोला नहीं, केवल देखता रहा। कमला धीरे से बोली, "अभी आपकी एक कहानी पढ़ी थी। उसमें आपने लिखा है, स्वीकारोक्ति में यदि दम्भ नहीं है तो वह मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है । क्योंकि जो अपने को जानता है वह सबको जानता है और उस सुप्रसिद्ध लोकोक्ति के

अनुसार, जो सबको जानता है वह सबको क्षमा कर देता है।"

कान्त के मुख पर एक फीकी-सी मुस्कराहट आई, मानो जलहीन बादल में बिजली कौंध गई।

कमला ने पूछा, "अच्छा एक बात बताओगे, ?"

"क्या ?"

"आपका ज्ञान व्यापक है। आप इतना लिखते हैं। क्या है, क्या होना चाहिए, सब कुछ बताते हैं। क्रांति आपको प्रिय है, पर ये सब बातें आपके जीवन में कहीं नहीं हैं। छाया भी नहीं है, क्यों ?"

कान्त झिझका नहीं, पर कई क्षण तक वह अपने में डूबा रहा। फिर बोला, "कमला! तुम्हारा प्रश्न सत्य है। जो लेखन में है, वह जीवन में नहीं होता। मैं उसे इस तरह कहूँगा, जो जीवन में नहीं होता वही तो लिखा जाता है।"

"उससे लोभ ?"

"यही कि मनुष्य अपने हृदय में जलती हुई अग्नि को शान्त कर ले।

"या कि अपने हृदय में दहकती हुई अग्नि को दूसरों के जोवन में दहका दे। संसार जिसे तुम्हारी शक्ति कहता है, वही तुम्हारी कायरता है। इसी कायरता को साहित्य में 'देन' की संज्ञा मिलती है।"

"देन नहीं कमला, इसे दम्भ कहना चाहिए। लेखक अपने दम्भ को शब्दो की आड़ में छिपाना चाहता है। वह कैफियत देकर अपनी मुक्ति चाहता है।"

कमला ने कहा, "पर वह धोखेबाजी है। दम्भ से बढ़कर भी एक पाप है, धोखा देना।"

तुम सच कह रही हो।"

"सच तो कह रही हूँ, पर एक बात और पूछती हूँ। अभी जो आप अबोध शिशु की तरह रो रहे थे वह आत्म-प्रतारणा ही तो है। आत्म-प्रशंसा

यदि पाप है तो आत्म-प्रतारणा पाप के साथ-साथ नपुंसकता भी है।"

कमला धीरे-धीरे बोल रही थी, पर उसकी वाणी में दृढ़ता थी। उसने कान्त की कदर्यता पर चोट की। उसने चुपचाप कमला का हाथ अपने हाथों में लिया और उसे सहलाता हुआ बोला, "कमला! तुमसे तर्क नहीं करूँगा। तुम्हे सब कुछ कहने का अधिकार है।"

कमला ने तत्परता से जवाब दिया, "अधिकार सदा सत्य नहीं होता। मै सत्य जानना चाहती हूँ।"

"तुम सत्य कह रही हो।"

कमला धीरे से पर दृढ़ता से बोली, "तो आज प्रतिज्ञा करो कि फिर कभी इतने कायर न बनोगे।"

"कमला!"

"हाँ, आज आपको यह प्रतिज्ञा करनी होगी। अपने अन्दर कायरता छिपाकर जो शक्ति और क्रान्ति का सन्देश आप विश्व को देना चाहते हैं; उससे आपको क्षणिक सुख भले ही मिले परन्तु ससार तो दुखी ही होगा।"

कान्त ने भी धीरे से कहा, "कमला! तुम जो कहती हो वह हो सकेगा उसकी क्या गारण्टी है?"

"गारण्टी इस संसार में कहीं है यह मैं नहीं जानती, परन्तु मनुष्य को प्रयोग करने की छुट्टी सदा रही है।"

"अच्छी बात है।" कान्त ने उसी शान्त भाव से कहा, "मैं भी प्रयोग करूँगा।"

क्षण भर रुककर फिर बोला, "प्रयोग मैं सदा करता रहा हूँ। अपनी कातरता को जानता हूँ। जानता हूँ इसीलिए वह मेरी शक्ति है मौत नहीं। फिर भी कमला! जानता हूँ इसलिए वह ठीक नही है। मुझे उससे मुक्ति पानी ही होगी।"

ठीक इसी समय नीचे से स्वर उठा, "निशिकान्त बाबू!"

कान्त ने सुनकर कहा, "चौधरी बदनसिंह हैं। बुला लो।"

कमला चली गई। बदनसिंह ऊपर आया तो मुस्करा रहा था। बोला, "एक दम क्या कर डाला ?"

"ऐसे ही ज्वर आ गया।"

"और यह कौन है, मास्टरनी ?"

"हाँ।"

"अकेली है ?"

"हाँ।"

"डर नहीं लगता ?"

"लगता था, पर आज दूर हो गया।"

"कैसे ?"

"आज मैंने डर को देख लिया है।"

बदनसिंह हँस पड़ा, "सीधी बात तो लेखक कभी बताते नहीं। सदा घुमा-फिरा कर कहेंगे।"

"तभी तो लेखक हैं।"

बात हँसी में उड़ गई सो बात नहीं। बदनसिंह ने धीरे से कहा, "तुम्हारे पड़ोसी क्या यह सब सह सके हैं ?"

"नहीं सह सके तभी तो भय मिट गया है।"

"सच !"

"विश्वास नहीं होता ?"

"नहीं-नहीं, तुम कहोगे तो क्यों नहीं होगा।"

कान्त हँस पड़ा। बोला, "कहो, कैसे आये हो ?"

"कैसे क्या ? मेरे आने का तो विशेष कारण है।"

"क्या ?"

"तुम्हारा केस है न। अब बात बहुत बढ़ गई है। रहमान को तुम बड़ा भलामानुस कहा करते थे। वही अब पूरी तरह तुम्हारी जड़ काटने पर तुला है।"

"वह तो मैं जानता हूँ।"

"परन्तु कान्त! जानना ही तो काफी नहीं है। आज की दुनिया में ज्ञान शक्ति की अपेक्षा करता है। वह शक्ति बटोर रहा है और तुम आदर्शवादी हो। आदर्शवादी अफीमची होते हैं।"

कान्त बोला, "तो तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ! मैंने सदा मुसलमानों का पक्ष लिया है। पर आज वे भी मेरे विरोधी हैं। अब शक्ति जाटों के हाथ में आ रही है, वे भी बनियों को दुनिया से मिटा देने पर तुले हैं।"

बदनसिंह अप्रतिहत नहीं हुआ। बोला, "मैं जाट हूँ! तुम मुझे अपना दुश्मन समझते हो?"

कान्त ने कहा, "व्यक्ति इस प्रकार दुश्मन नहीं होते। मेरा तुम्हारा स्वार्थ किसी दिन टकरायगा तो यह प्रश्न पूछना।"

"कान्त?"

"तुम्हें दुख होता है। पर बदनसिंह, रहमान भी मेरा मित्र था। वह मुझे कितना मानता था, परन्तु जब उसका मेरा स्वार्थ टकराया तो वह मेरा दुश्मन बन गया। अब हम रहमान और कान्त नहीं हैं, मुसलमान और हिन्दू हैं।"

बदनसिंह क्षण भर चुप रहा। फिर बोला, "मैं तुम्हारे तर्क की शक्ति को अस्वीकार नहीं करता, कान्त! इस दुनिया में कौन किसी का है? पर यह तो तुम मानोगे कि आज हम दुश्मन नहीं हैं। आज तो जो तुम्हारा वैरी है, वह मेरा भी है। इसी नाते मैं तुम्हारा हूँ।"

कान्त ने धीरे से कहा, "तुम बड़ी कच्ची जमीन पर खड़े हो, बदनसिंह! मैं मित्रता को इतना हेय नहीं समझता।"

"तो," बदनसिंह ने अनबूझ और त्रस्त स्वर में कहा, "तो फिर क्या समझते हो।"

"कुछ नहीं?"

"यह नहीं हो सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता ?"

"मैं नहीं जानता क्यों नहीं हो सकता। मैं नहीं जानता कि यह प्रश्न जाति का है या व्यक्ति का है या न्याय का। तुम बुद्धिवादी लोग...।"

"मैं बुद्धिवादी हूँ, अभी तो अदर्शवादी था।"

"कान्त! तुमने मेरा मस्तिष्क खराब कर दिया। मैं नहीं जानता कि तुम क्या हो, पर तार्किक अवश्य हो। मुझे अब केवल एक बात सूझती है कि यह नहीं होगा...।"

"क्या नहीं होगा ?"

"कान्त पराजित नहीं होगा।"

"यह कान्त के सोचने की बात है।"

बदनसिंह ने तत्परता से कहा, "कान्त मेरा भी कुछ है। मैं व्यक्ति और जाति के अधिकार के पचड़े में नहीं पड़ना चाहता, पर इतना जानता हूँ कि वही ऐसा व्यक्ति है जिसे मै प्यार करता हूँ।"

कान्त का मन भर आया। कुछ देर पहिले वह इसी अतिरेकता का ग्रास बना हुआ था। उसने कहा, "बदनसिंह, यह भावुकता है। मित्रता का जो फल भावुकता की भूमि पर पनपता है, वह बाहिर से सुन्दर होकर भी...।"

बदनसिंह शीघ्रता से उठा। बोला, "मै जा रहा हूँ।"

कान्त ने उसे कोमलता से कहा, "जाने वाले तो हो ही, पर अभी नहीं। अभी तुम नाराज हो। बदनसिंह, आज मैंने बहुत कुछ सोचा है।"

"तुम कम कब सोचते हो ? सोच-सोच कर ही तो तुम कायर बन गये हो।"

"सुनो तो।"

"कहो ?"

"तनिक मेज पर से एक कागज उठा लो। एक पत्र लिखवाना है।"

बदनसिंह को अचरज तो हुआ, पर उससे जैसा कहा गया था वैसे ही

उसने किया। कान्त धीरे-धीरे बोलने लगा :—

श्रीमान् जी,

सेवा में सविनय निवेदन है कि इधर कुछ दिनों से ऐसे कारण उत्पन्न हो गये हैं, जो मुझे आपकी सेवा के अयोग्य बनाते चले जा रहे हैं। मैं सचमुच विवश हो उठा हूँ, अतः मेरी प्रार्थना है...

चकित विस्मित बदनसिंह बोला, "यह क्या है?"

"लिखो तो। हाँ लिखो..."

अत मेरी प्रार्थना है कि मुझे शीघ्र ही कार्यभार से मुक्त कर दिया जाय। आप मुझ पर सदा कृपालु रहे हैं, उसके लिए बहुत कृतज्ञ हूँ।

बदनसिंह ने फिर टोका, "कान्त ! क्या तुम होश में हो?"

"लिख लिया ! देखूँ। लाओ होल्डर भी दो।"

कान्त ने पत्र लेकर दृढ़ता से उस पर हस्ताक्षर बना दिये। बना चुका तो पत्र फिर बदनसिंह को लौटा दिया। बोला, "तुम मित्र हो, मित्र ही रहोगे। प्रार्थना करो कि अब मैं उधर न लौटूँ।"

बदनसिंह अभी तक विस्मय की मुद्रा में था। कहा, "तो क्या यही सोच रहे थे?"

"शायद।"

"मेरा कहना है कि और सोच लो।"

"अधिक सोचने से आदमी कायर हो जाता है। मैं अब नहीं सोचूँगा।"

बदनसिंह कुछ जवाब दे कि तभी पण्डितजी ने वहा प्रवेश किया। वे सदा की भाँति मुस्करा रहे थे, "कहो भई कान्त ! क्या हाल है?"

"अब ठीक हूँ।"

"भगवान् मेरा जाने, मैं सच कहता हूँ कि तुम आत्म-हत्या कर रहे हो। मैं जानता हूँ कि तुम इस नौकरी को पसन्द नहीं करते, परन्तु फिर भी छोड़ने की शक्ति तुम में नहीं है। अज्ञान पाप है। परन्तु ज्ञान का दमन उससे भी बड़ा पाप है। रामायण में हनुमान यही पाप करने जा रहे थे और यदि

जामवन्त उन्हें सचेत न कर देते तो भारत का इतिहास कुछ और होता। भगवान् मेरा जाने, आदमी अपने अहम में ही अपनी मनुष्यता से इन्कार कर देता है ..।"

कान्त ने धीरे से बदनसिंह से कहा, "यह पत्र पण्डितजी को दिखा दो।"

बदनसिंह के हाथ से पत्र लेकर पण्डितजी ने पढ़ा तो आँखें चमक उठी बोले, "कान्त, क्या यह सच है ?"

"जी।"

"भगवान् मेरा जाने, कान्त ! मैं क्या कहूँ ? कान्त ! तुम्हें यह काम बहुत पहिले से करना चाहिए था, परन्तु खैर अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। मुझे प्रसन्नता है...सच कान्त ! आज तुमने जीवट का काम किया है। आज तुम भेड़ से शेर बने हो। तुमने सचमुच......।"

पण्डितजी का प्रवाह अचानक रुक गया। नीचे से किसी ने पुकारा, "श्री निशिकान्तजी !"

कान्त चौंका। बदनसिंह ने पूछा, "कौन है ?"

पण्डितजी क्षण भर रुककर फिर बोलने लगे, "तुमने सचमुच आज क्रांति का सच्चा मार्ग अपनाया है। भगवान् मेरा जाने, मुझे तो अभी भी विश्वास नहीं आता। श्री तुलसीदास ने लिखा है 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' तुमने आज उसी पराधीनता को खण्ड-खण्ड किया है।"

तभी पीछे से एक साथ कई स्वर उठे, "नमस्ते।"

"नमस्ते," पण्डितजी अचरज से मुड़े। देखा—सामने आर्यसमाज के सभापति, मन्त्री तथा अन्य कई सज्जन खड़े हैं।

बदनसिंह शीघ्रता से कुर्सी उठाने दौड़ा। पण्डितजी ने मुस्कराकर कहा, "बैठिये ! आप लोग बैठिये। कान्त अब अच्छा है ?"

मंत्री बोले, "हमें तो पता भी नहीं था। हम लोगों में यह बड़ा दोष है। लोग मर जाते हैं पर कोई पता तक नहीं देता।"

पण्डितजी हँस पड़े, "मरने का तो काफी ढिंढ़ोरा पीटा जाता है ?"

मन्त्री अप्रतिहत होने वाले नहीं थे। बोले, "पण्डितजी, इस संसार में आपस की सहानुभूति बहुत बड़ी वस्तु है। आप मुसलमानों को देखिये एक दूसरे के लिए प्राण देते है.. ।"

पण्डितजी ने फिर बात काटी, "और हिन्दू एक दूसरे के प्राण लेते हैं। यह स्वाभाविक है। एक देता है तभी दूसरा लेता है। भगवान् मेरा जाने आप लोग यही बात नहीं जानते।"

कान्त ने मुस्कराकर कहा, "आप आये। आपने बड़ी कृपा की। कहिये कैसे दर्शन दिये?"

सभापति एक वयोवृद्ध डाक्टर थे। कुछ रुककर बोले, "सुना भाई! तुमने समाज से त्याग-पत्र दे दिया है।"

कान्त असमंजस में पड़ गया, पर जवाब तो देना था। कहा, "जी वास्तव में ।"

पर सभापति तो सुनने नहीं आये थे। बोले, "देखो बेटा, यह बात ठीक नहीं है। यदि तुम्हें आर्य-ग्रन्थों या आर्यसमाज के नियमो के बारे में कुछ शंका हो तो उसका समाधान करा लो। पुरोहितजी यहाँ पर उपस्थित हैं और आजकल तो स्वामी सदानन्द भी आ रहे हैं।"

"जी हाँ, पर बात यह है ......।"

"और भई! हाँ, वह मास्टरनी की क्या बात है? पुरोहित जी कहते थे।"

कान्त जानकर अनजान बना, "जी कौन?"

"वही कमला। सुना है ..।"

कान्त ने दृढता स कहा, "आप लोग कमला के विषय में बातें करने आये हैं।"

वे बोले, "हाँ बेटा, वह एक हिन्दू नारी का प्रश्न है।"

कान्त ने शान्त पर दृढ स्वर में कहा, "अब आपको उसके विषय में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं उससे विवाह करने जा

रहा हूँ।"

सहसा भूकम्प का तीव्र धक्का लगा। स्वयं साहसी कान्त सिर से पैर तक सिहर उठा। नयनों के आगे धुन्ध उठने लगी, परन्तु शीघ्र ही वह अनिर्वचनीय प्रकाश की एक अद्भुत शक्ति से भर उठा। उसने देखा—वे सब स्तम्भित-चकित उसे देख रहे हैं, उनके मुँह खुले हैं, नयन स्थिर हैं...।

सबसे पहले पण्डितजी ने निस्तब्धता भंग की। उनके नयन स्मित-हास्य से पूरित हो उठे थे। बोले, "भगवान् मेरा जाने, निशिकान्त! तुम शेर हो, शेर बबर!"